THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186583

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H181.4 Accession No. H1941

Author S23A

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

आत्मसाक्षात्कार मार्गप्रदीप

नासिक क्षेत्रस्थ

श्री गजानन महाराज

नामक सत्पुरुष-चरित्र

और

आपके शिष्योंके आध्यात्मिक अनुभव-सार

—: लेखक :—

शांतिसंशोधक

मूल्य २॥ रुपिया

: प्रकाशक :

सोऽहम् प्रकाशन संस्थेतर्फे

विश्वनाथ त्रिंबक पाटणकर,

B. B. LL. B.

३९०, 'अनंत भुवन,' किंग सर्कल,

माटुंगा, मुंबई १९

★

Checked 1969

★

: मुद्रक :

प्रल्हाद केशव अत्रे,

३६२, विठ्ठलभाई पटेल रोड,

बम्बई

अनुक्रमणिका

१ अर्पण पत्रिका

२ निवेदन

३ विषय-प्रवेश- (अंग्रेजी ग्रंथका) ... ... १— २०

४ उपोद्घात ... ... २१—३३

५ मराठी ग्रंथकी प्रस्तावना ... ... ३४—५३

६ नाथपंथ (प्रथम खंड) ... ... ५४—५७

७ योग-साधन--मार्ग (द्वितीय खंड) ... ... ५८—७३

८ श्री गजानन महाराजका फुटकर चरित्र-लेख
(तृतीय खंड) ... ... ७४—१०७

९ कई महत्त्वपूर्ण संभाषण (चतुर्थ खंड) ... १०८—१५६

१० शिष्योंके परमार्थानुभव (पंचम खंड) ... १५७—

१ श्री. एम्. एम्. गडकरी, क्लार्क, जी. पी. ओ. बंबई

२ श्री. सदाशिव खंडेराव गरुडे, परेल, बंबई

३ ,, विनायक काशिनाथ खळे, दादर, बंबई

४ ,, पाटणकर, बी. ए. एल्एल्. बी. वकील-दादर

५ ,, भवानीचरण सिद्धांत, कलकत्ता

६ ,, गणेश रामचंद्र भिडे, धुलिया

७ ,, माधवराव वैद्य, धुलिया

८ ,, डी. डी. भावे, नासिक

९ ,, विष्णुपंत चाफेकर, रिटायर्ड बोलिफ नासिक

१० ,, मधुकर दामोदर चिटणीस, नासिक

११ सौ. आनंदीबाई गुप्ते, नासिक

१२ रावसाहेब गुप्ते, एल्. सी. ई., पेन्शनर इंजिनियर नासिक

१३ ,, पी. एल्. इनामदार, नासिक.
१४ ,, वामन केशव माहेगांवकर, रिटायर्ड टीचर नासिक.
१५ श्री. वसंत नारायण निरोखेकर, पोलिस ट्रेनिंगस्कूल, नासिक.
१६ ,, भार्गव वामन परचुरे–हेडकॉन्स्टेबल–नासिक.
१७ ,, दत्तात्रय शंकर साक्रीकर–नांदगाव जिल्हा नासिक.
१८ ,, भाऊसाहेब राजे–रोहा–जिल्हा कुलाबा.
१९ ,, शंकर मल्हार संत–अर्जनवीस–नासिक.
२० ,, शंकर त्र्यंबक सायगांवकर, फोटोग्राफर–नासिक.
२१ ,, विश्वनाथ गोपाळ वैद्य,–नासिक.
२२ ,, पांडुरंग लक्ष्मण भागवत–९९१ सदाशिव पेठ पूना २.
२३ ,, बी. व्ही. देशमुख, बी. ए. एल्एल्. बी, ॲडव्होकेट, पूना, नारायणपेठ ३५९–२
२४ ,, बाळकृष्ण महादेव गडकरी–११० नारायणपेठ–पूना.
२५ ,, के. के. प्रधान–इन्कमटॅक्स इन्स्पेक्टर–नासिक.
२६ ,, काशिनाथ रामचंद्र गंदेकर.
२७ सौ. जानकीबाई प्रधान.
२८ श्री. शंकर केशव फणसलकर, बेळगांव.
२९ ,, दत्तात्रय केशव भट, शिक्षक, न्यू इंग्लिश स्कूल–नासिक.
३० ,, काशिनाथ भिकाजी सूर्यवंशी–नासिक.
३१ ,, दगडू धाकू दुसाने, सुवर्णकार–धुलिया.
३२ ,, चौककर–बडोदा.
३३ ,, जी. डी. मांडवगणे, और सौ. गोदावरीबाई मांडवगणे–नासिक.
३४ वैद्य कुर्डूकर–नाशिक–और संगमनेर–
३५ रा. हणमंत पी. उर्मर्जी,—पूना.
३६ श्री. गणेश रंगनाथ आंबेडकर—बारामती.

३७ ,, कृष्णराव पाठारे, सॉलिसिटर, बंबई.
३८ ,, आनंदीबाई ठकार—कोल्हापूर.
३९ ,, शंकरराव दसरदार उर्फ काका वैद्य– खेड–जि. पूना.
४० ,, मंगेश उल्हाळ,–बंबई.
४१ ,, पी. एन्. नाबर —वकील. नासिक.
४२ ,, रामचंद्र शिवराम सहस्रबुद्धे—'केसरी ऑफिस-' पूना.
४३ ,, डी. एस्. मोहिते, बी. ए. बी. टी., नासिक.
४४ ,, सौ. सुंदराबाई अमेम्बल, बंबई.
४५ ,, शिवशंकर दामोदर पाठारे, गिरगांव–बंबई.
४६ ,, व्ही. एम्. वैद्य, डेंटिस्ट बंबई.
४७ बा. वा. वैद्य, नासिक.
४८ सौ. श ताबाई शंकर अभंग, सातारा.

परिशिष्ट २६२

खुद श्रीगजानन महाराजका लिखा हुआ लेख.

छाया चित्र.

१ ,, नारायण सरस्वति महाराज. (अंत्रीके)
२ श्रीगजानन महाराज (हमेशाके वेषमें)
३ श्रीगजानन महाराज (पद्मासन में बैठे हुए)
३ अंग्रेजी ग्रंथ–प्रकाशक की प्रार्थना–और
आभार–प्रदर्शन.

श्रीमत् परमहंस श्री नारायण सरस्वती महाराज, अंत्री

समाधि : कार्तिक कृष्ण द्वादशी, शके १८३२,
दिनांक १४ नोव्हेंबर १९१०. वय ११७ वर्षे.

अर्पण पत्रिका

सबोंके अंतर्यामवासी श्रीसच्चिदानंद स्वरूप

श्रीसद्गुरु नारायण सरस्वति महाराज

के

परम पवित्र चरणपें

यह ग्रंथ

अत्यादर प्रेम भक्तिभावसे समर्पित

अंग्रजी ग्रंथ प्रकाशक की प्रार्थना और आभारप्रदर्शन

(लेखकः— श्री. ना. बा. गुणाजी, बेळगांव)

हे सर्व शक्तिमान् जगत्कर्ता हर्ता ! आपके नामका विजय हो ! पृथ्वी और स्वर्गमें आपकी इच्छानुसार सब कुछ कार्य होता है। इस शुभ समयपर हम लोक आपका प्रेमादरपूर्वक स्मरण करके सन्मान और नम्रभावसे आपकी प्रार्थना करते हैं कि यह कार्य पूर्णतया सफल हो और इस किताब पढनेवालों और दूसरे भी सब जनोंको सुख, मनःशांति और आत्मदर्शन का आनंद लाभ हो !

इस कार्यकी प्रेरणा करनेवाले महान् सद्गुरु अंत्रीके श्रीनारायण सरस्वती महाराज और कार्य सिद्धीमें मदद देनेवाले उनके सामर्थ्यशाली, उदार चरित्र और महनीय शिष्यवर नासिक के श्रीगजानन महाराज इन दोनों को हमलोग अंतःकरणसे धन्यवाद देते हैं। इस ग्रंथ के प्रसिद्धीकरण के लिये जिस शिष्य समूहनें अपने अपने अनुभव लिखकर ग्रंथके लिये "साहित्य—संभार" बनाकर भेज दिया है उनको भी हम धन्यवाद देतें हैं। और इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये जिन महाशयोनें हरकिस्मकी मदद देकर भी अपना नाम प्रकट करने की अनुज्ञा नही दी है उनके हम आभार मानतें हैं।

अंतमें जिस तत्त्वविवेचक प्रेसमेंसे यह किताब सुंदर और सत्वर रीतीसे बनकर निकली है उस प्रेसमें कार्य करनेवाले सबको धन्यवाद देतें हैं।

ॐ सर्वे संतु निरामयाः

सोऽहम्

श्रीसद्गुरु नारायण सरस्वती स्वामीजीके बताके हुए चतुर्दश उपदेश रत्नोंका समूहः—

(१) नाश सब चीजोंका होता है। सब नाशिवंतही हैं। खाली आकाशमें 'वायु' रह जाता है। इसलिये उसे बहुत कुछ संभालना। उसीके साथही रहना।

(२) अंतःकरण चतुष्टयकी खाट बनाकर उसीमें चित्तचंद्रमाके किरणोंमें स्वस्थ आराम करना।

(३) हमेशा सोच विचार करते रहना कि हमारे हरेक कृत्योंका 'साक्षी' कौन है ?

(४) हमेशा अभ्यास करते रहना और उसी समय महावाक्यके अर्थमें आनंदसे पक्का निश्चय करना।

(५) बाह्य–वैराग्य, अंतवैराग्य और ज्ञानवैराग्य ऐसे वैराग्य तीन प्रकारके हैं। सांसारिक प्रपंच करनेवालेको बाह्य वैराग्यकी जरूरत नहीं है। ज्ञान–वैराग्यकी सहाय्यतासे उसमे अंतवैराग्यही रखना।

(६) एक समयभी ऐसा नहीं मनमें समझना कि "मैं साधु हूँ!" यह विचार एक बडा पाप होता है। 'मैं तो असली साधू बनना चाहता हूँ; और दूसरे सब लोक मुझसे आगेही होंगे।" ऐसाही विचार हमेशा मनमें रखना।

(७) दूसरे के साथ कभी नहीं बोलना कि "मैंने अमुक कार्य किया और मैं अमुक चीज जानता हूँ।"

(८) दिव्य चक्षूपर खूब 'धारणा' रखना। जिससे चित्तशुद्धि जल्द हो जाती है। परंपरा सुखोद्गत रखना।

(९) चित्तशुद्धीके लिये तुरंतही यत्न करना। जिससे प्रणव (नाद) का अनुभव आता है। और उसीपरही आदमी रास्ता पकड सकता है।

(१०) जो साधन आज कर सकते है उन्हें झटसे कर लेना । कलकी बाते कौन जानता है ?

(११) शामसुबह निर्वात स्थलमें अभ्यास करना, नींदके पहले और नींद खुलनेपरका समय तो अवश्य काममें लाना ।

(१२) देहाभिमान जैसा कम होगा वैसा बुद्धीमें वैराग्य बढेगा । सबपर समान दया उत्पन्न होना यही परमार्थका लक्षण है ।

(१३) मनोधर्म, संकल्प-विकल्पको पीस पीस कर धर्मनिश्चयसे धारणामार्गपर आगे घुस पडना ।

(१४) तुम भक्त लोग, महात्मा सत्पुरुषोंके बदनपर के रत्नजडित आभूषण हैं । संत जन तुम्हें हाथ देते है तब वे तुम्हें कभी छोडनेवाले नहीं है ।

'सोऽहम्'

निवेदन

मै एक दिन **शांति** ' को गोदमें लेकर बैठा था। वह छूट कर जाना चाहती थी। मुझे से बोली, "पिताजी! मुझे पकडकर क्यों रखते हो?" मैंने इसपर उसे औरही जोरसे पकडना चाहा। और क्या चमत्कार। वह तो एकदम अदृश्यही हो गयी। मैं उसीकी खोजमें संसार-प्रपंच छोडकर बाहर चल पडा। वह **शांति** मेरीही अदृश्य हुई लडकी-मुझें इस ग्रंथ नायकके सहवाससे फिरसे मिल गयी है। आपका अंग्रेजी और मराठी चरित्रग्रंथ पढनेपर मुझे **शांति** मिल गई है। उसी ग्रंथका हिंदीकरण करनेपर तो वही 'शांति' का 'शांताराम' बन कर मेरे हृदयमंदिरमें जीताजागता चलता-फिरता दिख पडता है। और यही ग्रंथके हिंदीकरण का कारण है। परमात्माका वर्णन उपनिषदोंमें इस प्रकार मिलता है:—

"न तस्य कार्यं करणं च विद्यते।"

ग्रंथ उसी परमात्माका एक 'रूप' है। चरित्रनायक श्रीगजानन महाराज उसी परमात्माके 'एक रूप' है। आपके चरित्र-ग्रंथका आगमन पाठकों के हस्तकमलोंतक होकर हृदय-कासार में प्रवेश जिस प्रकार करता है उसी प्रकार परमात्मा सबतक पहुंचता है।

श्री. द. ल. निरोखेकरजीनें अंग्रेजी ग्रंथ लिखा। ओर बेलगामवाले श्री. गुणाजीने उसका प्रकाशन किया। श्री. कामथ के हाथसे उसकी प्रस्तावना लिखी गयी। इस त्रिवेणी-संगम में एक ऐसे '**ईसाई**' सज्जनने आर्थिक-सहाय्य दिया जो नामही नहीं बताना चाहते है! खैर!

मराठी ग्रंथलेखन का कार्य संत चरित्र लेखन चतुर श्री. ल. ग. बापटजीनें किया। यावल के डॉ. भटसाहबने उसके लिये विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखी और प्रकाशन कार्य फिरसे श्री. निरोखेकरजीसेही होकर यह अध्यात्मिक भव चक्कर पूरा हुआ। कब यह मराठी ग्रंथ प्रकाशनके लिये श्री बर्डी नामक ऐसे **ओरास्टर** महात्माके एक अनुयायी मिले, जिन्हों नाम तो बताया लेकिन ठौरठिकाने का पता नहीं चलने दिया! अब हिंदीकरण के समयतक

ऐसे **मुसलमिन** बांधवों का भी सहाय्य हुआ है, जिससे मालूम होगया कि परमात्मा तो किसी भी धर्मका दरवाजा खोलकर "आत्मसाक्षात्कार मार्गप्रदीप" का उजाला दे सकता है।

ऐसे व्यक्त और अव्यक्त व्यक्तिओंसे सहाय्य होते मुझे एक दिन कल्पना आयी कि ग्रंथ का हिंदीकरण करनेसें हिंदभूमि के और भी कईएक सुपुत्र इससे लाभ उठासकते हैं। महाराजसे यही बात बोल दी। आपकी अनुज्ञा और आशिर्वाद मिला। जिससे आज यह लेखन-कार्य मूर्त स्वरूप पाता है। यह सब श्रीगजानन महाराजके श्रीसद्गुरु श्रीनारायण सरस्वती स्वामीकी कृपा है। श्रीमच्छिद्रनाथजी के योगसामर्थ्य का कर्तव्य है। श्री योगेश्वरजी की हुई प्रेरणा है।

" ॐ नमः श्रीप्रकाशकमनामकम्।

— शांतिसंशोधक

अंग्रेजी ग्रंथका

विषय-प्रवेश

" नाथ पंथका वाणा यारों सब दुनियासे न्यारा है । "

" श्रीगजानन महाराज-उनका जीवन-वृत्तांत और उनके शिष्योंके अनुभव " नामक पुस्तक प्रकाशित करनेका कार्य हमें सौंप दिया है । और अध्यात्म विषयमें प्रवेश करनेके लिये उसी पुस्तकमें प्रास्ताविक लेख लिखनेकी आज्ञा हुई है । प्रेम और सविनय सेवाभावसे हम यह कार्य करते हैं ।

नाथ संप्रदाय

इस पुस्तकके नायक श्रीगजानन महाराज सुप्रसिद्ध नाथ पंथके अनुयायी हैं । इस संप्रदायका पुरातन इतिहास और अर्वाचीन वृत्तांतभी गूढतामें वेष्टित है । इस लिये इस पंथके महान् महान् व्यक्तिओंकाभी समाचार मिलनेमें कठिनता प्रतीत होती है । तोभी इधर उधर जो कुछ न कुछ समाचार मिल जाता है उससे भी इस संप्रदायमें कितनी भव्यता है, कितनी उदात्तता है, कितनी श्रेष्ठता है, कितनी उच्चता है, और कितनी उपयुक्तता है आदि सभी बातोंपर अतुलनीय तेजस्वी प्रकाश पड सकता है । उदाहरणार्थ 'भावार्थ दीपिका' नामक श्रीभगवद्गीता ग्रंथकी महाराष्ट्रीय टिप्पणी और 'अमृतानुभव' नामक एक तत्त्वज्ञानविषयक स्वतंत्र ग्रंथ लिखनेवाले श्रीज्ञानदेवजी इसी नाथपंथरूपी वृक्षके एक सुरस फल कहलाये जाते हैं । भावार्थ दीपिका उर्फ ज्ञानेश्वरीके प्रास्ताविक विभागमें उन्होने इस नाथपंथका प्राचीन वर्णन इस प्रकार किया है:—

जिस समयका आज हमें पताही नहीं मिल सकता है, ऐसे किसी एक पुराणकालमें श्रीआदिनाथ शंकरजी (क्षीरसागरमें बैठकर) अपनी प्रिया

पार्वतीको, ब्रह्मविद्याप्रदान करते थे। उस विद्याका ग्रहण समीपही मत्स्यरूपमें रहे हुए श्रीमच्छिद्रनाथजीने किया। उसके बाद, नासिकसे पचीस मीलकी दूरीपरके सप्तशृंग पहाडीपर ठहरे हुए अपंग शरीरवाले चौरंगीनाथजीको वही ज्ञान श्रीमछिंद्रनाथजीने दिया। जिससे श्रीचौरंगीनाथजी अध्यात्मविद्यामें परिपूर्ण बन गये। बादमें उसी ज्ञानका आनंद प्राप्त करनेके लिये चौरंगी-नाथजीने ब्रह्मविद्याका प्रदान गोरखनाथजीको किया। श्रीगोरखनाथजी इस संप्रदायके महाप्रख्यात योगी हैं। उनसे यही योगविद्या गहिनीनाथजीको और उनसे निवृत्तिनाथजीको मिलकर तदुपरांत श्रीज्ञानदेवजीको उसका लाभ हुआ।

वारकरी संप्रदाय

श्रीज्ञानदेवजीके समयमें (१२७१ से १२९६ ई.) वारकरी संप्रदाय नामक और एक संप्रदाय पंढरपूर नामक दक्षिण महाराष्ट्रके एक तीर्थक्षेत्रके पासकी भूमिमें बन रहाथा। श्रीनामदेवजीको साथ लेकर श्रीज्ञानदेवजीने इतना संचार किया और वारकरी संप्रदायके तत्त्वज्ञानको "भागवतधर्म" नाम देकर उसका इतना फैलाव किया कि इस नवसंप्रदायके प्रणेता खुद श्रीज्ञानदेवजीही कहलाये जा रहे हैं। उनके पश्चात् नामदेव, एकनाथ और तुकाराम नामक तीन संतोंने बहुत कोशिश करके भागवतधर्मकी शिक्षा चारों ओर फैलायी। अर्थात् ज्ञानदेव और ये तीन संत इस वारकरी संप्रदायके अध्वर्यु कहलाये जाते हैं। "ज्ञानदेवजीने नींव रक्खी नामदेवजीने चबुत्रा और इमारत बनवाई, और एकनाथजीने झंडा फहरा दिया पश्चात् तुकाराम महाराजने इस भागवतधर्मके मंदिर के ऊपर कलस चढा दिया." ऐसा सुंदर वर्णन एक महाराष्ट्रीय दोहेमें—अभंगमें—किया गया है। इन चार संतोंके कार्यसे भागवतधर्म और वारकरी संप्रदाय महाराष्ट्रभूमीके चारों ओर के कोने कोनेमें फैल गया। उसके प्रारंभसे ही उसका इतना प्रचार हुआ है कि उसके अनुयायी लाखोंकी संख्यामें बढते गये हैं। और बढतेही जा रहे हैं। लेकिन इस बातका ख्याल करनाही चाहिये कि इस वारकरी संप्रदायके पीछे जो कुछ शक्ति है वह नाथसंप्रदायकीही है। नाथपंथ के दो तत्त्वों "अद्वैत"

और "योग" का वारकरी संप्रदायने पूरापूरा स्वीकार करके उनमें 'ईश्वर-भक्ति' का तीसरा तत्त्वभी सफाई से मिला दिया है।

इस प्रकार ज्ञानदेवके समयसेही नाथपंथ और वारकरीपंथ ऐसी इस अध्यात्म ज्ञानवृक्षकी दो शाखाएं हो गई हैं। वारकरी संप्रदाय खुली रीतीसे प्रचार करता है और नाथ संप्रदाय गुप्त रीतीसे कार्य कर रहा है। ज्ञानदेवके पीछे जो नाथपंथी सांप्रदायिक गुरू हो गये उनकी नामावलि कई अधिकारी व्यक्तिओंने इस प्रकार दी है—सत्यामस्तनाथ, गैबीनाथ, गुप्तनाथ, उद्बोधनाथ, केसरीनाथ, शिवदिनकेसरी, नरहरीनाथ, महीपतिनाथ, काशीनाथ, लक्ष्मणनाथ इ०। इनके बादमें जो आये, उनके नाम अज्ञात हैं इसलिये, इस चरित्रग्रंथके नायक श्रीगजानन महाराजतक यह नामावलि गुंफित करनेका कार्य सुलभ नहीं हो सकता है।

नाथसंप्रदायमें श्रीगजानन महाराजका स्थान

श्रीगजानन महाराज के गुरु श्रीपरमानंदजी और उनके सद्गुरु श्रीनारायण सरस्वतीजी थे। श्रीनारायण सरस्वतीजी जब समाधि लेनेके समयपर पहुंचे तब उन्होंने अपने शिष्य परमानंदजीको पास बुलाकर आज्ञा दी कि तुम मेराही नाम धारण करके मेरी शिक्षाका प्रचार करो। क्योंकि तुम और हम दोनों एकही हैं। श्रीनारायण सरस्वतीजीके गुरुका नाम गुप्त होनेसे संसारमें उनके पहलेके सद्गुरुओंकी नामावलि देना असंभव है। नाथपंथकी और एक शाखा, जालंधरपंथनामक उसी नामके एक योगिराजसे निकली है लेकिन मच्छिंदरनाथजीकी शाखासे अलग बनी हुई इस शाखाके भी कानीफनाथ और राजा गोपिचंदकी माता मैनावती दोनोंकेही नाम प्रकट हैं। इतना स्पष्ट है कि श्रीगजानन महाराज श्रीमच्छिंद्रनाथजीकी शास्त्रपरंपरामें हैं। क्योंकि उनको खुद मच्छिन्द्रनाथजीकाही अनुग्रह हुआ है। और वे चौरंगीनाथजीकेही आधुनिक अवतार हैं। एक तो वे वैसेही पैरसे अधूरे हैं और दूसरी मुख्य बात यह है कि उनको तो खुद मच्छिंद्रनाथजीसेही अनुग्रह प्राप्त हुआ है। इस अनुग्रहकी कथा संक्षेपमें यहाँ देना उचित जान पडता है।

जब श्रीगजानन महाराज चौदह सालकी अवस्थाके बने तब उनकी माता की बहन उनको श्रीनारायण सरस्वतीजी के दर्शन के लिये चिखली ग्राममें लायी। वहाँ एक गुंफामें वे रहते थे और एक दिन अर्ध सुप्त अवस्थामें श्रीगजानन महाराज पडे रहे थे। जब कि उनको एक दृष्टांत हुआ। तूफान और पानीके वर्षामेंसे किसीने उनको एक गहरी गुफामें ले जा कर उतराया। वहाँ एक सुंदर समाधि दीख पडी जिसकी ताजे फूलों से पूजा भी की गयी थी। उस समय श्रीगजानन महाराजने इच्छा व्यक्त की, कि उस समाधीमें विश्रांति लेनेवाले सत्पुरुषको अपने जैसे एक अनाथ जीवको दर्शन देकर कृतार्थ करना चाहिये। उसी क्षणमें समाधिका भंग करके उसमेंसे प्रत्यक्ष मच्छिंद्रनाथजी बाहर आये और अपना दर्शन और आशीर्वाद दिया। खुले चर्मचक्षुओंसे जैसा दर्शन होता है वैसाही दर्शन हुआ। और साथही 'ॐ हंसः सोऽहम्' मंत्रकी ध्वनि श्रीगजानन महाराजके चारों ओर और हृदयमें भी गूंजने लगी। यह कथा जब फूफाको ज्ञात हुई तो वे एकदम उनको लेकर श्रीनारायण सरस्वती महाराज के पास ले गये। वे भी यह बात जानकर खुश हुए और सांसारिक रीतिसे वे इनके गुरु बने। नाथसंप्रदायमें श्रीगजानन महाराजजीका जो उच्च स्थान है वह इस बातसे स्पष्ट होता है।

श्री गजानन महाराजके जीवन-चरित्रकी कई प्रमुख घटनाएं

जन्म और मातापिता—कोंकणके पेण नामक ग्रामके मालगुजार गुप्ते नामक कुटुंबमें आपने जन्मग्रहण किया है। यह ग्राम कुलाबा जिलेमें है। गत शताब्दिके मध्यकालमें इस कुटुंबकी हालत सांपत्तिक दृष्टिसे कनिष्ठ होनेसे, आपके पिताजी, श्री. मुर्लीधर बाजीराव, ग्राम छोडकर वऱ्हाडमें मलकापूर गये और वहां सरकारी नौकरी करने लगे। नौकरीका पैसा भी निर्वाह के लिये पर्याप्त नहीं था अतः आप कानूनका पठन करके वकील बने और **यवतमालमें** वकालत करने लगे। इस धंदेमें उनकी तुरंतही आर्थिक दशा बदलगयी। उनकी पत्नीका नाम 'राजूबाई' था। इन दंपतीके आठ संतान हुए। उनमें तीन लडकियां और पांच लडके हुए।

सबसे बडे लडकेका नाम था नारायणराव। आप बडे कवि हैं। 'बी' (मधुमक्खी) नामसे ये विख्यात है। उनके कवितागंथका नाम 'पुष्पांजलि' है। सबसे छोटे लडकेका नाम 'गजानन' रखा गया। यही चरित्रनायक श्रीगजानन महाराज हैं।

बचपन—गजानन महाराजका जन्म १८९२ इसवीमें यवतमालमें हुआ। तीसरे सालकी उमरमेंही शीतला माताकी बीमारीसे आपके पैर अधूरे हो गये। इससे माता-पिता और आप्तस्वकीयोंको बडा दुःख हुआ। तुरंतही माता-पिता स्वर्गवासी हुए। गजानन बचपनमें ही 'बालुबाई' नामक माकी जो एक बालविधवा बहन थी उसके सुपूर्द किये गये। उसका भी दूसरा कोई रिश्तेदार न था अतः वह इसी कुटुंबमें रहती थी। अब कुटुंब-पोषणका सब बोझ इस स्त्रीपर और उसके भाई नारायणरावपर आ पडा।

यौवन दशा—नऊ सालकी उमरमें श्रीगजानन महाराजका मौंजीबंधन हुआ। बादमें नारायणरावके भाई रामभाऊने, जो चिखली ग्राममें राली ब्रदर्सकी कंपनीमें काम करते थे, इन लोगोंको संत दर्शनके लिये बुलवाया। चिखलीके पास ही श्रीनारायणसरस्वतीका मुकाम था। यहीं जानेके बाद ऊपर लिखी हुई दृष्टांतकी घटना हुई। उस समय वे महात्मा बोले थे कि यह गजानन आगे चलकर बडे महात्मा होकर बहुत लोगोंको अध्यात्म-मार्गमें मदद पहुँचायेगा। यही भविष्यवाणी आज सत्य होती हुई दिखाई पडती है।

बादमें ये सब लोग निझाम राज्यमें वोरगांव गये। जहां नारायण सरस्वतीजीके गुरुका वार्षिकोत्सव मनाया जाता था। अपनी गुरूकी बातें, जो पीछे लिखी हुई है वे सब श्रीनारायण सरस्वतीजीने इन लोगोको यहां बतलायीं। १९१० इ०में वे भी समाधिस्थ हो गये। उनकी उमर इस सालमें १२७ सालकी थी। इसका पूर्ण वृत्तांत चरित्रमें मिलेगा। वापस जब निकले तो कुछ दिन नारायण सरस्वतीजीके अंत्री ग्राममें रहकर ये सब लोग रामभाऊके साथ चिखली ग्रामको लौट आये। वहांसे वे अकोला गये। यहां गजानन मराठी चार श्रेणी तक शिक्षा पाकर बडे भाईके साथ वाशीम गया। यहां आगे शिक्षा पानेका मौका होकर भी किसी न किसी कारण शिक्षा लेनाही गजाननने बंद कर दिया।

संत समागम—वाशीममें हरीहर स्वामी और नंगेमहाराजका इनको दर्शन और प्रसाद प्राप्त हुआ। नंगेमहाराजने तो शराब का प्रसाद दिया, लेकिन इनके हाथ में आतेही शराब का दूध बना। अकोलासे दारव्हा जाकर तेली महाराजका भी दर्शन लेकर यवतमालके खटिया महाराजसे भी वे मिले। इस प्रकार, बहुतसे संतोंका दर्शन करके गजानन-महाराजने बहुत कुछ समय संतसमागममेंही बिताया। इनमें पंढरपूरके एक तपकिरी बाबा भी थे। फिर वराडके महान संत गुलाबराव महाराजका भी मिलन हुआ। वे तो चर्मचक्षुओंसे बिलकुल अंध लेकिन अंतः-चक्षुसे दिव्य दृष्टिवाले थे। वे खुद को कृष्णपरमात्मा की प्रिया कहलाते थे और ज्ञानेश्वरकी कन्याभी समझते थे। प्रथम-दर्शनके समयमें वे गजानन महाराजको श्रीनारायण सरस्वती के रूपमेंही दर्शन देते हुए प्रतीत हुए। और इसीसे उनको विदित हुआ कि सब सच्चे संत एकही रूपवाले होते हैं।

अकोलामें रहते समय श्रीगजानन महाराज समीपवाले एक पुरातन गढेमें रातको भी अकेले जाकर बैठते थे, और वहांही कुछ ज्ञान लाभ होकर वे पूर्ण सद्गुरु बन गये हैं। अकोलामें एक शिवरामभाऊ गुसे और दूसरे अमृतराव आवाजी कर्णिक नामक दो मित्रोंके घर श्रीगजानन महाराज हमेशा आते जाते थे और वहाँ उनके बालजीवनमें बहुतसे चमत्कार हुए हैं। इसका वर्णन चरित्र-ग्रंथमें मिलेगा।

फिर आप बंबई जाकर रहे और वहांसे एक दिन कल्याण होकर श्रीगजानन महाराजने वहांके देवभाषा मौनी महान संत सद्गुरु श्रीराम-मारुतीजीका चरणदर्शन किया। कोई दस-पंध्रह देवनामोंके शिवाय वे किन्हीं भी शब्दोंका उच्चार नहीं करते थे इसलिये उन्होंने स्लेटपर लिखकर बताया कि तुम और हम दोनोंभी एकही चौरंगीनाथजी के अवतार है। इस भेटके बाद थोडेही दिन में श्रीराम मारुती महाराज समाधिस्थ होगये। आपके कोई शिष्य श्रीगजानन महाराजके पास बंबई पहुँचे और कल्याण आकर श्रीराम मारुतीजी-केही गद्दीपर विराजमान होनेकी विनंति करने लगे। लेकिन कुछ न कुछ कारण बता कर श्रीगजानन महाराजने उस विनंतीका स्वीकार नहीं किया। यह बात १९१८ इ. की है। उसके बाद आजदिन तक श्रीगजानन महाराज

लोगोंको अनुग्रह देकर अध्यात्म मार्गमें उनको बढा देनेका कार्य कर रहे हैं। यह ईश्वरकी कृपा है। पुस्तकमें इन शिष्योंके संभाषण, स्वानुभव और अनुग्रहकी बातें लिखी हुई हैं।

श्रीगजानन महाराजसे मेरी पहचान

मेरे मित्र श्री. कामत के पास एक दिन मैंने 'गुरुशिष्य विज्ञान दीपिका' नामक एक छोटीसी पुस्तिका देखी। जिसमें श्रीगजानन महाराजका कुछ जीवन-चरित्र लिखा हुआ मिला। उसमें शिष्योंके थोडे अनुभव भी लिखे मिले। यह बात १९३८ इ. की है। कोई इधर उधरके पन्ने पढने पर मुझे इसमें बहुतही चित्ताकर्षकता प्रतीत हुई। पुस्तिकाके प्रकाशक श्री. वैद्यजी जो मेरे मित्र थे उनको मैंने चिट्ठी लिखकर एक प्रत मँगवा ली। और वह फिरफिरसे बहुत बार पढ ली। फिर यह शिष्य और उनके गुरु श्रीगजानन महाराजसे मेरा पत्रव्यवहार शुरू हुआ। पूनेके 'गोरक्षण' नामक एक मराठी साप्ताहिकमें मैंने श्री गजानन महाराजका छोटासा चरित्रलेखभी छपवाया। बादमें जब श्री. कामत श्रीगजानन महाराजसे मिले तब महाराजने उनके पास मेरे भेटकी इच्छा प्रदर्शित की। वह मुझपर बडाही अनुग्रह समझकर मैंनेभी जब ठाणा जानेका मौका आया तब आगे नासिकतक जाकर महाराजके चरण दर्शनका लाभ प्राप्त कर लिया। वह बात जुलाई १९३९ इसवीमें हुई। महाराज तथा उनके शिष्योंने मेरा हार्दिक स्वागत किया। जिससे मैं उन सबोंका बहुतही उपकृत और ऋणी हूँ।

श्रीगजानन महाराजका दर्शन

किसी योगी, साधु या तो बुआजीके चारों ओर जिस प्रकारका सरंजाम रहता है वैसा कुछ भी श्रीगजानन महाराजके पास कभी दिखाई नहीं देता। वे कपडा तो साधारण गृहस्थाश्रमी आदमीके समान धारण करते है। शर्ट, कोट, नेकटाय लगाके किसी फॅशनेबल आदमीके जैसे कपडे पहनकर घरके बाहर जाते हैं। इससे लोक उनको बिलकुल सामान्य मानव समझकर भूल करते हैं। लेकिन जब उनके साथ अधिक सहवास होता है, तब उनकी

असाधारणता और अतिमानवी स्थिति समझमें ठीक ठीक आती है, और आदमी उनके सामने सिर झुकाता है। महाराज दीखनेमें बिलकुल सीधेसादे दीखते हैं लेकिन आप अपने संभाषण चातुर्य और विनोदसे बातें करनेमें सारे आदमीको झट पराजित कर सकते हैं।

सब लोगोंके साथ वे खुल्लमखुल्ला संभाषण करते हैं और बात करनेमें कुछभी छुपाकर रखनेकी आवश्यकता नहीं रखते। अपने शिष्योंके बारेमें बोलते समय तो बडी कडी भाषा काममें लाते हैं और सामान्यतः उनके दोष उनके मुँहपरही चार लोगोंके सामने बिलकुल ग्रामीण शब्दोंमें भी बता देते है। कभी उनको क्षमा होनेकी आशा उनके मनमें नहीं रहने देते। लेकिन इस कार्यमें भी एक चमत्कार प्रतीत होता है कि थोडेही क्षणोंमें गुरुशिष्योंका मन और गुरुके शब्द ऐसी पलट खाते है कि दोनोंमें नितांत प्रेमके सिवा दूसरा कुछ भी असर नहीं जान पडता। उनके कडे शब्दोंका परिणाम केवल शिष्योंका मन साफ करनेकेही काममें आता है। महाराज तो बिलकुल अहंकार रहित हैं। और खुली बात करनेवाले हैं। इससे थोडीही देरमें किसीकाभी उनके बारेमें आदरभाव और प्रेम प्रकट होने लगता है। और उनके बारेमें उच्च श्रेणीकी आदरभावना उत्पन्न होती है। वे खुदको 'झाडणी' कहते हैं। इसलिये कि शिष्योंके मनमेंका कचरा साफ करनेका आपके जीवनका प्रमुख कार्य है। चिट्ठीपत्रोंमें आप अपना नाम 'झाडणी' ही लिख देते हैं। आशय यही है कि शिष्योंका मन स्वच्छ कर उनका चित्त आत्म-प्रकाश के लिये बिलकुल साफ साफ हो जाय। दिनचर्या बिलकुल सीधी सादी है। भोजन तो कभी करते हुए दीख नहीं पडते। और कुछ खायेंगे तो भी बिलकुल थोडा है कोई मेहमान आता है तब उसके साथ खाली बैठते हैं, और जो कुछ विशेष पक्वान्न बनाया होगा उसमेंसे बिलकुल थोडासा लेकर जब अभ्यागतका भोजन होने तक थोडा थोडा खाते हुए दीख पडते हैं। इस प्रकार मामुली लोगोंके समान पूरा भोजन तो बहुत दिन तक कभी लेते ही नहीं। बहुत दिनोंके बाद किसी विशेष समय पर मानों विशिष्ट आदमीके साथ कभी कभी भोजन कर लेते हैं। दिनमेंसे बहुत दफे चाय बनानेका हुकुम होता है और हरदफे एक कपमेंसे आधा या तो पाव प्याली लेते रहते हैं।

कभी कभी चाय खाली हाथमें लेकर उसे भी दूसरोंको दे देते है। सिगरेट भी वे पीते थे और ऐसा मालूम होता था कि आपको सिगरेटका शौक है। लेकिन आजकल वह भी बंद हुआ है। स्त्रीजाति, संपत्ति और कीर्ति तीन बातोंके लिये उनका मन सच्चे योगीकी तरह बिलकुल अलिप्त और साफ है। कुछ भी रुपिया पैसा शिष्योंने या दर्शन लेनेके लिये आनेवालोंने सामने रखनेका रिवाज यहां नहीं है। शायद वह फेंक भी दिया जाता है। स्त्रियोंने आपकी सेवा करनेका रिवाज यहां नहीं है। चौबीस ही घंटोंतक कोठडी खुली ही रखी जाती है और किसीको भी और कभी भी दर्शन लेनेके लिये रुकावट नहीं होती है। इस प्रकार आप सच्चे निरिच्छ निरीह और ब्रह्मचारी हैं। स्वार्थकी कल्पनाभी आपके मनमें कभी आती नहीं है। इसलिये आपका नाम बढानेकी कोईभी चेष्टा आपको पसंद नहीं आती है। रहनसहन ऐसा सादा है कि कीर्तिके प्रकाशमे आकर बैठनेकी अपेक्षा आपको गुह्यरीतीसेही गूढविज्ञान प्रदान करना अधिक पसंद मालूम होता है।

श्रीगजानन महाराजकी ध्यानयोग विद्या

राजयोग किंवा ध्यानयोग नामक नाथपंथकी विद्याप्रदान करनेकी महाराजकी पद्धतिभी सरलतापूर्ण ऐसी है—आप नये शिष्यको बिलकुल आरामसे बैठने को कहते है। शिष्य खुदही कोई योगासन जमाकर बैठ सकता हो तो ठीकही है। फिर जालंधर बंध करनेका उपाय बता देते हैं। बादमें 'सोऽहम्' मंत्रका उच्चाररहित चिंतन करते हुए षट्चक्रोंमेंसे किसी भी एक चक्रपर एकाग्र चित्त करनेको कहते हैं। चक्रका चुनाव शिष्यके इच्छापरही सौंप दिया जाता है जिससे उसको सुविधा हो। बादमें उसी चक्रपर ख्याल रखना और बाकी सारी बातें भूल जाना पडता है। यह होते समयही महाराज अपना वरदहस्त शिष्यके मस्तकपें रखते हैं। जिससे उसको अधिक मदद पहुंचती है। कई कई शिष्योंको इसकी भी जरूरत नहीं पडती। गुरुकृपा शिष्यके चारों ओर सदाही फैली हुई जान पडती है, और उससे शिष्य आगे बढता रहता है। ऐसी कई शिष्योंको आपसे मदद मिली है और इसीमें महान् महाराजकी करामात और उस करामातका मूल्य जोवोंको मालूम हो

सकता है। ऐसे अनुग्रहित शिष्योंको जो कोई अनुभव मिले हैं उनमेंसे कई इस पुस्तकमें संग्रहित किये गये हैं।

शिष्योंके अनुभव

ध्यानयोगका साधन करते समय शिष्यगणको जो अनुभव आये वे उन्होंने लिखकर भेजे हैं। इन शिष्योंमें बंबईसे कलकत्ता तक रहनेवाले बहुतसे शिष्योंका अनुभव संकलित किया गया है। पूना, नासिक, धुलिया और दूसरे भी कई ग्रामोंके शिष्यगण इसमें सहकार्य करने आये हैं। पुस्तक तयार होनेके बाद भी बहुतसे शिष्योंके अनुभव चिट्ठियोंमें हररोज आतेही रहते हैं। इनमें चित्रे नामक एक लडका तो घंटोंतक समाधिसुख चखता है। दूसरे शिष्योंके अनुभव और ही अलग अलग प्रकारके हैं। सबमें सर्वसाधारण ज्ञानकी कई बात होकर भी स्वतंत्र अनुभवोंका आस्वाद मिलता है। आत्मज्ञानके शास्त्रमें जिनका प्रवेशही नहीं है उनको ये अनुभव कथाकथित, स्वप्नमय और काल्पनिकतासे पूर्ण मालूम होते हैं। लेकिन सच बात अलगही है। मार्गमें जो लोकविलक्षण अनुभव आते हैं वे सत्यमय सत्य होनेसे इन अनुभवोंको जड जगतके प्रमाणों की जरूरत नहीं पडती है। और इनके बारेमें वादविवाद बुद्धिमत्ताके सहाय्यतासे कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि ईश्वरी ज्ञानका क्षेत्र बुद्धिमत्ताके क्षेत्रके बाहर है।

गूढ अनुभवों के प्रकार

हम आज कलके भारतीय लोग अपनी पुरानी अध्यात्मविद्याको बिलकुल भूल गये हैं, और इस विद्याके गूढ अनुभवोंको आज तो समझ नहीं सकते हैं, यह बडे ही खेद की बात है। वेदकालीन उपनिषदोंके द्रष्टा ऋषि जो हमारे पूर्वज होगये उनको खिस्ताब्दिके हजारों वर्ष पहिले अध्यात्मविद्याके गूढ अनुभव हो गये थे। और उन्होंने उस ज्ञानका ठीक ठीक मंडन, परिशीलन और विवरण भी किया है। कालगणनाप्रारंभकालमें ही जो हमारे उपनिषद ग्रंथ हुए हैं, उनका पठन करनेपर मालूम पडता है कि इस ज्ञानके मुख्यतः चार विभाग किये गये हैं। रंग, रूप, प्रकाश और नाद चारोंसे ये विभाग संलग्न हैं। क्योंकि साधकोंको ध्यानाभ्यासके समयमें इन चारोंका अनुभव

प्राप्त होता है। श्वेताश्वेतरोपनिषद के द्वितीय अध्याय के ग्यारहवे श्लोकमें ध्यान के समय सामने आनेवाले रूप और प्रकाश के अनुभवोंका रसपूर्ण वर्णन दिया है। वहां बताया गया है कि "ब्रह्मकी पहचानके लिये उस ध्यानयोगीको, धुवाँ, भाफ, सूरज, अग्निवायु, बिजली, स्फटिक, चंद्रमा इत्यादि चीजोंका तेजोमय प्रादुर्भाव होता हुआ दीख पडता है।" औरभी बृहदारण्यकोपनिषद (११-३-६) में लिखा है कि "प्रगति करते समय ध्यानयोगीको गेरुएवस्त्र, सफेत ऊन, लाल इंद्रगोपकीटक, अग्निशिखा, कमलपुष्प और बिजलीकी चमक सबका दर्शन होता रहता है। ऐसे कई श्लोकोंका अवतरण दे सकते हैं।

अब ऊपर लिखे हुए अनुभवोंके साथ मिलने जुलनेवाले जो अनुभव श्रीगजानन महाराजके शिष्योंको आये हैं उनका कुछ विचार यहां करेंगे।

(१) श्री. **एस्. एम्. गडकरी**:—जप शुरू करने के बाद रंगरंगके बादल जमा होकर मेरे ऊपर शांतिवर्षा करने लगे। एक दिन श्रीगजानन और कुछ पताकाएँ दीखने लगीं। उनके बाद एक वीणा नजर आयी। फिर सरस्वती वही वीणा लेकर प्रकट हुई। फिर दिव्य तेजमें श्रीगजानन महाराज प्रकट हुए। आपके चारों ओर जगमगाहट करनेवाला दिव्य सुवर्णमय प्रकाश दीख पडता था।

(२) दादरके रहनेवाले श्री. **विनायक काशिनाथ खळे**:—हम जब जप करने लगे तब मस्तकके अंदरसे एक आवाज वही जप करने लगा। उसी समय आँखोंके सामने एक सफेद ज्योति दीखने लगी। वह बादमें लाल गेंद बन गयी। मनकी एकाग्रता विचल न होतेही मुझे उस समय एक किस्मका आनंद हुआ। कुछ दिनोंके बाद नीले और लाल चतुष्कोण दीखने लगे। सांसारिक कठिनाइयोंसे अस्थिर बना हुआ मेरा मन इससे शांत हुआ। यह सद्गुरू की कृपाके सिवा और कुछ नहीं है।

(३) दादरके बी. ए., एल्एल्. बी. वकील—श्री. **विश्वनाथराव पाटणकर** लिखते हैं:—मुझें अंदरमें एक विशाल सागर दीख पडा जिसकी बडी बडी लहरें ऊपर नीचे कर रहीं थीं। सोहम् नाम की एक नाव उस विशाल सागरमें तैर रहीथी। और हे सद्गुरू! आपही वह नाव, उसके

कर्णधार बन कर चला रहे थे। समीपही सद्गुरू श्रीनारायणसरस्वतीजी संध्या वंदन करने बैठे थे। बादमें उसी नावपर मुझे दूसरे अनेक संतोंका दर्शन हुआ। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया।

(४) कलकत्तानिवासी **भवानीचरण** सिद्धांत लिखते हैं:—सद्गुरुने मुझे सोहम् मंत्र बताया। और मेरे मस्तकपर अपना हस्त रक्खा। वैसा होतेही सोहम् करके एक बडा आवाज निकला। मेरा मन एकाग्र हो गया। कल्पनाएं नष्ट हुई। और अंतःकरणमें एक अतीव आनंदकी ऊर्मि उछल आयी।

(५) नासिककी श्रीमती **आनंदीबाई गुप्ते** लिखती हैं:—जप करते समय मुझे बहुत तेजस्वी महान स्वरूप दीख पडा। मेरी दृष्टि थक गयी। और वह रूप किस का है वह मैं नहीं पहचान सकी।

(६) नासिकके **रावसाहेब गुप्तेः**—अजपा जप कैसा होता है और उसमें मन कैसा विलीन होता है यह मुझे समझ पडा। सद्गुरु कृपासे मुझे कभी कभी एक तेजोमय बिंदूका भी दर्शन होता है। इस विषयमें मैंने महाराजसे प्रश्न किया। आप बोले कि ये सब दृश्य खाली साधकको रास्ता बताने वाली मंजिलें हैं। मंजिल खुद पथिक का ध्येय नहीं है। आगे चलकर मंजिल पीछे रक्खी जाती है। और आत्मानंदका अनुभव आता है। यही मनुष्यका सत्य ध्येय है।

(७) श्री. **व्ही. के. माहेगांवकर**, नासिकः—महाराजने अनुग्रह करके मुझसे ध्यानका अभ्यास करवाया। उस समयसे मुझको ध्यान करते वक्त उजेला और बहुतसे दृश्य दिखायें दिये। मेरी आराध्य देवता श्रीदत्तजी मेरे प्रथम गुरु केडगांवके श्रीनारायणमहाराज, श्रीगजाननमहाराज, ये तीनों मुझे ध्यानमें ही दीखने लगे। और मैं उनकी पूजा करने लगा। श्री. माहेगांवकरने बहुतसे प्रश्नभी किये हैं। और महाराजने उनको जवाब दिया है। उनमेंसे चतुर्थ प्रश्न और उसका जवाब मननीय है। वे पूछते हैं:—क्या दृश्य दीखना यह आत्मज्ञानकी सच्ची निशानी है?—श्रीगजानन महाराज जवाब देते हैं:—जी नहीं! दृश्य यही सत्यज्ञान नहीं है। वे रास्तेपरके पडाव हैं। देखतेही मालूम होगा कि वह मुकाम करनेकी जगह नहीं है। वह तो आगेही है। इस प्रकार दृश्य भी माया है। बादमें यह ज्ञान होता है कि

जगत् ही ब्रह्ममय है। और साधक परमात्मामें विलीन होता है वही सच्चिदानंद स्थिति है। वही चिरशांति है। वही सकल व्यापी परमात्माका ज्ञान है।

(८) नासिकके पेन्शनर श्री. **व्ही. जी. वैद्य** लिखते हैं:—मैंने सोहम् जप शुरू किया और मुझे अर्धसुप्तावस्थामें सोहम्का बडे जोरसे आवाज आने लगी। और कुछ सूक्ष्म घंटानाद भी सुनायी दिया। इस घंटानादके बारेमें मैंने महाराजसे पूछनेपर वे बोले:—देवलमें प्रवेश करनेके पहले घंटानाद किया जाता है। इसी प्रकार तुम्हारा ब्रह्ममें प्रवेश होनेके पहले यह नाद आता है। दूसरे भी दस प्रकारके नाद होते हैं। उनका भी तुमको अनुभव आयेगा। फिर ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश करके तुम परमात्मदर्शन प्राप्त करोगे।

चमत्कार

चमत्कारोंके बारेमें यहां लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। महाराजके बारेमें कुछ चमत्कारोंका उल्लेख पुस्तकमें किया गया है। जैसे सिगरेट पीते समय चारों ओर सुगंध ही छूटती रहती है। सुवासिक पावडर (बुक्का) जहां पर है वहीसे आकर लोगोंके ऊपर उसका वर्षा होना, शराबका दूध बनना और अंडेके आलू बन जाना। खुद महाराज तो इन चमत्कारोंको भूतचेष्टा बोलकर ये बातें उडा देते हैं। चमत्कारोंका सामर्थ्य या सिद्धियां आपहीसे साधकों पर आ पडती हैं, जब साधक अध्यात्ममार्गमें प्रगति कर लेता है। लेकिन साधकको यह ख्याल रखना चाहिये कि सिद्धियोंके असरसे उसके मनमें विचलता उत्पन्न होना नहीं चाहिये। क्योंकि वह भी माया है। सिद्धियोंके भी मायाजालमें न फँसकर उसको अपनी प्रगति तो करते ही रहना चाहिये।

सारांश

अंतमें हम **श्रीगजानन महाराजके** शिष्योंसे कहते हैं:—" हे बांधव ! ईश्वर तुम्हें प्रगति पथपर मदत दें। चलो ! आगे बढो ! तुम सत्य मार्ग पर चल रहे हो। खूब कष्ट उठाकर अपना कार्य

करते रहो। और आत्मप्रत्ययका अपना ध्येय प्राप्त होनेतक कहीं भी कभी मत ठहरो !" इस ग्रंथके वाचकोंसे हम कहते हैं।

"उठो ! जागो ! और [श्री गजानन महाराजकी तरह] जो कोई सद्गुरु हो उनसे ज्ञानका लाभ कर लो। यह तुमसे अभी इसी जन्ममें न बनेगा तो आगे विनाशकी बडी खाईमेंही गिर पडोगे ? लेकिन वह ज्ञान यहांही और अभीही प्राप्त कर लेंगे तो आप धन्य हैं। त्रिवार धन्य हैं। त्रिवार धन्य हैं।" (केनोपनिषद २–५)

सर्वेऽत्रः सुखिनः सन्तु।

ठळकवाडी (बेळगांव)
ता. ८–८–१९३९ इसवी

नागेश वासुदेव गुणाजी

परिशिष्ट

ऊपर लिखी हुई बातें लिपिबद्ध होनेके बाद मेरे मित्र इस्लामपूरके रावसाहेब मंत्री उर्फ श्रीमान लक्ष्मणराव त्रिंबकरावकी तरफसे एक छोटीसा पुस्तिका आ पहुंची। कोई नाथमहाराज पंढरीवाले नामकसंतने वह छपवाकर भेंटमें दी थी। इसमें नाथपंथका बहुत कुछ पुराना इतिहास लिखा हुआ मिल गया। उसमेसे कुछ संक्षिप्त बातें यहां दी जातीं हैं। श्रीज्ञानेश्वरजीका नाथपंथमें किस प्रकार प्रवेश हुआ यह बात तो ऊपर दी गयी है। वही देकर यह पुस्तिका आगे बढती है और दूसरे संतोंके बारेमें बताती है।

नामदेवः—निळोबाराय बोलते हैं कि श्रीज्ञानेश्वरजीने सोपानदेव और मुक्ताबाई को इस पंथमें लिया। मुक्ताबाईसे विसोबा खेचर और उससे नामदेव और नामदेवके घरकी दासी जनाबाईके साथ सब लोगोंको अनुग्रह मिला।

एकनाथः—एकनाथ महाराज खुदही अपनी गुरुपरंपरा लिखते हैं। १ ज्ञानेश्वर, २ सत्यमालानाथ, ३ भोजलिंगनाथ, ४ ग्यानीनाथ, और ५ जनार्दनस्वामी जिनसे एकनाथजी को अनुग्रह मिला। श्रीएकनाथजी और

भी एक परंपरा देते हैं:—सबसे पहले सद्गुरू श्री आदिनारायणजीने ब्रह्मदेवजीको ज्ञानदान किया। उन्होंने अत्रिऋषीको, उसने अपने पुत्र दत्तात्रयको, उसने शत्रुंजयको, जदुको और जनार्दन स्वामीको अनुग्रहित किया। जनार्दनस्वामीसे एकनाथको अनुग्रह प्राप्त हुआ। इससे मालूम होता है कि एकनाथजीकी गुरुपरंपरा दुगुना होकर आयी है।

अब रही संत तुकारामजीकी बात। वे खुद और उनके शिष्य निलोबा और बहिनाबाई वगैरह अपनी गुरुपरंपरा इसप्रकार देते हैं।:— ज्ञानेश्वर, सच्चिदानंदबाबा, विश्वंभरनाथ, राघवचैतन्य, केशवचैतन्य और बाबाचैतन्य-जो तुकाराम संतश्रेष्ठके गुरु थे।

इस पुस्तिकामें फिर दूसरे श्रेष्ठ योगियोंका भी समाचार दिया है। जो निवृत्तिनाथ और गहनीनाथ वे भी अवस्त्रके कालमें हो गये हैं। पहले तो इस पुस्तिकामें श्रीशंकराचार्यजीको अनुग्रह प्रसाद कैसे हुआ उसका वर्णन दिया है। श्री. शंकराचार्यके गुरु श्री गोविंदनाथ ऊर्फ गुरु गोविंद थे। उनके गुरु गौड पादाचार्य। उनके श्रीशुकाचार्य। उनके गुरू उनके ही पिताजी श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास। व्यासजी की माता मत्स्यगंधा, पिता पाराशरजी और बंधु मत्स्येंद्रनाथ। महाभारतके आदिपर्व अध्याय ६३ में इनकी कथा है। इस प्रकार शंकराचार्यजीका नाथपंथसे संबंध हुआ है। इसी लिये आपने नाथ पंथ ही सँभाल कर बाकी सब पंथ-मतोंका खंडन किया है।

शंकराचार्य के कालमें १८ केन्द्रका स्थापन प्रचलित हो गया था और वे अभीतक चल रहे हैं। उनके नाम हैं:—

१ कानफाडी, २ गोरख, ३ अघोर, ४ अरण्य, ५ अवधूत, ६ आनंद, ७ आश्रम, ८ इंद्रउदासी, ९ कालभेली, १० गोदड, ११ नंगागिरी, १२ निरंजन, १३ निर्वाण, १४ पुरी, १५ भारती, १६ राऊळ, १७ बन, १८ सरभंगी.

इनके भी पहिले पहल नाथपंथके १८ उपपंथ स्थापन हुए थे। वे आगे दिये हैं:—

१ सवनाथ, २ धर्मनाथ, ३ सातनाथ, ४ गुगुलिम, ५ हाजिनाथ, ६ मिस्किमनाथ, ७ काडरनाथ, ८ याथिथास्व, ९ रामनाथ, १० एकनाथ,

११ जारोवैरागी, १२ यमनाथ, १३ चालिका, १४ गंगनाथ, १५ हेहेतमार्गी, १६ धनंजय, १७ गजकथडी, १८ नागार्जुन.

इनके भी पूर्वकालीन ऐसे कई हो गये जो हठयोग प्रवीण थे और जिन्होंने अपना जीवन योगमेंही बिताया था उनके नामः—

आनंदभैरव, चौरंगीनाथ, मीननाथ, विरूपाक्षनाथ, विलोशयनाथ, मंथानभैरव, सिद्धबुद्ध, कंथडीनाथ, कोरंटकनाथ, सुरानंदनाथ, सिद्धपाद, चर्पटी, कानेरी, पूज्यपाद, नित्यानंद, निरंजन, कपाली, बिंदुनाथ, काकचंडीश्वर, अल्लामनाथ, प्रभुदेव, घाडाचोळी, टिंटींणी, भानुकिनाथ, नायदेव, खंडनाथ, कापालिक, तारानाथ.

नाथपंथमें नऊ अल्प व्यक्तियोंका नाम सुप्रसिद्ध हैः—

१ प्रकाशनाथ, २ विश्रमनाथ, ३ आनंदनाथ, ४ ज्ञाननाथ, ५ सत्यानंद नाथ, ६ पूर्णानंद नाथ, ७ स्वभावानंदनाथ, ८ प्रतिभावानंदनाथ, ९ शुभगानंदनाथ.

पांचोंके नाम गूढविज्ञानवादियोंमें प्रसिद्ध हैंः—(१) खिंबडनाथ, (२) धिंगरनाथ, (३) चंपानाथ, (४) घुघुनाथ, (५) प्राणनाथ.

गहिनीनाथ और उपरिनिर्दिष्ट नाथोंके बीचमें के कालमें नाथपंथीय ८४ सिद्ध हो गये हैः—सबके नामके पीछे 'सिद्ध' पदवी लगायी जाती है सिद्ध जैसेः—

(१) कवीशानंद, वागानंद, खगतानंद, वांच्छानंद, गोचरानंद, असिनोगानंद, बटुकानंद, बरिनंद, अजमातनंद, गुप्तानंद, चंडीनंद, क्रोधानंद, महेशानंद, भीषणानंद, दिव्यानंद, बोधिनंद, कलानंद, विलासानंद, सिद्धानंद, मातृकानंद, सरस्वत्यानंद, सुगमानंद, परमशतानंद, समरसानंद, महानंद, भोमानंद, ब्रह्मानंद, शकानंद, चिदानंद, पूर्णानंद, शुकानंद, बनानंद, चैतन्य, राजचैतन्य, कलाचैतन्य, नामचैतन्य, दिव्यचैतन्य, प्रज्ञाचैतन्य, शामचैतन्य, विज्ञानचैतन्य, पंचचैतन्य, आत्मचैतन्य, बैराग्यचैतन्य, प्रसपदचैतन्य, निर्वाणचैतन्य, मधाचैतन्य, विघ्नचैतन्य, सिद्धचैतन्य, श्रीचैतन्य, प्रज्ञा, श्रीनाथसरस्वती, आनंदसरस्वती, मेधासरस्वती, चिदानंद, प्रज्ञासरस्वती,

कलासरस्वती, समेतसरस्वती, देवसरस्वती, विराटसरस्वती, सारसरस्वती, भूतभैरव, विराटभैरव, स्वराज्यभैरव, सम्राटभैरव, आनंदभैरव, सरूभैरव, उन्मजभैरव, उद्भट, मिराशत, विश्वरूप, रंगवार, देववार, ब्रह्मवार, राजेवार, सिद्धवार, माप्रसिद्ध, कपिली, काम, मूर्तिशर, मूर्तिचालना, चक्रवर्ति, जोगवर्ति, अनुग्रह और (८४) निग्रहसिद्ध.

ज्ञानेश्वरके पहिले ये सिद्ध, नाथपंथ चलाते आये हैं ऐसा इस परसे मालूम होगा। आळंदी ग्राममें श्रीज्ञानेश्वरजी की समाधि तो इन सिद्धोंके मठके सामनेही है। समाधीके चारों ओर ८४ सिद्धोंका समूह है।

सिद्धोंके प्रकार चार हैं:—

(१) आनंद, (२) सरस्वती, (३) चैतन्य और, (४) भैरववार.

वारकरियोंके भी ४ प्रकार हैं:—

(१) प्रकाश. (२) स्वरूप, (३) आनंद और (४) चैतन्य. ये चार वारकरीपंथवाले **क्रमशः**—(१)लक्ष्मी, (२) ब्रह्मा, (३) विष्णु और (४) सनक इनको अपने अपने प्रमुख सद्गुरूओंका स्थान देते आये हैं। आदिनाथजी इन चारोंके भी प्रमुख सद्गुरू हैं। पहले दो पंथ अपनेको नाथसंप्रदायी और दूसरे दो सिद्धसंप्रदायी समझते हैं। गहिनीनाथजी सिद्धसंप्रदायके माने जाते हैं।

और भी कई नाथसंप्रदायी हो गये हैं। उनके भी नाम देना उचित होगा:—उदयनाथ, दंडनाथ, एकनाथ, सत्यनाथ, संतोषनाथ, कर्मनाथ, जालंदरनाथ, गोपीचंदनाथ, मीननाथ, मुक्तचंदनाथ, धर्मनाथ, अडबंगनाथ, सारंगीनाथ, जागावानाथ, निजानंदनाथ, नयननाथ, यदुनाथ, निरंजननाथ, गहिनीनाथ.

८४ सिद्धोंके कालमें अध्यात्म और योगका अभ्यास जारी था। केवल योगपरही जोर देनेवाले उनमें जो थे उनके नाम हैं:—गोपीचंद, चर्पटी, चौरंगी, विरुपाक्ष, विलेश और केवल अध्यात्मपरही जोर देनेवाले थे:—थीगरनाथ, घुघुनाथ, चंपानाथ, खिंबडनाथ और प्राणनाथ.

वारकरियोंने योग और अभ्यात्म इन दोनोंमें भक्तिका समावेश कर दिया। आज बहुतायतसे इन वारकरी लोगोंमें 'भक्ति' काही प्रभाव ज्यादह है।

इनके भी आगे १२ आचार्य हो गयेः—

१ श्री भैरव नाथाचार्य	७ श्री महेंद्रनाथाचार्य
२ श्री मत्स्येंद्र नाथाचार्य	८ श्री नाटकेश्वर नाथाचार्य
३ श्री जालंदर नाथाचार्य	९ श्री वाघोडी नाथाचार्य
४ श्री जोगनाथाचार्य	१० श्री कलंकनाथाचार्य
५ श्री संतनाथाचार्य	११ श्री घलाचुढीनाथाचार्य
६ श्री सुरवर्ण नाथाचार्य	१२ श्री अघोरनाथाचार्य

जो सुप्रसिद्ध नवनाथ नामसे महशूर हैं उनके शुभ नामः— (१) श्रीमत्सेंद्रनाथ, (२) गोरखनाथ, (३) जालंदरनाथ, (४) कानीफनाथ, (५) भार्तृनाथ, (६) रेवणनाथ, (७) नागनाथ, (८) चर्पटनाथ, (९) गहिनीनाथ वेभी नवनारायणोंके अवतार समझे जाते हैं।

नव नारायणोंके शुभनामः—

(१) कवि, (२) हरि, (३) अंतरिक्ष, (४) प्रबुद्ध, (५) द्रुमिल, (६) चमस, (७) आविर्होत्र, (८) पिपलायन और (९) करभाजन.

इनका उल्लेख भागवतके एकादश स्कंधमें मिलता है। ये नऊ और दसवे "**श्रीचौरंगीनाथजी**" स्वयंभू माने जाते हैं और नाथसंप्रदायके अध्वर्यु हैं।

श्री शंकराचार्य के पहले और आपके कालमें के और कोई नाथ "भैरव मेळा" नामक एक संतसमूहमें भी थे। इनके अष्टभैरवोंमें से एक कपालभैरवका शिष्य राजा करकच था। इसके साथ श्रीशंकराचार्यजीका कडा वादविवाद हुआ, ऐसा कहा जाता है। उस समयमें राजाने अपने गुरु कपालभैरव को बुलावा भेजा। तब श्रीशंकराचार्यने तो खुद कालभैरवनाथ, जो इन अष्ट-भैरवोंके प्रमुख सद्गुरु थे, उन्हें आमंत्रित किया। आपने प्रकट होकर राजाका शिरच्छेद कर डाला। इस कथाका उल्लेख शंकरांचार्यजीने अपने (१) भैरवाष्टक और (२) श्रीकालभैरवाष्टक नामक दो स्तोत्रोंमें किया है।

इन अष्टभैरवोंके नाम हैंः—(१) बटु, (२) रुद्र, (३) चंड, (४) अतिसांग, (५) क्रोध, (६) कपाल, (७) संहार, (८) उन्मत्त.

कहा जाता है कि एक रावळनाथ भैरव ऊर्फ रावाग्निभैरव हो गये। जो सब भैरवोंसे अधिक अधिकारी थे। वे पहले नाथसंप्रदायमें प्रविष्ट हुए। और

बादमें कालभैरवकोभी उन्होंने अनुग्रहित किया। अष्टभैरवोंको आपनेही अनुग्रह दिया। और भी जिनको आपने नाथपंथमें प्रविष्ट किया है उनके नाम हैं:—

१ श्रीशंकर भैरवनाथ
२ श्रीमार्तंड भैरवनाथ
३ श्रीस्पर्शसिद्ध भैरवनाथ
४ श्रीसोनार सिद्ध भैरवनाथ
५ श्रीकरकोट भैरवनाथ
६ श्रीकमल भैरवनाथ
७ श्रीबादल भैरवनाथ
८ श्रीबोभाट भैरवनाथ
९ श्री निगुड भैरवनाथ

इनको रावाग्नि भैरवनाथजीने नाथपंथकी दीक्षा देकर शक्तिपंथके भी उपासकोंको अनुगृहीत किया है। इन सबको साथ लेकर और दूसरे भी हजारों लोगोंके साथ आपने पूरे महाराष्ट्रका दौरा किया और सद्धर्मका राज्य फैला दिया। इससे मालूम होता है कि नाथसंप्रदायके भी बादमें इस भैरव मेलेने नाथसंप्रदायी बनकर उसी संप्रदायके दूसरे लोगोंके भी पूर्व-कालमें बहुत सा कार्य किया है।

" सोहिरोबानाथ अंबिये " नामक एक प्रमुख नाथसंप्रदायी १७१४–१७८९ ई० में हो गये। इनका उल्लेख किये बिना इस लेखकी समाप्ति मैं नहीं कर सकता हूँ। सावंतवाडी संस्थानके बांदा नामक ग्रामके वे निवासी थे और तलाठीका काम करते थे।

अपने ग्रामसे आप राजधानी सावंतवाडीको कुछ कागज लेकर चले थे। रास्तेमें एक जंगलमें श्री गहिनीनाथजी प्रकट हो गये और सोहिरोबाको अनुग्रहप्रसाद देकर नाथपंथमें ले लिया। बादमें आप नौकरी छोड बैठे। फिर उत्तर हिंदुस्थानमें प्रवास किया जहां महादजी शिंदेके साथ मुलाकात हुई। उजैनमें एक मठकी स्थापना करके सोहिरोबानाथजी १७८९ ई. में गुप्त हो गये। आपके जो ग्रंथ प्रसिद्ध हुए हैं उनके नाम इतरह हैं:—

(१) अक्षय बोध
(२) महदनुभवेश्वरी
(३) पूर्णाक्षरी
(४) अद्वयानंद
(५) सिद्धांतसंहिता
(६) पदसंग्रह

श्री. भगवंत बाळकृष्ण पै, रायकर नामक एक सज्जनने इन ग्रंथोंका प्रकाशन किया है। ग्रंथोंसे समझ में आता है कि सोहिरोबानाथजी आत्मप्रबोध

के कितने ऊँचे दर्जे पर पहुंचे थे। जिन सज्जनोंको नाथपंथका पूरा ज्ञान पानेकी इच्छा हो उन्हें बिनती है कि वे उपरिनिर्दिष्ट ग्रंथोंका ठीकठीक परिशीलन करें!

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु।

ठळकवाडी बेळगांव
ता. १–१२–१९४० ई.

नागेश वासुदेव गुणाजी

उपोद्घात

[श्री. **कामत** (मुंबई) **प्रणीत**]

" संतजन संसारवृक्षके सर्वोत्कृष्ट पक्वफल हैं। "—प्रबुद्धभारत

" सविनय नमन है उन **शिवात्माओंको**, जो गूढ आत्मानंद लूट रहे हैं। इस सांसारिक जीवनके तापसे तपे हुए संत्रस्त **जीवात्माओंपर** परमात्मासुखजलकी वर्षा करके आप उनको शांत और उत्साहित करते हैं। आप चैतन्यके आभूषण हैं। ब्रह्म-विद्या देवताकंठको आप भूषित करते हैं, जहां **पुरुषोत्तम परमात्मा** निवास करता है, ऐसे आप मनोहर प्रासाद हैं। जो आपके चरणोंके पास आकर विनम्र होते हैं उनसे साधनचतुष्टय संपन्नता की आप अपेक्षा नही करते हैं। और शास्त्रपांडित्यकीभी अपेक्षा नहीं रखते हैं। लोगोंमें सिर्फ विश्वास, श्रद्धा होगी तो उन्हें ' प्रकाश ' बता देते हैं। "

—**श्रीएकनाथजी** (भागवतग्रंथ)

मानव जीवन का अंतिम ध्येय है ईश्वर की पहचानत और उससे मिलन। हरएक जीवनका वह "अधिकार" है, जन्मसिद्ध हक़ है, ऐसाभी थोडा आगे बढकर हम कह सकते हैं। मानव जीवनके लिये "मुक्ति" कोई ऐसी चीज नहीं है, जो बाहरसे लानी पडती है। आत्मन्के साथ जीवमें वह मौजूदही है। लेकिन जीवात्मा उसे भूल बैठा है। प्रकृति–मायाकेही साथ जीवका मिलान होकर वह मायापरही निर्भर रहता है। मायाकी अनंत शृंखलाओंसे जीवको ' मुक्त ' करनेके लिये सब शास्त्रोंका समूह तैय्यार है। लेकिन शास्त्र भी तो तीक्ष्ण हथियारोंके या शस्त्रोंके समान हैं। शृंखलाएं तोडने के लिये हथियार तीक्ष्ण तो होनाही चाहिये। अब इनका उपयोग करना तो हम युगोंसे भूल बैठे हैं। यह भूल इसी जन्मसे नहीं वरन् पिछले अनेक जन्मोंसे हम कर रहे हैं।

पशुका मानव, मानवका अतिमानव, और उसका परमेश्वर बनानेकी ताकद शास्त्रोंमें है। साधनचतुष्टय भी एक तीक्ष्ण शस्त्र है जिससे मुक्तिलाभ हो सकता है। पर यह शस्त्र केवल धारण करनाभी जहां हमारी ताकतके बाहर

है, तब उसको उठा कर चलाने की, (काममें लानेकी)–बातही कैसे? इसमें सफलता पानेके लिये अनेक जन्मों के "अभ्यास" की आवश्यकता है। "साधन-चतुष्टय" या "मोक्ष के चार साधन" ऐसे हैं—(१) नित्यानित्य विवेक, (२) इहपरलोकके सुखोंके बारेमें वैराग्य, (३) षड्गुणसंपन्नता और (४) तीव्र मुमुक्षुत्व.

इनमेंसे पहले साधनका स्पष्टीकरण इसतरह किया जा सकता है। सच्ची अविनाशी चीज कौनसी है, और विनाशी चीजें कौनसी हैं, इनकी पहचानत के लिये हमेशा ठीकठीक विचार करते रहना। दूसरा साधन है, " स्त्री, संपत्ति और सुरासे प्राप्त होनेवाले इस संसार के सब संतोष को और स्वर्गीय नंदनवनवाले अमृत, अप्सराएं और आराम सुखसुविधाओंकोभी विनाशी समझकर उनपरसे चित्त पलटाना। तिसरेका तात्पर्य है अंतःकरणकी स्थिरता, इंद्रियोंपर अधिकार, निरिच्छता, सहनशीलता, विश्वास या श्रद्धा और समाधान या संतुष्टता जैसे षड्गुणोंका अपनेमें विकास कर लेना। और चौथा साधन है मोक्ष की तीव्र इच्छा उत्पन्न कर लेना। जैसा चार दिनका भूखा, प्यासा रहा हुआ आदमी भोजन के लिये तीव्र इच्छा करता हैं।

यह साधनचतुष्टय संपादन करनेके बाद मनुष्यको परमात्माकी पहचानत किये हुए शास्त्रसंपन्न और अधिकारी सद्गुरूके पास जाना पडता है। या कभी सर्वज्ञ सद्गुरू उसको अपने पास खींचभी लेता है। ऐसे सत्संगमें गुरू शिष्यकी परीक्षा लेकर उसको 'तत्त्वमसि' का उपदेश देता है। और वहांतक पहुंचने का रास्ताभी बताता है। अब उस रास्तेपरसे चलनेका कार्य शिष्यकोही करना पडता है। राह कठिन है और चलना कष्टमय है। पर अंतमें मोक्ष मौजूद है। साधनचतुष्टयमेंसे एकभी साध्य करनेका यत्न उसकी विशालता देखकरही हमें अचेतन कर देता है। एकही साधन पूरा काबूमें लानेके लिये एक जन्मकी आयुमर्यादा कम पडतीसी प्रतीत होती है। मोक्ष की इच्छा तो है, सब लोगोंके मनमें। स्वतंत्र होना तो है सब लोगोंको। गुलामीकी तकलीफ चाहताही है कौन? स्वातंत्र्य या मोक्षका अखंड सुख सभीको प्राप्त करना है। मोक्ष ऐसी चीज है कि जिससे सब दुःखोंका परिहार और चिरंतन सुखका लाभ होता है, ऐसा वेदभी कहते हैं। दुःखका अभाव ही सुख

है, ऐसा सांख्यवादी कहते हैं। इस वेदोंका मत कर्मप्रवण है और सांख्योंका मत निष्कर्मप्रवण है ऐसा कहा जाता है।

तोभी तीव्र मुमुक्षुत्व पैदा होने परही 'मोक्ष' मिलेगा यह बात दोनोंसे विदित होगी। अब यह तीव्र मुमुक्षुत्व पैदा होने के लिये गुलामीके दुःखोंका अनुभव लेकर दासता या पराधीनताके बारेमें तीव्र तिरस्कार रूप वैराग्य प्राप्त होना चाहिये। सांसारिक जीवनके बंधनोंसे क्या हानी है वह ज्ञात होनी चाहिये। जब इस दुःख और हानिसे मनुष्य तप्त होगा तभी उसको इससे छुटकारा पानेकी इच्छा उत्पन्न होगी। छुटकारा पानेकी तीव्र इच्छा ही मुमुक्षुत्व है।

साधन–चतुष्टय की कठिनाइयां देखकर आदमी हैरान होगा और उसके लिये यत्न भी छोड देनेकी इच्छा करेगा। "हममें ऐसी ताकतही नहीं है" ऐसा कहेगा। यह तो उसकी भूल है। और ऐसेही भूल करने वाले लोगोंको मदद देने के लिये संतोंका अवतार होता है। वे साधन-चतुष्टयकी अपेक्षा रखतेही नहीं। केवल मात्र श्रद्धा बस है। केवल दयासागर होनेसे संत ऐसे लोगोंका उद्धार करनेका कार्य सिरपै लेते हैं।

श्रीज्ञानेश्वरजी संतोंकी महिमा इस प्रकार वर्णन करते हैं। "काशीक्षेत्रमें बहुतोंको मोक्ष मिलेगा। लेकिन वहां जाकर मरना पडता है। गंगा सबके पाप धोती है। लेकिन वहांतक जाकर डुबकी लेना पडता है। संत तो दयार्णव दयाके गहरे अथाह सागर–होकर भी किसीको वहां जाकर डूबने मरनेकी कोई आवश्यकता नहीं पडती है। उनके ही कृपाकटाक्षोंकी लहरें हमें ठीक ठीक आप्लावित कर हमें अंदरबाहरसे स्वच्छ कर देती है। उनकी सहायतासे भवसागर तो हम सरलतासे तैर कर जा सकते हैं।"

सारांश यही है कि संत कृपासागर हैं और जिसकी श्रद्धा हो उसे हाथ देते हैं। योगयज्ञोंसे न मिलनेवाला आत्मानुभव वे तो झट्ही श्रद्धावानोंको देतें हैं। श्रीगजानन महाराजके जीवनचरित्रमें ऐसे कई एक शिष्योंके अनुभव दिये हैं। जिनको स्वयं परमात्माका अनुभव है। और जो वही परमपदानुभव दूसरोंको भी प्राप्त करा सकते हों ऐसे श्रीगजानन महाराज जैसे संत मिलना कठिन है। किसी पूर्वजन्मार्जित सद्भाग्यसे ही ऐसे संतोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है। दूसरों को तो वे

समीप होकर भी नहीं दीखते। और दीख पडे तोभी पहचाने नहीं जाते हैं। ऐसे इस अमूल्य सत्संगकी प्राप्ति न होनेका और भी एक कारण है। वह है:—

नकली साधुओंकी पैदाइश

नकली बाबाओं की उपज और उनके पीछे चलनेवाले स्त्रीपुरुष भूत और वर्तमान कालमें बहुत हुए हैं और भविष्यत् में भी होंगे। नकली साधुओं की तरफदारी करने का काम कोई भी समंजस मनुष्य नहीं करेगा। पूर्वकालीन सच्चे संतोंने भी ऐसे नकली लोगों के बारेमें कड़ी भाषामें लिखा हुआ ही है। तो भी आज ऐसा लिखना पडता है कि नकली साधुओं के विरोध में इतने फालतू लेख लिखे गये है और हीन प्रचार किया गया है कि जिससे सच्चे संतोंके बारे में भी लोग शंकित होकर उनके विरोधी रास्तेसे जाकर गढ़ेमें गिर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप लोग अन्यान्य दुर्गुणोंके और दुर्व्यसनोंके फंदेमें पड गये हैं। और ढोंगधतूरेवाले बैरागियोंसे जितनी समाजहानि नहीं हुई है उससे कहीं अधिक ज्यादह समाजहानि इन दुर्व्यसनोंने की है। ठकबाजी, जुव्वेबाजी, रंडीबाजी वगैरे बाजिओंनें तो बुआबाजी से कितने अधिकतर लोगोंका विनाश किया है और अकेलीही 'शराब' कितने लोगोंका घरबार जलाकर बैठी है। इन व्यसनों के विरोध में लोग इतना शोरगुल कभी नहीं मचाते हैं जितना संतसज्जनों के विरोध में मचाते हैं, यह भी एक संसार में बडी आश्चर्य की बात है। मचायेंगे तो कितना जनहित होगा और लोगों के बालबच्चोंका और साथियोंका धन्यवाद मिलेगा।

धर्ममार्ग से जानेवाले लोगही जब कम होते हैं तब साधू के पीछे चल कर उनमें से जिनकी नुकसानी होगी ऐसे तो बहुतही कम होते हैं। वैसे दुर्व्यसनों के जाले में फँसनेवाले तो साधारणतः सभी होते हैं और सब के सब उस में अटक कर मरते हैं। धर्ममार्ग में चलनेवालों को शायद सत्संगति मिलकर मोक्ष मिलने की संभावना तो है। लेकिन दुर्व्यसनों के फंदे में फँसनेवाले को ऐसा मौका कभीं नहीं आयेगा।

पढे लिखे हुए लोग साधुओंके बारेमें बहुतकुछ निंदा करते हैं। लेकिन उन्हीं शिक्षित लोगोमें सर्वसाधारणतः सारेही लोग कुछ न कुछ दुर्व्यसनके पाशसे अपनी जान खो बैठते हैं। ठकबाजी तो अशिक्षित लोगोंसे

नहीं होगी ऐसी शिक्षित लोग अपने अपने व्यवसाय धंदेमें करते हैं, यह भी सज्जन जानतेही हैं। नोकरी दिलानेका वचन देकर युवकोंको ठगाने वाले कितने महाशय दुनियामें मौजूद हैं! इस प्रकार अधर्मसे अधोगति प्राप्त करनेवालोंके मार्ग शतगुणित होतेही चले जाते हैं। लेकिन उनके बारेमें कोई विरोधी अस्त्र नहीं चलाता है, संतोके बारेमें हमेशा शंका लेनेवाले लोगभी ऐसे महाशयों के जालमें झटही फंसकर अधःपतित हो जाते हैं।

नकली बुआबाजी और दुर्व्यसनवाले सब अपने अपने पापोंकी सजा भोगतेही रहेंगे। लेकिन भूलसेभी किसी सच्चे संतकी निंदा होगी तो उस पापका दंड उन सबसे अधिक मिलेगा। क्योंकि अच्छे रास्तेसे जानेवाले अनेक लोगोंको इस कार्यसे रुकावट होगी। और उतने जीवोंके अधःपतनके पापका बोझ एक आदमी के कंधोंपर पडेगा, जो संतोंकी निंदा करता है। इसलिए निंदकोंको समझकरही संतों के विरोध में हथियार उठाना चाहिए। अतः उस कार्यमें बिलकुल न पडनाही अच्छा। अग्नि, जल, राजा और संत इनके बारेमें बहुतही सावधानी से व्यवहार करना पडना है। ऐसा बतानेवाला एक हिंदी दोहा भी यही बात कहता है।

तुकाराम और हरएक संतने सत्संग के बदले में ऐहिक और पारलौकिक सब लाभोंको खो देना पसंद किया है। और सत्संग में भी रहना हो तो "अति सर्वत्र वर्जयेत्" इसी न्याय से रहना चाहिये ऐसा उपदेश किया है। क्यों कि उसका भी अतिरेक होगा तो आदमी कुछ भूलसे सच्चे संतके बारे में भी कुछ बुरी बात कह देगा। और फिर पातक का ही बोझ सिरपे उठा लेगा। सच्चा संत भी हो तो उसके चालचलन में भी कुछ दोष एकाध समय पर दीख पडने की संभावना है। फिर वह देखना सच्चा हो या देखनेवालेकी गलतफहमी हो। जब सच्चे संत का पूर्ण लक्ष्य या ध्येय किंवा आदर्श परमात्माही होता है तब व्यावहारिक चालचलन में उसकी सांसारिक लोगों के समान हमेशा कर्म करते रहने की संभावना कम होती है। और साधारण आदमीसे उनकी निंदा होने की संभावना अधिक है। फिर श्रीकृष्णजीभी उद्धवको बताते हैं। "त्रैलोक्यमें के सब पातकोंका बोझा जो आदमी सिरपे लेना चाहता है उसीको संतनिंदा करनी चाहिए।"

फिर क्या आदमीको हरेक मालाधारी, जटाजूटवाले गेरुएं वस्त्रधारी पुरुषका पाँव पकडते रहना चाहिए ? इस प्रश्नका उत्तर संत तुकाराम देते हैं। "नहीं भाई ! ऐसा तुमसे न बनेगा तो मत करो। लेकिन किसीकीभी निंदा अपने मुँहसे मत करो ! उसमें सच्चे संतकी भी निंदा होनेका धोखा तो है ही !" निंदा तो किसीनेभी किसीकीभी नहीं करनी चाहिये। यह तो समाजका सर्वसाधारण नियम है। कमसे कम उसे तो तोडना तो नहीं चाहिए। फिर हरएकक बारेमें कुशंकाओंका प्रदर्शन करना कितना बडा पाप है यह तो सब जानतेही हैं। उसमें खुद अपनाही अधःपतन है।

महाभारतके आधारपर बनाया हुआ " पांडव प्रताप" नामक एक ग्रंथ है जिसमें सद्गुरुओंके बारह प्रकार दिये हैं। (१) धातुर्वादी, (२) चंदन, (३) विचारी, (४) अनुग्रही, (५) परीस, (६) कच्छप, (७) चंद्रमा, (८) दर्पण, (९) छायानिधि, (१०) नादनिधी, (११) क्रौंच और (१२) सूर्यकांत.

अब ये सभी प्रकार सद्गुरुओंसे शिष्योंको आत्मप्रत्यय मिलनेके भिन्न भिन्न मार्गों से बने हुए हैं। (१) सद्गुरु अपने शिष्यको पहले तीर्थ-यात्रा करने का और कोई व्रत-पालन करने का हुकुम देता है, और बाद में कृपा करता है। (२) कभी तो केवल सद्गुरुसान्निध्यसे ही आत्मदर्शन होता है। (३) कभी नित्यानित्य विवेक का चिंतन करने के बाद आत्मप्रचीति देता है। (४) कभी शिष्य को कुछ भी करने की जरूरत नहीं पडती है। वैसेही अनुग्रह होता है। (५) कभी गुरुचरणों का स्पर्श होते ही दिव्य दर्शन होता है। (६) कभी गुरु के दृष्टिक्षेपसे ही ज्ञान प्राप्ति हो जाती है। (७) कभी दूर होकर भी चंद्रकिरणों की तरह सद्गुरुकृपा शिष्योंपर आ बरसती है। (८) कभी आयने में बदन दीखता है वैसेही गुरुदर्शन के समय गुरु में ही आत्मदर्शन हो जाता है। (९) कभी उसकी छायामें आकर ही शिष्य स्वानंद साम्राज्य प्राप्त कर लेता है। (१०) कभी शिष्य की प्रार्थना-का आर्तस्वर सुननेपर भी गुरु दिव्यदर्शन देता है। (११) कभी सद्गुरु ही खुद अपने शिष्यों का स्मरण करता है और साथही साथ शिष्य भवसागर पार कर जाता है। (१२) और कभी सद्गुरु अपने नेत्रकटाक्ष शिष्योंपर फेंक कर उन्हें समाधि लाभ कर देता है।

श्रीगजानन महाराज और उन के शिष्यगण के बारेमें ये सब प्रकार दृष्टिपंथमें आये हुए हैं। इन प्रकारों से संतों की अजब करामत क्या है यह बात समझ में आती है। चरित्रपठन से विदित होगा कि यह अनूठी प्रक्रिया श्रीगजानन महाराज के जीवन में मौजूद है।

कोई गुरू कहलानेवाले सज्जन ऐसे रहते हैं कि बिना पूजन-वंदनसे मोक्षमार्ग नहीं बताते हैं। पाद्यपूजा और दक्षणाकी उनके बारेमें कडीही जरूरत होती है। दूसरे पंथके मनुष्यके साथ और दूसरे गुरुके चेलेके साथ तो कभी संभाषण नहीं करेंगे। जैसा वह शिष्य कोई अपराधी है ऐसा मानकर उसको सापत्नभावसेही देखते हैं। श्रीगजानन महाराजके साथ ऐसा कुछ भी आचारधर्म नहीं दीख पडता है। जो कोई आपके चरणोंके पास आना चाहे उसको आनेमें कोई आपत्ति नहीं। फिर वह किसीभी पंथका या गुरुका चेला क्यों न हो। जिसको मोक्षपदप्राप्तीका मार्ग ढूँढ़ना हो वह उनके पास आकर मदद ले सकता है। ऐसे कई एक शिष्य दूसरे दूसरे सद्गुरूओंसे मिलनेके बाद आपके पास आये हैं और ज्ञान लाभ उठाकर तृप्त हो चुके हैं। बच्चा माँको छोडकर जब मौसीके पास जाता है तब तो वह स्त्री उसको माँसेभी अधिक प्यार करती है। वैसाही श्रीगजानन महाराजका आचरण है।

हठयोगसे सिद्धियाँ प्राप्त करनेकी इच्छा करके कोई बहुत कष्ट उठाते हैं। वैसेभी कोई स्वतंत्र यत्न करनेवाले आजायँ तो उन्हेंभी मदद मिलती है। निरी सिद्धियोंके चक्करमें फँसनेवालोंको महाराज हाथ देकर आगे बढा देते हैं। क्योंकि खुद श्रीकृष्णजीही बोलते हैं। "जिसको ऐहिक ही लाभ होना वे चाहे सिद्धियोंके पीछे पडें। लेकिन जिसको खुद मेरे पास आना है वह कभी सिद्धियोंकी तरफ नहीं बढेगा। क्योंकि सिद्धियां तो अध्यात्म मार्ग में खाइयोंकी तरह होती हैं।" फिर ऐसे लोगोंको श्रीगजानन महाराजकी कृपासे कितना लाभ हुआ होगा यह तो वर्णन करनाभी बहुत कठिन कार्य है।

सबसे महत्वपूर्ण सिद्धि है 'सच्चिदानंद प्राप्ति'। मनुष्य के सब यत्न चले हैं आनंदप्राप्ति के ही लिये। छोटी बडी सिद्धियां भी आनंद प्राप्त कर देंगी। सर्वसाधारण यश भी आनंद प्राप्त कर देता है। लेकिन 'सच्चिदानंद' प्राप्त करलेनेसे जैसा शाश्वत आनंद प्रगट होता है, वैसा शाश्वत और अटल, अडिग, ध्रुव आनंद साधारण यशसे और सिद्धियों से कभी

प्राप्त नहीं होगा। वह आनंद थोडी देर के ही लिये है। और वह समाप्त होते ही दुःख प्राप्त होता है। इसलिये संतजन जागतिक यश और सिद्धियों को तुच्छ एवं हेय समझकर सिर्फ 'सच्चिदानंद' की ही प्राप्ति करने के लिये खुद यत्न कर बैठे हैं। और दूसरों को भी वही आनंद प्राप्ति का साधन बता देते हैं। आनंद तो बहुत प्रकार के रहते हैं जो ऐहिक हैं। मायारूप असंख्य हैं उनसे प्राप्त होनेवाले अशाश्वत आनंद भी अगणित हैं। वे तीन वर्गों में रक्खे गये हैं। एक तमोगुणी, पशुतुल्य, इंद्रियगम्य आनंद, जो मिठाई खाने से होगा। दूसरा रजोगुणी, मानवी, मनोगम्य आनंद जो अच्छे विचारों से होगा। तीसरा सत्त्वगुणी, दैवी, बुद्धिगम्य आनंद जो उलझे हुए गणित के प्रश्न के सुलझानेसे होगा। लेकिन इन सब प्रकारों से परे, उनसे श्रेष्ठ, एक आनंद है जो ऐसे ही लोगोंको प्राप्त होगा, जिनका चित्त और बुद्धि शुद्धचारित्र्यसे ही अंतर्बाह्य पुनीत हुए हैं। गीतामें ऐसे आनंद का वर्णन है, "जो जडसूक्ष्म इंद्रियोंके परे है। और जो बुद्धि के क्षेत्र के भी परे होकर चित्त को संवेदनाओं से ही मालूम होता है।" सद्गुरु, संत और सच्छिष्य को ही उसका अनुभव होता है। कोई साधारण योगी क्षणार्ध में एक जगह गुप्त होकर दूसरे क्षणमें दूर स्थानमें प्रकट होगा, एक लोकसे दूसरे लोकमें भी चला जायगा, लेकिन वह कच्चाही माना जाता है और सद्गुरुका चेला नहीं समझा जाता है। कबीरजी यही कहते हैं। फिर साधकका मन सिद्धियोंके जालमें फँसनेका नहीं है। यह बात स्पष्ट होती है।

खुद भगवान सच्चिदानंदप्राप्तिका रास्ता ऐसा बताते हैं। "चित्त शुद्ध करके मुझपर एकाग्र करो।" भगवान जड, ऐहिक बातों के परे हैं। अतः भगवान पर जडे हुए चित्तको सच्चिदानंद प्राप्त होता है। फिर उसके लिये चौरास्सी लक्ष जन्मोंका चक्कर बंद है। क्यों कि वासनाओंसे जन्म-मरण प्राप्ति है। जब सच्चिदानंदसे वासनाओंकाही निर्मूलन होता है। तब जन्ममरण ही नहीं रहता है। जैसा सूर्योदय के बाद तारागणोंको लुप्त होना ही पडता है। फिर इंद्रियजन्य सुखों की तो बातही क्या ?

अब यह सच्चिदानंदका आलोक व्यक्तिमें आने के लिये सद्गुरु की आवश्यकता है। जैसे हमें अग्नि चाहिए तो जिस स्थल या वस्तूमें अग्नि

मौजूद है ऐसी चीजोंसे जलनेवाली चीजका घनिष्ट संबंध या संपर्क होनाही चाहिये। इस संबंधकी बात साधकके यत्नोंकी परीक्षा करनेवाले सद्गुरुही जानते हैं। और दोनों का संबंध उनकीही कृपासे, ईश्वरी योजनासे हो जाता है। सद्गुरु जो ईश्वररूप है उससे संबंधित होने के पहले संतजनोंसे भेट होती है और चित्त की शुद्धि सत्संगसे होते होते बादमें सच्चिदानंदमय सद्गुरु परमात्मासे मिलन होता है।

"आत्मप्रत्यय देकर जो शिष्यों को "शाश्वत मनः शांति" "सच्चिदानंद प्राप्ति" कर देगा उसी को सच्चा सद्गुरु समझना चाहिये, दूसरे किसीभी कृत्यसे एक मनुष्य दूसरे का सद्गुरु कभी कहलाया नहीं जाना चाहिये।" ऐसा एकनाथजीने लिखे हुए भागवत ग्रंथ के द्वादश स्कंधमें लिखा है।

ऐसा गुरु-शिष्य-संबंध मानवी यत्नों से कभी भी नहीं होता है। होता है केवल ईश्वरी सूत्र से ही। ऐसा कई एक आध्यात्मिक ग्रंथों में लिखा हुआ मिलेगा। श्रीनिवृत्तिनाथ–गहिनीनाथ, चांगदेव–मुक्ताबाई, नामदेव–विसोबा, खेचर–ज्ञानदेव इत्यादि संतजनों के बारे में ऐसा ही हुआ है। विसोबा खेचर को तो खुद उसके देव विठोबा ने ही हुकुम किया था कि जाकर ज्ञानदेवजी के चरण पकडो। वामन पंडित को चेला बनानेकी रामदासजी ने बहुत कुछ चेष्टा की लेकिन कुछ भी नहीं बना। खुद संत तुकाराम जो ब्राह्मण नहीं थे उन्होंने वामन पंडित ब्राह्मण अपने पास आते हुए उसे शिष्य नहीं बनाया। ब्राह्मण 'रामदास' के तरफ भेजा। लेकिन वहां 'रामदास' से भी कुछ न बन पडा वामन पंडित को मलयगिरी चलना पडा। वहां 'सदानंद स्वामी' उन्हें गुरु मिले। इन बातों से ज्ञात होता है कि मानवी यत्नसे नहीं वरन् ईश्वरी सूत्र से ही अपने अपने सद्गुरु से मिलन होता है। अब मानव को यत्न यही करने का है कि अपनी चित्तशुद्धि करते रहे। फिर श्रीरामकृष्ण परमहंसजी ने कहाही है कि सद्गुरु तो ऐसे शुद्धचित्त और सच्चरित्र शिष्यों के खोज में ही रहते हैं। सद्गुरु की नजर ऐसे मानवपर जरूर पडती है। संमिलन हो जाता है।

इसी नियमके अनुसार जीवनमें ऐसा भी होता है कि शिष्य तो अपने अपने कर्म शुद्धचित्तसे करतेही चलते हैं, और सद्गुरु खुद आकर उन्हें

योग्य समयपर भेट देते हैं। नासिकके पास त्रिंबक क्षेत्रमें एक गुहामें सद्गुरू गहिनीनाथजी और शिष्य निवृत्तिनाथसे की हुई भेंट इसीप्रकार हुई। सोहिरोबानाथजी तो साधारण तलाठी थे। और दफतरके कामके लिये राजधानीमें जाते हुए उन्हें रास्तेमें, गहिनीनाथजीने दर्शन दिया था। श्रीगजानन महाराजको तो केवल बचपनमेंही श्रीमच्छिद्रनाथजीका और नारायण सरस्वतीजीका अनुग्रह हुआ है। पूर्वजन्मसे और अंदरसे ऐसे लोगों की जो चारित्र्यशुद्धि बनीही रहती है वह दूसरोंको जड दृष्टिसे दिखाई नहीं पडती है।

श्रीगजानन महाराजकी तरह सद्गुरु अपना पुण्यसंचय तो पूर्वजन्मसेही हस्तगत कर बैठे हैं। केवल जगदुद्धारके लिये संसारमें नया शरीर धारण करके आये हैं। नयी चाल चालनसे रहते हैं। आपको भूत भविष्यकी बातें तुरंत ज्ञात होती हैं। दूसरे लोग जपतप और भक्तिसे वहाँतक पहुंचते हैं। और सद्गुरुके साथ मिलन होनेके बाद फिरफिरसे एक देह छोडके नया देह धारण करना और संसारके त्रस्त जीवोंको मदद देते रहना उनका धंधासाही होता है। धन्य है इन संतोंकी, जो आनंदमय ईश्वरपदकोभी छोडकर हमारे लिये फिरफिरसे यहांतक आते हैं, और हमें मदद देनेमेंही आनंद मानते हैं।

चमत्कार

सिद्धियों की सहाय्यता से चमत्कार होते हैं। और सिद्धियां किसी साधारण अभ्यास से भी प्राप्त होती हैं। लेकिन कोई चमत्कार असाधारण सद्गुरुओ की सहायतासे भी साधारण लोक कर सकते हैं। और ऐसे चमत्कार जीवों को अध्यात्म मार्गपर कुछ न कुछ सहायता देते हैं। अब साधारण लोगों को, " चमत्कारों " का ऐसा चुनाव करना मुष्किल होता है कि जिनका मूल असाधारण सद्गुरु ही है। श्री गजानन महाराज के हाथसे हुए चमत्कार वैसे ही असाधारण मूलसे निकलते हैं। अतः वे खुद उसका कारण नहीं बता सकते हैं। लेकिन वे आत्मज्ञानी हैं और इससे इन चमत्कारोंको भी आत्मतत्त्वके ही प्रकटी-भवन कह सकते हैं। लेकिन कोई आदमी जब शरीरको कष्ट देकर और जामबूझकर और लोगों को खेल बतानेके

लिये ही चमत्कार करतें हैं वे ठीक नहीं हैं। क्योंकि वे गलतफहमी फैलाते हैं। इसलिये 'सिद्ध' कैसा बनता है या चमत्कारकी शक्ति पैदा किस प्रकार होती है, यह जानना चाहिये। इस ज्ञानसे भ्रम करनेवाले चमत्कारों से आदमी बच सकता है। "श्रीरामकृष्ण परमहंस" यह मार्ग बिलकुल ठीक ठीक रीतिसे बताते हैं। आप बताते हैं कि तप, योग, मंत्र और औषधियों से भी सिद्धियां प्राप्त होती हैं और आदमी 'सिद्ध' बनता है। लेकिन कोई लोग बिना कष्टसे, जन्मकालसे ही या कभी आकस्मिक घटनासे सिद्धियों की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

अभी हम लोग यह मान सकते हैं कि ऐसी सिद्धियां गुरुकृपा से प्राप्त होती हैं, फिर आदमी को वह गुरु इस जीवन में मिला भी हो या न मिला हो।

श्री गजानन महाराज की सिद्धियां ऐसी श्रेष्ठ प्रकार की हैं। अब आकस्मिक सिद्धि प्राप्ति भी पूर्व जन्मों के कष्टों से ही मिलती हैं। लेकिन इस जन्म में वह चमत्कारसा मालूम पडता है। किसने क्या कमाई की है और उसका अधिकार उसको कब देना यह बात तो मालूम रहती है सद्गुरु को। उसकी नजर जहां तहां मौजूद ही है। समय आनेपर डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के नाझिर या तो कोर्ट ऑफ वॉर्डस् के समान जिसकी जिंदगी उस के सुपूर्द की जाती हैं। अब यह समय आता है जब अपनी चित्तशुद्धि और चारित्र्यशुद्धि "पूर्ण" होती है। इससे मालूम होगा कि इस बातमें न कोई देनेवाला है न कोई लेनेवाला। क्योंकि जब यह द्वंद्वों का ही भेद निगल जाता है तभी सच्ची सिद्धियां प्राप्त होती हैं। और ऐसे सिद्धों से ही उपयुक्त चमत्कार होते हैं। बाकी सब तो बाजार के खेल तमाशे हैं। इससे साधारण लोगों को चमत्कारों से बचना कठिन होता है। हमारा काम इतनाही है:—चित्त और चारित्र्य शुद्ध रखना। आत्म-ज्ञानकी खोजमें रहना। सच्छिष्य या अच्छा मुमुक्षु बनने का यत्न करते रहना। इसका भी मार्ग उपनिषदों ने बताया है।:—

"इस लिये सद्गुरूकी मदद तो होनीही चाहिये और वह होती भी है। हमको यत्न जारी रखना चाहिये। यत्न की सफलताके लिये 'सद्गुरु' 'साधन' नहीं होता है। साधन तो हमको ही यत्नसे पैदा करना चाहिये। परमात्माका परिचय हरएक चीजमें होता रहेगा ऐसा यत्न जारी रखना

चाहिये। क्योंकि सद्गुरु और सच्चिदानंदब्रह्म तो दोनों एकही हैं। एक है सगुणरूप और दूसरा निर्गुण।

सगुण के ही आधारसे चलनेवाले जीवोंको निर्गुण–ब्रह्मसे, सगुण–ब्रह्म सद्गुरु अधिक उपयुक्त होता है। लेकिन इस कारण एकको श्रेष्ठ और दूसरेको कनिष्ठ समझना भी एक बडी भारी भूल है। निर्गुण ब्रह्म जहां तहां और हमारे भीतरमें होकर भी उसे जानना कष्टसाध्य है। इसलिये सगुण ब्रह्मको हम अधिक उपयुक्त मानते हैं। बात यह है कि निर्गुण ब्रह्मही सगुण बनकर जीवोंको दर्शन देकर अपना अनुभव कर देने के लिये सगुण रूपमें–नीचे–उतर आता है। अवतार और सद्गुरु और संत ये सब ऐसे उतर आये हुए निर्गुण ब्रह्म हैं। घी खाना है तो 'पतला' करके खाओ या घनीभूत 'जमाहुआ' खाओ! बात एकही है। दोनोंमें फर्क नहीं है। जिसको जैसी सुविधा हो वह वैसा प्रकार ले सकता है। अवतार तो कोई विशेष कार्य के लिये विशेष समयमें हो गये और होंगे। सद्गुरु हमेशा कहीं ना कहीं मौजूदही हैं। यत्न करनेवालोंको मिलते हैं।

श्री गजानन महाराज ऐसे एक सद्गुरु हैं। शिष्योंको अपने अपने किये हुए कष्टों के अनुसार आपसे सहायता मिलती है। निरा ऐसा सत्संग होना भी एक बडा सहाय ही है। क्योंकि ऐसा दर्शन भी न होगा तो मुमुक्षु किस प्रकारसे धोखा खाएगा उसका पताही नहीं चलता है। वह समझता है कि हम तो सीधे चले हैं। सन्मार्ग से चले हैं। लेकिन भूल वहां भी होती है। क्योंकि वे सब मार्ग जड और ऐहिक वस्तुओं से भरे हैं। माया जहां वहां खडीही है। इसका एक उदाहरण लीजिये। मुमुक्षु बोलता है हम 'दया' करते हैं। लेकिन श्रीरामकृष्ण परमहंस बोलते हैं, 'दया' शब्द में भी अहंकारवृत्ति है! इससे 'सेवा' अधिक अच्छी है। और यह बात कौन नहीं मानेगा? इस प्रकार सात्विक गुणों के साथ भी आदमी माया के चक्कर में फँस जाता है। और हमें तो इससे छुटकारा पाना है। सात्विक और तामस गुणोंसे कोई आगे बढी हुई श्रेष्ठ व्यक्ति पीछे आ पडती है। ऋषभदेवका पुत्र भरत, राजा राहुगण, इत्यादि ऐसे कितने लोगोंका उदाहरण पुराणोंमें मिलता है। हमें तो सत्व, रज और तम, इन सब गुणोंके परे जाना चाहिये। इस कार्यमें शिष्य जितना आगे

बढा हुआ होगा उतनी ही मदद संतोंसे होती है। यह ईश्वरी कानून है। ऐसा कानून यदि न होता तो कृपासागर संतसज्जन एक क्षणमें ही त्रैलोक्यको मुक्त कर देंगे और ईश्वरका सब खेल समाप्त कर देंगे। ऐसी शक्ति उनमें है। लेकिन फिर इसमें कुछ अर्थ ही नहीं रहेगा। हर एकके आगेपीछे जो बातें हैं उन सबको इस प्रकार एकदम मिटा देना जगच्चालक परमात्माकी योजनामें नहीं है ऐसा वे संत जानते हैं। ऐसे संतोंमें एक श्रीगजानन महाराज हैं। चिरंजीव नवनाथोंमेंही दसवे श्रीगजानन महाराज [चौरंगीनाथ] की गद्दी है, इससे मालूम होगा कि आप असाधारण संत हैं। आपका दर्शन अलभ्य लाभ है। धन्य हैं वे लोग जो आपके चरणरजोंतक पहुंचे हैं। उनमेंसे कई सज्जनों के अनुभव इस पुस्तकमें दिये हैं। पाठक पढ़कर लाभ उठा सकतें हैं।

(**टिपणी**:—अनुवादकर्ताने इस लेखमें पुनरुक्ति और विषयका प्रवाह टूटने की संभावना टालने के लिये बहुत कुछ काट छाँट की है।)

मराठी ग्रंथकी प्रस्तावना

श्रीमान महोदय निरोखेकर साहबने श्रीगजानन महाराजका जीवन-चरित्र और आपके शिष्योंके अनुभव प्रथमतः अँग्रेजी भाषामें "लाइट ऑन दि पाथ ऑफ सेल्फ रियलीझेशन" इस नामसे प्रसिद्ध किये। श्री. माहेगावकर नामक एक व्यक्तीकी लिखी हुई "गुरुशिष्य विज्ञान दीपिका" नामक एक मराठी पुस्तिका श्री. वैद्य महाशयने प्रसिद्ध की है। और उपर बताये हुए अंग्रेजी किताबका तर्जुमा श्री. बापटने मराठीमें किया है। खुद महाराज और श्री. बापट दोनोंसे पहचानत रहने के कारणसे मराठी ग्रंथकी प्रस्तावना लिखनेका और जहाँ आवश्यक हो वहां पर काटछाँट करनेका कठिण कार्य मेरे कंधोंपर आ पडा है।

कोई भी नूतन ग्रंथ प्रकाशित करना हो तो उसमें कुछ न कुछ नया तत्व, या नया अर्थ, या नयी रचनापद्धति रहनी चाहिये। इसके विना ग्रंथके लिये कुछ हेतु ही नहीं रहता है। पाठक भी पुरानी बातें देखना नहीं चाहते हैं। वे अप्रसन्न होते हैं और उनका समय भी व्यर्थ नष्ट होता है। ग्रंथकर्ताको भी "स्वल्पाक्षरबव्हर्थ" की ही योजना करनी चाहिये। इससे ग्रंथ ठीक बनकर पाठक भी व्यर्थ चक्कर नहीं खाता है। इस कारणसे ग्रंथकी रचना, सूत्र कायम रखकर, हो सके उतनी छोटी की है।

श्रीगजानन महाराजका जीवनचरित्र देखनेसे ज्ञात होता है कि आप इस युगके एक स्वयंभू सिद्ध ध्यानयोगी नाथसंप्रदायी हैं। सिद्धियां आपको पूर्वजन्मसेही प्राप्त हुई हैं। क्योंकि केवल आठ सालके लडकेको **श्रीमच्छेंद्रनाथजी** और **श्रीनारायण सरस्वतीजी** ऐसे सिद्धोंका अनुग्रह और साक्षात्कार होना कठिन है। तत्रापि बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदेहिकम्। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन (गीता अ. ६-४३) इस भगवद्वचनके अनुसार इस एकही तत्त्वके आधारसे हम समझ सकते हैं कि महाराज पूर्वजन्मके योगाभ्यासी होनेसे इतनी छोटी उमरमें सत्पुरुषोंका अनुग्रह पा सके हैं। पूर्व और पश्चिमके पंडितोंको कार्यकारण भाव (लॉ ऑफ

कॉझेशन) प्रिय है । और उनको इस सिद्धांतके लिये यह साधन बस है । इतनी छोटी उमरमें ज्ञान-कर्म-और भक्ति इत्यादि साधनोंकी पूर्णता नहीं हो सकती है। कमसे कम बारह सालकी तो तपश्चर्या होनी चाहिए । महाराजके नऊ सालके जीवनमें या आगे आजतक भी, अध्ययन, योगाभ्यास, तीर्थाटन, सत्संग, पूजा, तपश्चर्या, माला, जप, इत्यादि चीजोंका कहीं पता ही नहीं चलता है । नंगे बाबा और फकिरी बाबाका सत्संग आकाशमें बिजलीके जैसे होगया है । बस्स ! सत्पुरुषोंनें बचपनमें ही दिया हुआ ' सोऽहं ' मंत्र यही आपकी जीवनसिद्धीका सार है । सोलह सालकी उमरमें ही आपकी सिद्धियां प्रकट हुई हैं। 'सोऽहम्' इसी एक खंभेपर आपके सिद्धजीवनकी नींव खडी है ।

पौर्वात्य लोगोंको सिद्धियोंके बारेमें कभी संदेह नहीं उत्पन्न होता है । क्योंकि हम लोगोंने मंत्र, ज्ञान, भक्ति, कर्म, ध्यान, योग वगैरह बातोंका अनुभव भूत, वर्तमानमें पूरा लिया है । और इसीके आधार पर पतंजलिके समान महर्षियोंने योगशास्त्र बनवाया है । पाश्चात्य पंडितोंको यह सब नयाही है । इसलिये वे इस ज्ञानके अस्तित्वको ही पहलेसे न मानते चले हैं । लेकिन उसी अवस्थामें जब अनुभव प्राप्त हुए तब अनुभवोंके पीछे जाकर इस ज्ञानकी वे परीक्षा कर रहे हैं । और मानसशास्त्रके आधारसे वे लोग धीरे-धीरे योगशास्त्रके क्षेत्रमें आते चले हैं । शास्त्रीय प्रयोगोंके आधारसे उन लोगोंने महाभूतोंकी प्रचंड शक्ति हस्तगत करके भौतिक जीवनमें जो सुधार किया है, इससे संपूर्ण पृथ्वीपर उनके कर्तव्यके कारण अचंभा हो ही रहा है । उन्हीं भौतिक उपायोंसे योगशास्त्रकी परीक्षा करनेका पाश्चात्योंका प्रयत्न सफल नहीं होता है । और जो पौर्वात्य पंडित, पाश्चात्योंपर निर्भर हैं, उनको इन कारणोंसे भ्रम उत्पन्न होता है । पाश्चात्योंके प्रयोग अभिनंदनीय हैं । तो भी यशस्वी नहीं हुए हैं । **डॉ० ब्रासी** नामक फ्रेंच विदुषीने हिंदुस्थानमें आकर इंद्रिय-विज्ञान शास्त्रकी सहाय्यतासे योगशास्त्रका कुछ विभाग खोल देनेका यत्न किया है। इस विदुषीका एक लेख " व्हेअर थिऑसॉफी ऍंड सायन्स मीट " इस नामकी एक ग्रंथमालामें प्रकाशित हुआ है वह इस दृष्टिसे पढने योग्य है । **डॉ. च्हाइन** नामक नोबेल प्राइझ कमानेवाले एक विद्वानने अतींद्रिय ज्ञानके (एक्स्ट्रा सेंन्सरी परसेप्शन)

किये हुए एक लक्ष प्रयोग भी महत्वपूर्ण हैं। पाश्चात्योंकी सायकिकल रिसर्च सोसाइटीज (अध्यात्म संशोधन समितियां) पिछले पचास सालमें जो प्रयोग कर रही हैं वे भी योगशास्त्रके मार्गके लिये अनुकूल हों रहे हैं। उनके अनुभवोंके सारभूत दो ग्रंथ हैं। **डॉ. रिशे** नामक जगद्विख्यात फ्रेंच मानसशास्त्रज्ञका एक ग्रंथ "थर्टि इयर्स ऑफ सायकिकल रिसर्च" और दूसरा **हॅरि प्राइसका** "फिफ्टी इयर्स ऑफ सायकिकल रिसर्च"। इस शास्त्रसंशोधनका आद्य गुरु हैं **मायर्स**। इसके 'ह्यूमन पर्सनॅलिटी' नामक ग्रंथने प्रथमतः वैज्ञानिकोंमे क्रांति की। और उनका ध्यान इस तरफ खींच लिया। बादमें, **सर विल्यम क्रुक्स, सर ऑलिव्हर लॉज, डॉ. रिशे, डॉ. फ्लॅमेरियन, डॉ. फॉन श्रेंक नोटझिंग, डॉ. क्रोदर्स,** इत्यादि लोगोंने इस क्षेत्रमें बहुत कुछ संशोधन किया। इन सभी लोगोंके ग्रंथ और प्रबंध पढने योग्य हैं। यूरप और अमेरिकाके कई विश्वविद्यालयोंमें इस योगविषयका अध्ययन, अध्यापन और संशोधन जारी हुआ है। खेदकी और शरमकी बात है कि भारतभूमिमें जो योगविद्याका मूलस्थान है, आजतक इन बातों के बारेमें अंधेराही है। अच्छा ! अबतक पाश्चात्योंकी जितनी प्रगति इस शास्त्रमें हुई है, उतनेसे उन लोगोंको इस शास्त्रमें कुछ खुला विवरण करनेका मौका नहीं आया है। तोभी प्रयोग, अनुमान और अनुभव चलेही हैं। हमारे देशके संशयात्माओंको धक्का देनेके लिए एक बात तो जरूर कहने लायक है कि **लॉर्ड किचनेर** और **लॉर्ड रोनाल्ड शे** ये दो आदमी योगासनोंका और प्राणायामका अभ्यास करते थे। **डॉ. ताहरावे** नामक एक तुर्क योगी मिसर (ईजिप्त) देशमें योगाभ्यास करके यूरपमें गया। और वहांके कई एक कॉलेजोंमें विद्वानोंके सामने उसने योगासनोंके और योगसमाधीके बहुतसे प्रयोग करके बताये। "ए सर्च इन सीक्रेट ईजिप्त" नामक **पॉल ब्रंटनकी** किताबमें उसका कुछ वर्णन मिलता है। आज भी छः महनों तक समाधि लगाकर बैठनेवाले कई एक योगी हमारे देशमें मिलते हैं। मई १९४३ के "आरोग्यमंदिर" नामक मासिकमें श्री० कुलकर्णीने (बनारस हिंदु युनिवर्सिटी) प्रत्यक्ष देखा हुआ एक समाधीका प्रयोगवर्णन किया है। इस प्रकार पूर्व-पश्चिमके विद्वान इस शास्त्रमें खोज कर रहे हैं।

पुरातन कालमें योगशास्त्रके सुलभीकरण करनेका कार्य **नाथसंप्रदायने** किया है, ऐसा उनके इतिहाससे मालूम होता है। मंत्र–लय–ध्यान–योग यह भी एक सुलभीकरणकाही मार्ग है। उनके 'सिद्ध' संप्रदायने और भी एक रास्ता खुला कर दिया है। "कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया" के दूसरे खंडमें इसका कुछ पता चलता है। इस सांप्रदायके **श्रीगजानन महाराज** हैं। इससे आपके अनुग्रहसे मनुष्यको इस मार्ग में सुलभता प्राप्त होना सहज है इस बातका ज्ञान पाठकोंको हो सकता है।

पुनर्जन्म और सिद्धियोंको हम सत्य मानते हैं। पाश्चिमात्य "सायकिकल रिसर्च सोसायटीज"के गत पचास सालके प्रयोग पुनर्जन्म या देहांतर के बारेमें बहुत कुछ आधार देते हैं। इसका विवेचन करना यहां आवश्यक नहीं है। तोभी **सर ऑलिव्हर लॉज**के दो ग्रंथ "ऊर्वरित मनुष्य" और "रेमंड," **ऑस्बोर्न**का ग्रंथ "सुपर फिजिकल" या "जडके परे" और **रँडल**का ग्रंथ "दि डेड हॅव नेव्हर डाइड" या "मृत मराही नही," इनका अभ्यास जिज्ञासुओंको करना ठीक होगा। इससे मालूम होगा कि 'पूर्व'के पीछे पीछे 'पश्चिम'भी कैसी आरही है।

सिद्धियोंके बारेमेंभी यही बात है। हम आठ प्रकारकी सिद्धियां मानते हैं। हॅरी प्राइसके ग्रंथमें कई एक प्रकारकी सिद्धियोंका वर्णन मिलता है। उसने सबके प्रत्यक्ष प्रयोग विद्वानोंके सामने किये हैं। अनुभवभी लिये हैं। **पातंजल** योगशास्त्रके साधनपाद और विभूतिपादमें सिद्धियोंके बहुतसे ऐहिक साधन दिये हैं। और कैवल्यपादमें पहलेही सूत्रमें लिखा है कि कई सिद्धियां जन्मजातभी होती हैं।:—

"जन्मौषधिमंत्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः।" इसका प्रत्यंतर हमें **श्रीरामकृष्ण परमहंस** और **श्रीगजानन महाराज** दोनोंहीके चरित्रमें आता है। लेकिन सिद्धिप्राप्ति यही योगका अंतिम ध्येय नहीं है। "योगमार्गका हम आक्रमण कर रहें हैं" इसका सिर्फ एक चिन्ह ये सिद्धियां हो सकती हैं। रास्तेपरकी वे मार्गदर्शक पटरियां हैं। और महाराजभी यही कहते हैं। इससे अधिक महत्त्व सिद्धियोंको नहीं है। शायद इनके जगमगाहटसे मनुष्यके मोहवश होनेकीही संभावना है। इससे **पतंजलि महामुनि**भी इन्हें 'उपसर्ग' या 'विघ्न' कहते हैं।:—ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः।—

विभूतिपादः ३७, सिद्धियोंकी प्राप्ति कैसी होती है ? वे किसको प्राप्त होती हैं ? नष्टभी क्यों होतीं हैं ? उनका मूलस्थान कहां है ? इन प्रश्नोंके बारेमें पाश्चात्य भौतिक और मानसशास्त्र जाननेवालोंनें बहुतसी चर्चा की है। अबतक ये लोग सिद्धियोंको केवल 'चालाकी समझते थे। और हमारे पौर्वात्य पंडित भी उन्हींके समान विचार करते थे। लेकिन "हिप्नाटिझम" "सायकोथिऱ्यापी" इ० नामसे जब मंत्र विद्या पाश्चात्योंके द्वारसेही आगे बढती चली तब हमारे विद्वान्भी इस विद्याका अस्तित्व तथा महत्त्व मानने लगे। फ्रान्समें **डॉ० रिशेजॉनेट** इ० लोगोंने सालपेट्री अस्पतालमें मरीजोंको इसी विद्याकी सहायतासे आरोग्य प्रदान किया। "लौर्डस" नामक तीर्थक्षेत्रमें युरोपके मरीज ईश्वरीप्रसादसे सुधरने लगे और उसमें भी साधारण मरीज छोडकर जब 'कॅन्सर' और 'टी. बी.' के मरीज एकदम ठीक होते चले तब हमारे पंडित अचंभेमेंही पडे ! इस बातका अनुभव अमेरिकन **डॉ० क्यारेला** नें "मॅन दि अननोन" या "अज्ञात मानव" ग्रंथमें लिखा है। और फ्रेंच **डॉ० इ० लीबेक** ने "मेडिकल प्रूफ ऑफ दि मिरॅक्युलस" या "चमत्कारोंका औषधिक प्रमाण" नामक ग्रंथ में भी दिया है। इन दोनोंने मरीजोंकी कडी परीक्षा करके अपने अनुभव लिखे हैं। बादमें पाश्चिमात्य लोगोंका मंत्रशास्त्रपर विश्वास होते चला। और फिर हमारे एम्. ए., पी. एच. डी. डॉक्टर लोग और पंडित उनके पीछे अपनेही देशकी मंत्रविद्याका विचार करने लगे। बात यही है कि साधारण सिद्धियोंके बारेमेंही बहुतसा समय और कष्ट व्यर्थ खोना पडा।

योगशास्त्रमें जो सिद्धियां हैं उनका आविष्करण कभी कभी जडजगत्में भी होता है। पाश्चात्य लोगोंको हमारे समान इसका अनुभव आता था। गणित संगीत और कई विद्याओंको आकलन बचपनमें ३।४ सालकी उपरमेंही जाननें वाले बालक भारतमें और यूरपमें हुए हैं। वे बालक करोडोंका गणित, क्षणार्धमें करते हैं। 'ए. बी. सी. ऑफ सायकॉलॉजी' और 'ह्यूमन पर्सनॅलिटी' नामक ग्रंथोंमें ऐसे पाश्चात्य बालकोंके नाम मिलते हैं। भारतभूमीमें रामानुजम् और बालगंधर्वके नाम प्रसिद्ध हैं। इन शक्तियोंका आविष्कार कम ज्यादह भी होता है और कभी नष्ट भी हो जाता है।

पाश्चात्य लोगोंके जडवादको आव्हान देनेवाले बालकोंके उदाहरण, प्रार्थना यौ विश्वाससेही ठीक होने वाले मरीज, परचित्तज्ञान, अतींद्रियदृष्टि, विचारसंवाहन, दूरवस्तुदर्शन वगैरहके प्रत्यक्ष प्रयोग बहुत हो गये हैं। पाश्चिमात्योंमें जो प्रामाणिक थे उन्होंने जडवाद छोडकर पौर्वात्य अध्यात्मवादको मानना शुरू कर दिया है। 'संसारमें चिच्छक्तीके विना और कुछ हैही नहीं' इस बातको जिन लोगोंने पाश्चिमात्य देशोंमें मान लिया है, इनमेंसे कई लोगोंके और ग्रंथोंके नाम यहाँ दिये जाते हैं:—**सर आर्थर एडिंग्टन, सर जेम्स जीन्स, डॉ. कॅरेल, प्रो. व्हाइन** इत्यादि। इनके ग्रंथोंमेंसे कई एक नाम पहले ही आचुके हैं।:—जगत् कल्पनामय है। जगत् और मन एकही है। अध्यात्म जगतका धर्म। गूढ जगत्। अनोखा मानव। अतींद्रिय ज्ञान इ०। सिद्धियोंके साथ चिन्मयत्व भी पाश्चात्योंने मान लिया यह पौर्वात्य ज्ञानकी बडी विजय है।

बाह्य, दृश्य और जड जगत्में भी, जब चिन्मयत्व मौजूद है, यह बात मानी जाती है, तब हलचल करनेवाली जीवसृष्टीमें, उसका "रहना" माननाही पडता है। मानवी जीवनके चिदंशकी सहाय्यतासेही जब सिद्धियां प्रकट होती हैं तब "सिद्धियोंका उगमस्थान चिदंशही है" यह आप ही आप सिद्ध होता है।

अब चित्शक्तीका अंश तो हरेक में है ही। तब "हरेक व्यक्तीको सिद्धियोंकी प्राप्ति होनी चाहिये," ऐसा कोई बताएगा। लेकिन सच बात तो ऐसी नहीं है। इसका कारण वैसा यत्न करनेवाले लोक कम होते हैं। "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्तितत्त्वतः॥" हजारों लोगोंमेंसे क्वचित् कोई सिद्धीके लिये यत्न करता है। और ऐसे क्वचित् यत्न करनेवाले हजारोंमें क्वचित एकाध पूर्णज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसलिए व्यक्तिमें का 'चित्' का अंश सबके लिये सिद्धिदाता नहीं हो सकता है। व्यक्तिमें सामान्यतः सुप्त रहता हुआ लिंगदेह क्या चीज है वह समझलेकर जो उसका विकास और प्रगति करेगा उसेही सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। पाश्चिमात्य विद्वान् उसी लिंगदेहको "सबकॉन्शस" या 'सब्लिमायनल्' सेल्फ कहलाते हैं। लिंग-देह और कारण-देह ये पौर्वात्य नाम हैं।

पाश्चात्योंमेंसे कोई लोग उसे "सबकॉन्शस माइंड" भी बोलते हैं। लेकिन इस संज्ञासे ठीक अर्थ समझा नहीं जाता है। क्योंकि मन 'तो एक देहकाही विभाग है। और सिद्धियोंमें अंतःस्फूर्तिकेभी परे रहनेवाला कुछ हिस्सा रहता है। और 'मन' भी क्या चीज है इस बातमें पाश्चिमात्य मानसशास्त्रज्ञोंकी अभीतक एकवाक्यता नहीं हुई है। **डॉ. बर्नार्ड हॉलंडर** का ग्रंथ "सीइंग अवरसेल्फ" और **ओग्डेन**का ग्रंथ "धि ए. बी. सी. ऑफ सायकॉलॉजी" इनमें लिखा हुआ मिलता है कि मानसशास्त्रज्ञोंमें 'मन' की परिभाषा एक मतसे अभीतक बनी हुई नहीं है। केवल इस मनोरूप संदूकमें, वे बोलते हैं कि, विकार, वृत्ति, प्रीति, समझ, इच्छा, हृदय, प्रज्ञा, बुद्धि, स्फूर्ति और आत्मा इत्यादि चीजोंकी जैसी वैसी भरती कर दी गयी है। (हॉलंडर पृष्ट १७ और ओग्डेन पृ. २१) ओग्डेन तो आगे बढकर १४२ पृष्ट पर लिखता है कि 'मन' कोई एक चीज नहीं है। वह एक क्रियात्मक शक्ति है। सारांश, मन कोई ऐसी एक चंचल बात है कि अभीतक उसका आविष्कार हुआ ही नहीं है। उसका ठिकाना ही मिलता नहीं है। कई विद्वान बोलते हैं वह 'मगज' में है। कई बोलते हैं वह बाहर भी इधर उधर भटकती मिलती है? (**कॅरेल**—"मॅन दि अननोन" **पॉल ब्रंटन**:—"धि हिडन् टीचिंग बिहाइंड योग") 'मन' के अर्थके बारेमें ही जहां एकवाक्यता नहीं है, वहां 'सब-कॉन्शस माइंड' या सुप्त मनकोही सिद्धियोंका मूलस्थान मान लेनेसे औरभी गोलमाल होता है। इससे लिंग-देह और 'अंतर्मन' इन दो चीजोंको अलग माननाही ठीक पडेगा। इसी प्रकार, बुद्धि, स्फूर्ति, प्रज्ञा, जीव, आत्मा, इच्छा इन सबको अलग अलग समझनाही ठीक होगा। कोई एक स्पेशल रेलगाडीका 'मन' यही इंजन है। और बुद्धि, अहंकार इत्यादि डब्बे उससे जोड़ेही रहते हैं। जिस इंद्रियके स्टेशनपर यह रेलगाडी जाती है, वहां कोई भी डब्बे छोडने जोडनेका काम चलता है। "इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवंभासि॥ (गीता अ. २)। **सर राधाकृष्णन्**का मत है कि "प्रज्ञाके अनुभव हमारे इच्छाके आधीन नहीं रहते हैं। वे इच्छा करतेही' नहीं आते। कभी तो इच्छा न होतेभी आते हैं।" इससे 'प्रज्ञा' को मनका विभाग समझना

यह बातभी बराबर नहीं होती है। " व्हराएटीज ऑफ रिलिजस कॉन्शासनेस " नामक ग्रंथमें जेम्सभी वही कहता है। (पृष्ठ १४)

इस प्रकार मनका जंगल काटकर हम लोग कई सुव्यवस्थित कल्पनाओंके उद्यानमें प्रवेश करते हैं। अब लिंगदेहके कौनसे कोनेमेंसे सिद्धियोंका उगम होता है इस बातका विचार करेंगे। हजारों सालके पहलेही, योगशास्त्र निश्चित रूपसे हमारी जन्मभूमीमें बनाया गया है। उसीका हमें आधार लेना पड़ता है। योग की प्रथम अवस्था ' चित्तवृत्तिनिरोध ' है। (तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्) ज्ञानेंद्रियोंको और उनके पीछे भटकने वाले मनको लगाम लगाये बिना मनुष्यको ' स्व ' रूपकी भव्यता और विशालता मालूम नहीं होती है। गीताके दूसरे अध्यायमें लिखाही है कि उसकी प्रज्ञा वैसीही स्थिर न हो सकती है। सांख्य शास्त्र और अर्वाचीन प्राणिशास्त्रका भी मत है कि केवल बाह्य जगत् के साथ खींचतान करते करतेही ज्ञानेंद्रियोंकी पैदास होती है। (रूप रागात् चक्षुः इ०) और सिद्धियोंकी उत्पत्ति तो जडजगत्से होतीही नहीं है। इस लिये सिद्धिओंका विचार करते समय हमें इंद्रियोंका सहाय्य नहीं हो सकता है। वे तो मनकी एकाग्रता लाने में भी विघ्न उत्पन्न करते हैं। मन भी इंद्रियों के पीछे दौडता है। इससे उसका भी सहाय्य कमजोरही होता है। इसलिये बाह्य जगत्से सब संबंध तोडकर पहले ' चित् ' शक्तीसे समरस होना पडता है। **प्रो. भट्टाचार्य** " कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया " नामक अपने ग्रंथके प्रथम विभाग में पृ० ३६६ पर लिखते है। " मनोव्यापारोंका साफ निर्मूलन कर देना यही योगशास्त्रका सारसर्वस्व है। " इसीलिये अतींद्रिय सिद्धियोंके मूलस्थानपर पहुंचनेके लिये ज्ञानेंद्रियोंके और मनके पैलीवर ही जाना पडता है। वहां जाना होगा तो हमारा इंद्रिय ग्रामोंमें ही अटके रहना छोडनाही पडता है।

पाश्चात्य मानसशास्त्रज्ञ भी बोलते हैं कि " अतींद्रिय चिच्छक्तीके उत्थानसे सिद्धियां प्रकट होतीं हैं। " वे और भी बोलते हैं कि " साधारणतः यह चिच्छक्तीका उत्थान, मनुष्य समाधीके तुर्याके या उन्मनीके अवस्थामें पहुंचे बिना नहीं होता हैं। " और यह अवस्था प्राप्त होनेके लिये कोई विशेष मनोभूमीके लोगोंको गुरुकी आज्ञा, श्रेष्ठ मनस्थिति या मनुष्यकी

मदद, या अपनी ही इच्छाशक्तीका उपयोग करना पडता है। सबको यह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती है। अब कोई योगी ऐसे भी होते हैं कि जागतिक दृष्टीसे वे जाग्रत रहकर भी इन सिद्धियोंका दर्शन करा सकते हैं। (**मॅडम लॅर्ग्स** और प्रॅट) प्रो. दामले और श्री. करमरकर इंजिनियर साहबने खुद देखा है कि श्री. मिटकर इस प्रकार पूर्ण जाग्रत अवस्थामें ही ऐसी बातें देख सकते थे कि जो सैंकडों मीलकी दूरीपर थीं। आज भी वे महाशय ऐसे प्रयोग कर सकते हैं। एक श्री. रत्नपारखी महाशय हमने प्रत्यक्ष देखे हैं जो पूर्ण जाग्रत रहकर हमारा मनोविचार जान सकते हैं। हमारे येवला ग्रामके क्लबमें, हमारे कैलासवासी मित्र श्री. देशपांडे पोलिस इन्स्पेक्टर और एक फेरिस्ताने, हमारे सामने, पूर्ण जाग्रत अवस्थामें, जडवस्तुचालनके प्रयोग करके बताये हैं। अंतःप्रेरणाकी सहाय्यतासे जैसे कोई प्रश्नोंके उत्तर मिलते हैं। वैसा ही कुछ यह मामला मालूम होता है। इस प्रकार किसी व्यक्तीको जाग्रतावस्थामें और दूसरोंको तुर्यावस्थामें ही सिद्धियां प्रकट करना साध्य होता है। और इसमें भी कभी कभी दृश्य व्यक्तीका और कभी कभी अदृश्य व्यक्तीका कार्य होता रहा है ऐसा दीख पडता है। भरतभूमीमें बैठकर सबके सामने इंग्लड अमेरिकामेंकी चीजें उत्पन्न करना, और दूसरे व्यक्तीके प्रश्न लिखनेके पहलेही प्रश्न का उत्तर उसीके हाथमेंके उसी कागजपर पहलेही लिखा हुआ मिलना, ऐसी सिद्धियोंमें अतिमानवी, अदृश्य और सर्वगामी व्यक्ति या शक्ति कार्य करती है, ऐसा माननाही पडता है। (पॉल ब्रंटन; महंमद बे और श्री० खरे) हम लोग इन चमत्कारोंको मंत्र-शक्ति और पिशाच्च-चेष्टा कहते हैं। ऐसी अदृश्य शक्तियां सिद्धोंके काबूमें रहती हैं। **श्री गजानन महाराजके** चरित्रमें ऐसी चीजें उत्पन्न होनेवाले बहुत प्रकारके चमत्कार हुए हैं। योगशास्त्रके मतसे मंत्रोंसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धियां "देवतानिष्ठ" हैं। और परचित्तज्ञान अतींद्रियदृष्टि इत्यादि सिद्धियां 'लिंगदेह' कि सहाय्यतासे होनेवाली हैं। पाश्चात्य ज्ञानी भी लिंगदेहात्मक सिद्धियाँ मानते हैं। **फेलिडा मिस् बोकँप,** और **डॉ० मार्टिन** जैसे पाश्चात्य मानसशास्त्रज्ञ "देहांतर इसी जीवनमें हो सकता है" ऐसा मानते हैं। (**मायर्स**–"ह्यूमन पर्सनॅलिटी")। (और **प्रॅट**:–'रिलिजस कॉन्शसनेस' (पृष्ठ ५७) तो भी पुनर्जन्म

और अदृश्य व्यक्ति इन बातोंपर इनको अभीतक विश्वास नहीं प्राप्त है। लेकिन **ब्रंटन, मायर्स, हॅरी प्राईस, ऑसबोर्न, सर विल्यम क्रुक्स सर ऑलिव्हर लॉज, कानन डाइल** इत्यादि शास्त्रज्ञोंने प्रत्यक्ष प्रायोगिक अनुभव लेकर इन दो बातोंको मानां है। इस सब विवेचनका सारांश इतनाही है कि **पतंजलि** महामुनीका जो कहना है वही ठीक है। जो बताता है, सिद्धियां जन्मज, तप समाधिज, और मंत्रज होतीं हैं। **श्री. गजानन महाराज** के चरित्रमें ये सब, प्रकार दीख पडते हैं। पूर्वकालीन संत चरित्रोंमें-भी ऐसाही आधार मिल सकता है। पाश्चात्योंपर ही निर्भर रहने वाले हमारे पंडितोंके लिए ही इतना विवेचन यहाँ किया है। वे महाराजका चरित्र पढेंगे तो उनका भ्रमनिरास होगा।

सिद्धियोंके बारेमें इतना विवेचन करनेके बाद अब 'योग' जो सिद्धि-योंको अपने पेटमें समा ले सकता है, उसका विचार करेंगे। इस ग्रंथमें 'योग' का विवरण अलग खंडमें किया ही है। अब इस विषयके बारेमें पाश्चात्य लोगोंके मानस शास्त्रज्ञ और तत्त्ववेत्ता क्या कहते हैं उसे देखेंगे। यहाँ 'योग' शब्द इस अर्थसे व्यक्त है कि जिससे जीव और शिवका ऐक्य होता है। जिसे कैवल्य या सायुज्य मुक्ति कहते हैं। पाश्चात्य लोग उसे ही 'मिस्टिसिझम' या 'गूढवाद' कहते हैं। अब पाश्चात्योंमें गूढवादके भी चौबीस अर्थ हैं। प्रॅट की गूढवादकी व्याख्या कैवल्यसे मिलती-जुलती होती है। प्रॅट कहता है कि 'गूढवाद यही चीज है जिसे बुद्धि और ज्ञानेंद्रियोंकी सहाय्यता लेने बिनाही परमात्मके अस्तित्त्वका अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त होता है।' (पृष्ठ ३३७) इसका मिस्टिसिझम खाली विश्वास और श्रद्धा नहीं है तो अतींद्रिय अपरोक्ष 'अनुभव' है। पाश्चात्योंका शंकराचार्य प्रो. जेम्स भी वही कहता है। (व्हराएटीज ऑफ रिलिजस एक्स्पीरियन्स पृ. ३४)

लेकिन पाश्चात्योंकी कल्पनाओंमें एक मूलग्राही गोलमाल है। हमारे योगशास्त्रमें 'चित्तशुद्धि' बडी महत्त्वकी चीज है। पाश्चात्य लोगभी मिस्टिसिझमके लिये "वैराग्य"की जरूरत है, ऐसा मानते हैं। तोभी **जेम्स** और **प्रॅट**का **मत** ऐसा दीखता है कि कनिष्ठ सिद्धियोंके लिये शील और चारित्र्यशुद्धीकी आवश्यकता नहीं है। (पृ. १४ और ६४)। अब आचरण शुद्ध न होगा तो सिद्धियोंका प्रयोग बुरे कामोंमेंभी होनेकी

संभावना है। फिर सिद्धियोंकी प्राप्ति पाश्चात्योंके मतसे हो, या हमारे उपायोंसे। इस लिये चारित्र्यशुद्धीविहीन अनुभवोंको 'योगिक' अनुभव कहना, यह पाश्चात्योंकी भूल है। वे अल्पजीवी गूढ अनुभव हैं। और शीघ्रही मिट जाते हैं। सच्चिदानंद कैवल्यके वे अनुभव नहीं हैं। पुनर्जन्म न माननेसे, पाश्चात्य लोग जन्मजात सिद्धियोंको योगिक सिद्धियां मानकर भ्रमचक्करमें फँस जाते हैं।

पातंजल योग और मिस्टिसिझम उपरी दृष्टिसे देखने वालोंको और भी एक भ्रम होता है। **पतंजलि** ईश्वरवादी है। और बौद्ध, जैन निरीश्वरवादी है। तोभी बौद्ध और जैनोंको योगमार्गसे निर्वाणसुख मिला है। इसीसे पाश्चात्य लोग धर्माचरणकी जरूरत न रखतेंही दिव्य सिद्धियोंकी प्राप्ति मानते हैं। (**प्रॅट**:—रि. कॉ. पृ. ६४)। कारण वही है कि वे पूर्वजन्मार्जित शक्तियोंकोही 'योगसिद्धियां' समझते हैं।

बौद्ध और जैन निरीश्वरवादी हैं। तो भी वे पुनर्जन्म और जन्मजात सिद्धियां मानतें हैं। जो सिद्धियां पूर्वजन्मार्जित हैं उनका आजके चारित्र्यसे संबंध न होगा। और इन लोगोंका निरीश्वरवाद सगुण साकार ईश्वर मानता नहीं है। लेकिन 'जगत्कारण' कुछ है ऐसा भी मानतें हैं। हम उसेही ब्रह्म मानतें हैं। सगुण उसीकी एक अवस्था हैं। हम दोनोंमें इतनाही मतभेद है। और निरीश्वरवादी बुद्धको तो हम लोगोंने हमारे ईश्वरकाही 'अवतार' मान लिया है। बौद्ध भी सच्चरित्र्यको बहुत मानते हैं। **पंतजलि** महामुनीने भी निरीश्वरवादियों के लिये, "ईश्वर प्रणिधानात्" "तथा अभिमत ध्यानात्" ऐसे सूत्र बनाये हैं। सारांश यही है कि 'योग' के बारेमें वेदांती और बौद्ध या जैन इनमें जो भेद मालूम होता है, वह सचमुच है ही नहीं।

अब, सुगंध आवाज और दृश्योंके जो अनुभव समाधिके पहले आते हैं उनका विचार करेंगे। मुमुक्षुओंमें समाधितक पहुंचने वाले बहुतही कम होते हैं। क्योंकि वहांतक पहुंचनेके लिये कोई विशिष्ट मनोभूमिका होनी चाहिये। **प्रॅट** तो बोलता है कि वैसी भूमिका जन्मजातही रहती है। कृतीसे प्राप्त नहीं होती है। **श्रीरामकृष्ण परमहंसजीके** चरित्रसे मालूम होता है कि आपको वैसी मनोभूमिका जन्मसेही प्राप्त हुई थी। ऐसी ईश्वरदत्त

स्थिति जिनको न होगी उन्हें **विवेकानंद**के समान वह गुरुसे मिल सकती है। जबतक दृश्य, नाद और गंध में ही पहले मन सीधा होता रहता है।

अब साधकको इन दृश्योंके बारेमें भी बहुत जागृत रहना पडता है। क्यों कि वे कभी केवल आभास भी हो सकते हैं। आभासमें भी दो प्रकार हैं एक कुछ मूलकारण होकर आभास होना और दूसरा कारण न होकर मनकेही आभास उत्पन्न होना। सर्परज्जुन्याय पहला प्रकार है। और मरीजोंको जो स्वप्नके जैसे, कारणविहीन, वस्तुविहीन आभास होते हैं वे दूसरे प्रकारके हैं।

पाश्चात्य मानस शास्त्रवेत्ता कहते हैं कि तूर्यावस्थामें हमें जो दीखता है वह वैसाही आभासमय है। पॉल ब्रंटनने अपने 'हिडन टीचिंग बिहाईंड योग' नामक ग्रंथमें इसका विस्तृत विवरण किया है। दृश्योंका प्रकार भी वैसाही रहता है जैसे संस्कार हमारे मनपें हुए हैं या लिंगदेहपर हुए हैं। हिंदुओंको देवतामूर्तियां, पवित्र नदियां, रत्न, प्रकाश इत्यादि दीखता है। मुसलमानोंको मक्का और ख्रिश्चनोंको क्रॉस दीखता है। लेकिन सबको एक सर्वसाधारण दृश्य है वह हैं "**प्रकाश**"। प्रकाशके स्रोत सबकी नजरमें आते हैं। लेकिन पाश्चात्य लोग इन सबको स्वप्नके दृष्टांतोंके समानही मानते हैं। मानव कल्पनाएं करता है उसी प्रकार उसे दृश्य दीखते हैं ऐसा उनका कहना हैं। उदाहरणार्थ, किसी भी मूर्तिकी तरफ थोडी देरतक देखकर फिर हमारी नजर हम दिवालपें लगायें तो दिवालपें हमें वही मूर्ति थोडी देरतक तो भी दीख पडेगी। या मशाला और अगरबत्ती गोल गोल घुमानेसे जो गोल चक्कर का अग्निवलय दीख पडता है ऐसाही भास हो सकता है। सिनेमा ऐसेही दृष्टिभ्रमोंपर निर्धारित है। अतः सब दृश्योंको समान और सच्चेही समझना ठीक नहीं होगा। महाराजके शिष्योंके बहुतसे अनुभव ऐसेही हैं क्यों कि वे अनुभव लेकर भी दुःख और कष्ट भोगते ही हैं। दिव्य लोकमें विहार इसलिए नहीं करते हैं। अब यहां भी पाश्चात्योंके ही अनुभवोंका दृष्टान्त देकर इन अनुभवोंका आधार दिया जाता है।

उपरिनिर्दिष्ट पाश्चात्य आक्षेप सत्यांशयुक्त भी हैं। लेकिन पहला जवाब यह है कि सब ही दृश्य हमारे मनके माफिक दीखते हैं ऐसी

बात यहां नहीं है। कभी कभी साधकोंके मनमें न होतीं हुई चीजें भी दीख पडती हैं। और कभी कभी बहुत यत्न करके भी कुछ दीखताही नहीं है। फिर सब दृश्योंको स्वसंकल्पजन्य समझना कैसे ठीक होगा? दूसरी बात यह है कि अनिच्छासे भी जब सगुणका साक्षात्कार होगा तब उसे भ्रमात्मक कैसे समझना "उनकी सत्यताके बारेमें हम शंका ले ही नहीं सकतें है।" ऐसा **सर राधाकृष्णनन जेम्स**, और **प्रॅट** कहते हैं। हमारे साधक और सिद्ध तो जोरसेही कहतें हैं कि "हमारे साक्षात्कार प्रत्यक्ष हैं।" आधुनिक पाश्चात्यद्रष्टा **एच्. जी. वेल्स** कहता है:—

"जब मैं रातके प्रशांत कालमें अकेला बैठता हूँ तब मुझसे कहीं अधिक भव्य और दिव्य शक्तिसे मेरा मन तादात्म्य होता है। शब्द और मन कम ताकतवाले होनेसे उसी शक्तिका कृपामय मूर्तिमें बदल होकर मेरा उसे "तादात्म्य" होता है, वही "पूजन" बन जाता है। ये बातें प्रत्यक्ष होती हैं। और मेरे धार्मिक जीवनका वह तो सर्वोच्च शिखर हैं।":—('फर्स्ट अँड लास्ट थिंग्ज' पृ. ६०) **जेम्स** भी बोलता है:—क्यों भाई! जिसको हम 'प्रमाण' कहतें हैं वह भी 'अनुभवों' का ही मामला नहीं हैं? (व्हरायटीज ऑफ रिलिजस एक्सपीरियंनसेस पृ. १२२) **जेम्स** ज्ञानके दो विभाग मानता है। एक स्वसंवेद्य और दूसरा वर्णन क्षम। पहला भुगतनाही पडता है, वर्णनसे नहीं समझमें आसकता है। जैसी शक्करकी मिठास। दूसरा वर्णनसे समझना थोडाबहुत साध्य है, जैसा उसीका "आकार"। शास्त्रोंके सिद्धांत दूसरे विभागमें होते हैं। साक्षात्कार पहले विभागकी चीज है। क्योंकि अनुभव तो व्यक्तिनिष्ठ चीज है। जिसे उसका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है उसके सच्च दिलपर भरोसा रखकर उसका दिया हुआ वर्णन हम सत्य मानतें हैं। समय समयपर देशदेशोंमें ऐसे आये हुए अनुभव मौजूद हैं ओर उनमें कुछ समानता भी है। उसी प्रकार पुराने संतोंके और **श्रीगजानन महाराजके** शिष्योंके अनुभव कहीं कहीं समान समान आये हुए हैं।

इन दृश्योंमें और अनुभवोंमें भेद और कभी कभी विरोध भी दीख पडता है। और पाश्चात्य–ज्ञानी जो विरोध करते हैं, वह यहांही करते हैं। चक्रोंके रंग, संख्या, अक्षर और देवताएं इनके बारेमें एकवाक्यता नहीं

रहती है। वह भी एक ऐसा ही उदाहरण है। और इस विभिन्नतासे इन अनुभवोंके बारेमें शंका भी उत्पन्न होती है। और शकानिरसन करना हो, तो बाह्य सृष्टिके आधारसे ही करना पडता है। स्वसंवेद्य बातें हम जब "परसंवेद्य" कर सकेंगे, और जैसे अनुभव खुद हम लेते हैं वैसे ही हम दूसरोंको भी दे सकेंगे तो, या साधकको जो बातें दीखतीं है उसका आधार उसे सृष्टीमें भी मिलेगा तो, उस अनुभवकी सत्यता उसे मालूम हो सकेगी और दूसरोंको भी मालूम होगी। मृत व्यक्तिओंके बारेमें अनुभवोंकी बात ऐसी ही है। **डॉटने** क्रुक्स, केटी किंग और रोझॅलीका अवतरण, खूब बंदोबस्त और कोशिश करके देखा। वैसा ही ब्रॉझीलमें **मिन्याबेली**के प्रयोगमें मृत व्यक्ति मूर्तिमंत सामने खडी की गयी है। स्वप्नमें या तूर्यावस्थामें आगामी घटनाओंका दृश्य पहले ही दीख पडना ये बातें भी वैसीही हैं। **ऑसबोर्न** और **मायर्स** के ग्रंथोंमें ऐसे बहुत उदाहरण हैं। अतींद्रिय दृष्टि और आकाशवाणी-का अनुभव रेडिओके समान झटही मालूम होता है। इन सब अनुभवोंमें, द्रष्टा और दृश्य, ज्ञाता और ज्ञेय, यह द्वंद्व रहता ही है, और रहना चाहिये। न रहेगा तो अनुभवभी बाद हो जाएगा। खुद साधक इस द्वैतमें कभी कभी चक्कर खाता है और जो कुछ देखा उसके बारेमें संशय लेता है। **श्रीरामकृष्ण परमहंस** भी खुद ऐसे चक्करमें पडते थे। और पाश्चात्य संतोंमें **सिस्टर ट्रिझा** को ऐसेही संशय आते थे। अब ऐसे शंकाओंके समाधानके लिये जड सृष्टीका आधार लेनाही पडता है। इसीलिये **पतंजलि** महामुनीने लिखा है:—"विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधिनी" (सूत्र ३५)

तुकाराम, एकनाथ, रामदास, जनाबाई, नामदेव इत्यादि संतोंके साक्षात्कारवाचक उद्गारोंमें इस जड सृष्टिसहाय्यका उल्लेख स्पष्ट है। "ईश्वर होगा तो मुझे बताइये।" ऐसा **विवेकानंद**का उद्गार सुनतेही **भगवान् रामकृष्ण परमहंस**का जबाब आया "हाँ, ईश्वर है। और मैं तुझे बता देता हूँ!"। इतनाही नहीं तो उसे वह बताभी दिया गया! मंडारगिरीपर **तुकाराम** संतकोभी ऐसाही अनुभव आ गया है। साधारण व्यक्तिभी जब मरनेके बादभी प्रेमिकोंके सामने खडी होती है तब संतोके सामने ईश्वर क्यों नहीं खडा होगा? होनाही चाहिये। और होताभी है। ऐसा पृथ्वीतलके सब संतोंका कहना है। ऐसा साक्षात्कार

स्वसंवेद्य होकरभी बाह्य-सृष्टीके आधारसे प्रकट हो सकता है। सिर्फ देखनेके लिये दृष्टि साधारणोंकी दृष्टीसे ऊँची होनी चाहिये। **डॉ० किल्नर** आदमीके चारों ओर हमेशा रहनेवाला तेजोवलय देख सकता था। लेकिन उसके साथी वही बात उसी समय नहीं देख सकते थे। सृष्टी का सौंदर्य ठीक देखनेके लिये भी दृष्टि रसिकतापूर्ण होनी चाहिये। वैसीही यह बात है। " कला यही साधारणोंका योग है " ऐसा " कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया " नामक ग्रंथमें लिखा है। श्री भगवान् गीतामें बोलते हैं। " योगः कर्मसु कौशलम् "।

साक्षात्कार का अनुभव लेनेके लिये तन्मयता और समाधीकी जरूरत है। उसी अवस्थामें द्वैतका पूर्ण निरास होता है। **अरविंद घोष बाबू** अपने 'डिवाइन लाइफ' नामक ग्रंथमें उसे 'सुपर कॉन्शासनेस' बोलते हैं। ध्याता, ध्येय और ध्यान इस त्रिपुटीका वहां एकीकरण होता है। " संपूर्ण मानव संपूर्ण सत्यमय वहां हो जाता है। " ऐसा **सर राधाकृष्णन्** उसी अवस्थाका अनुभववर्णन करते हैं। सब साक्षात्कारी संत–महंत बोलते हैं कि उस अवस्थाका शब्दोंसे वर्णन हो ही नहीं सकता है। **श्री. ज्ञानेश्वर महाराज** लिखते हैं कि वहाँ " शब्द शक्तिहीन होते हैं। " बात जब सत्यही हैं तब उसका वर्णन कौन और कैसे करेगा ?

" सदा पश्यंति सूरयः " ऐसी अवस्था प्राप्त होनेपर मानव 'स्थितप्रज्ञ' होकर भगवद्गीतामें बताया हुआ जैसा वर्तन, बाह्य जगत्में करने लगता है। " सर्व स्थानमें सर्वांतर्यामी परमात्माही विराजमान् हैं " यह जान लेनेपर मानव समदर्शी और " सर्वभूत हिते रतः " बन जाता है। उसके अनैच्छिक और ऐच्छिक व्यवहार परमेश्वरके साथ मिलकरही चलते हैं। तीव्र विचारोंका चेहरेपर परिणाम होता है, बच्चेका ख्याल आकर माताके स्तनसे दूध उमड़ आता है। सब संपत्ति नष्ट होने की बात सुनते ही धनी आदमी निश्चेष्ट होता है, ऐसे क्षणिक और चिरंजीवी परिणाम हम देखते ही हैं। फिर सदाके लिये ब्रह्मरत हुए मानवके जीवनमें वैसाही परिणाम दीख पडेगा तो कुछ आश्चर्य नहीं है। संकटोंमे वह अचल रह सकता हैं। "दुःखेष्वनुद्विग्न मनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।" इस भगवद्वचनमें उसके मनकी अवस्था ठीक ठीक प्रदर्शित की गयी है। **जेम्स भी**

लिखता है:—" मानवपर आक्रमण करनेवाले विकार मानवकी पापकी डर मिटा देते हैं। देशभक्तको कारावासकी डर नहीं रहती है। दुःखमें ही आनंद हो सकता है।" **प्रॅट** लिखता है:—" लढाईमें शत्रूकी रसद बंद करते हैं। वैसाही वैराग्य काम करता है। गुम जानेवाली कुछ चीजही हमारे पास नहीं है यह ज्ञान पाकर मानव निर्भय होता है। तृप्तीके लिये इंद्रियोंको हम तृषाही रखते नहीं हैं जब इंद्रियोंसे हम स्वतंत्रही हो जाते हैं। और फिर ध्येयसाधनके लिये हमें पूरा मौका मिल जाता है।" गीतामें लिखा है:— " इंद्रियाणि पराण्याहुः इंद्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तु सः। इस प्रकार हम एकसे एक श्रेष्ठ अनुभवोंका सुख हस्तगत करके जब शिखरपर ही पहुँचते हैं तब नीचे उतरनेका ख्यालही रखेगा कौन? एम्. ए. होनेपर फिर प्राथमिक पाठ लेगाही कौन? देह के लिये व्यवहार करना इतनाही बाकी रहता है।

अब इस अवस्थाका वर्णन अधिक करनेकी जरूरत नहीं है। सिद्धावस्था और वैराग्य, महाराजके चरित्रमें स्पष्ट प्रतीत होता है। सर्व-भूत-हित–रतत्व आपके जीवन में पूरा भरा हुआ है। जो कुछ आपको मिला है वह आप दूसरोंमें प्रेमसे बांट दे रहे हैं। उसका साधन एकही है:—" सोऽहम् " मंत्र. **पतंजलि** बोलतेही हैं:--तज्जपः तदर्थ भावनम्। उसी जपसे मानवकी भावनाएँ अखंड परब्रह्मके साथ मिल जाती हैं। उसी विचारसे मनुष्यका देह कोई बॅटरीके जैसे बन जाता है। हिप्नोटिझम्, टेलिपाथी, सायकोथिऱ्यापी इत्यादि घटनाओंमें यही बात सिद्ध है। मांत्रिक मंत्रितके देहपरभी चाहे सो परिणाम कर सकता है। खाली पानी लगा कर बोलता है " यह अंगार है " और मंत्रितके देहपर फोडे आते हैं। " सीइंग अवरसेल्व्हज " नामक ग्रंथके ४१ पृष्टपर लिखा है कि **ट्रीझा न्यूमन** नामके एक स्त्रीके शरीरसे बिलकुल वैसा ही खून निकलता था कि जैसा खुद ' ईसा ' के शरीरसे ' क्रूस ' पर खीले ठोकनेपर निकलता होगा! खुद मेडिकल कमिशन द्वारा उसकी जांच की गयी है। विचारोंकी एकाग्रतामें इतनी शक्ति है कि सायकोथिऱ्यापी नामक शास्त्र की सहाय्यतासे डॉक्टर विचारकीही सहाय्यतासे मानवोंका रोग निवारण कर देता है। साधारण पेट भरनेका धंदा करनेवाला जब अपने विचारोंसे इतना कर्तव्य

कर सकता है तब जो सिद्ध परमेश्वरके लिये संसारका होम कर देता है वह क्या नहीं कर सकेगा ? जब सिद्ध करोडों मील दूरीपरसे शक्ति खींच ले सकता है तो क्या वह पृथ्वीपर कहीं भी रहनेवालोंको अपना संदेश नहीं पहुंचा सकेगा ? पूर्णत्व पाए हुए सिद्ध ये बातें सहज रीतिसे कर सकते हैं। महाराजके हाथसे भी ऐसीं बातें हुई हैं। चरित्रमें उसका उल्लेख पाठकोंको मिलेगा।

मनुष्यका जैसा अधिकार होगा वैसा कार्य उसके हाथसे होता रहेगा। वस्तुका भी परिणाम मनुष्यकी देहक्षमता पर निर्भर रहता है। विष औषधी हो जाता है। मांत्रिक के मंत्रका परिणाम भी मनुष्यकी देहक्षमताके अनुसार हो सकता है। " वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे। " सुभाषितका न्याय अध्यात्ममें भी चलता है। सभी साधक समान रीतिसे 'साधक' के 'सिद्ध' नहीं बनेंगे। " यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः। " यही गीतावचन सत्य है। महाराजके शिष्य समुदायमें भावे, गुप्ते, वैद्य, सायगांवकर, मोहिते, मधुकर चिटणीस और भवानीचरण सिद्धांत इनकी प्रगति दूसरोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण मालूम होती है।

शिष्योंने महाराजको कितनाभी श्रेष्ठ माना हुआ हो, खुद महाराज अपनेको साधक' और 'मुमुक्षु' ही कहलाते हैं। और लेखककी अल्पमति इसीको ठीक मानती है। आप जन्मसिद्ध होकरभी सर्वसिद्ध नहीं हैं। आप ध्यानयोगी हैं। तोभी आपको मालूम है कि आप **शंकराचार्य** और **ज्ञानेश्वरके** समान अभीतक नहीं हुए हैं। पतंजलीने जो परसीमा बतायी है। वहांतक आप पहुचे नहीं हैं। पतंजलिका कहना है:—"ऋतंभरातत्र प्रज्ञा", "प्रातिभाद्वासर्वं", " तत्रनिरतिशयम् सर्वज्ञबीजम्"। और इसीसे आप अपनेको 'साधक' या 'मुमुक्षु' कहलाते हैं ऐसा मैं समझता हूँ। हमारे जैसे साधारणोंसे आपका दर्जा तो बहुत कुछ ऊँचा है ही। तो भी आपहीके कहनेपरसे मालूम होता है कि 'ज्ञान-कर्म-भक्ति' का कैलास, उन सबके उत्कर्षका विलास, परब्रह्मका आनंदोल्लास, अबतक आपको लूटनेका मौका नहीं मिला है। आजकी आपकी स्थिति खाली नाथसंप्रदायके किसी प्रेषित (मिशनरी) के जैसे है। **श्री मच्छिंद्रनाथजी** और **श्री नारायण सरस्वती महाराजकी** प्रेरणासे, इनके दिये हुए अधिकार और शक्तीसे **श्री गजानन महाराज**

शिष्योंपर अनुग्रह करते हैं। संप्रदाय बढानेके लिये आप ढोंगधतूरे नहीं मचाते हैं। आर्त, जिज्ञासु और अधिकारी होगा उसीके सिरपें हाथ रखते हैं। इससे शिष्य समुदायकी संख्या छोटीसी ही है। उन्होंने अपने अपने अनुभव इस पुस्तकमें दिये हैं। हरेकके अधिकारके माफिक अनुभव आये हैं। ऐसा उस पर से मालूम होता है।

महाराजके जीवनमें चमत्कार भी बहुतसे हुए हैं। अनुग्रहके बाद शिष्योंको जो अनुभव आयें हैं उनमें स्वसंवेद्य और परसंवेद्य ऐसे दोनों भी प्रकार हैं। अनाहत ध्वनिश्रवण, दृश्य, मनः शांति और संस्त, देवताँए, चक्र, कुंडलिनी, तीर्थस्थान चंद्र सूर्य इत्यादि दर्शन, ये सब स्वसंवेद्य हैं। परसंवेद्यमेंके कुछ यहां दियें हैं:—सुगंधिका अनुभव, रोगनिवारण (श्रीमती गुप्तेका अर्धांगवायु क्षणार्धमें ही नष्ट होना, श्रीयुत गुप्ते की अंतर्गल की व्यथा नष्ट होना, श्री. शंकर-राव समर्थका मॅनेंजायटिस और श्री मोहितेजीकी बीमारियां दुरुस्त होना), भस्मके ढेर उत्पन्न होना, सुगंधिक चीज (बुक्का) का सब लोगोंपर वर्षाव होना, शराबका दूध बन जाना, मांसमच्छीका शाकाहार या गुलाबके फूल बन जाना, इनकी सुगंध नष्ट होती, घरमें सुगंध फैलना, दूरीपरके साधकोंको 'नासिक' चलनेका आदेश मिलना (भवानी चरणसिद्धांत, श्री० गंदेकर, श्री. चाफेकर) और वैसाही होना और श्री० वैद्य, साक्रीकर, सावगांवकर, सासवडकर और राजे इनके असाधारण अनुभव। स्वसंवेद्य अनुभवोंसे जब शंका उत्पन्न होती है तब ऐसे परसंवेद्य अनुभवोंसे विश्वास फिरसे दृढ होता है। जिससे उपासना, भक्ति, और शांति विचलित नहीं होती है। स्वसंवेद्य अनुभवोंमें 'योग-रहस्य'के कर्ताने "चंद्रादित्यग्रहमणिप्रदीप रत्नादिषु प्रवृत्तिरूपन्ना।" ऐसे अनुभव दिये हैं। महाराजके शिष्योंको वैसे ही अनुभव हैं। रहस्यकर्ता और भी लिखता है कि जब दूसरोंको आया हुआ कुछ एकाध अनुभव आनेसे साधककी बुद्धि विचलित होती है तब उसको और भी कोई विशेष अनुभव दे कर सद्गुरु उसकी श्रद्धा दृढ कर देता है। "शास्त्रानुमानाचार्योपदेशोपोद्बलनार्थमेवावश्यं कश्चिद्विशेषः प्रत्यक्षीकर्तव्यः।" **श्रीगजानन महाराजने** अपने शिष्योंकी बुद्धि ऐसे ही विशेष अनुभवोंसे दृढ की हुई मिलती है। इसीसे आपके शिष्य आपके पास दृढतासे रहे हुए है। खुद महाराज, अनुभव देनेके पहले साधकोंको

बार बार निश्चित शब्दोंमें कहते हैं:—"मेरे शब्दोंपर अंधविश्वास रखना नहीं। तुम अनुभव लेलो। और बादमें चाहे 'सोऽहम्' की उपासना करो या मत करो।" फिर भी सब प्रगतिका श्रेय आप **श्रीनारायण सरस्वतीजी** को ही देते हैं। कुछ भी हो, महाराजके पास कुछ अलौकिक शक्ति है यह बात निर्विवाद है।

ऐसे अलौकिक शक्तिशाली, सच्छील और परोकाररत मानव को ही हम 'विभूति' मानतें हैं। और वे भी गीताके दसवे अध्यायमें कहे हुए सिद्धांतके माफिक परमात्माके तो 'अंश' ही हैं। इस विचारसे देखनेसे मालूम होता है कि सब संत–महंत और सिद्धयोगी "अपूर्ण अंक" हैं। साकार हैं वह सांत होता ही है। वह निराकार अनंत परमेश्वरके 'अंश' ही हैं। बात सीधी ही है। निराकारत्व और अनंतत्व को जब हम १०० मानेंगे तो संत $\frac{१}{१००}$ से $\frac{९९}{१००}$ तक कितने दर्जेके होंगे उसका हमें पता नहीं चल सकता है। सामान्य मानव हरेक संतको $\frac{९९}{१००}$ का दर्जा देता है यह उसकी भूल होती है। और उतना अनुभव नहीं आनेपर एकदम उसे शून्य मानते हैं। नवपरिणीत वधु पतिको पूर्णांशमें सद्गुणसंपन्न दिखती है। नवजात शिशु स्त्रीको सर्वगुणसंपन्न मालूम होता है। बादमें धीरे धीरे यह श्रद्धा कम होती है। इसी प्रकार गुरु-शिष्योंमें भी होना संभवनीय है। अतः महाराज भी बोलते हैं कि–"पहले अनुभव लेते चलो। बादमें अनुग्रहकी बात करो।" अवतारभी हम अंशावतार मानते हैं। संतभी 'अंश' हैं। महाराजकी भूमिका नाथसंप्रदायके सहजसिद्ध, ध्यानयोगीप्रेषित है, ऐसा ही हम मानते हैं। कई एक लोग यह बात नहीं मानेंगे। लेकिन अंधश्रद्धासे लिखनेवाले हम नहीं है। पाश्चात्य और पौर्वात्य विचारप्रणालीकी सहाय्यतासे महाराजकी सिद्धियां और योगसंपन्नताके बारेमें हमने विचार करके हम इस मतपर आये हैं। "यद्रोचते तद्ग्राह्यं, यन्नरोचते तत्त्याज्यं, सुखेनैव भोक्तव्यं।" यही मेरी पाठकोंको और खुद महाराजसे प्रार्थना है। अब यहां "जुगामहे" कौन बोलते हैं यह मुझे समझेगा तो ठीक।

चारित्रके लेखकसे मेरा परिचय नहीं है। मेरी प्रस्तावना उन्हें कहांतक पसंद होगी मैं नहीं जानता हूं। लेकिन लेखकने अपनी कृति महाराजको

अर्पण की है। और महाराजने मुझे प्रस्तावना लिखनेकी आज्ञा की है। अब उसमें जो कुछ कम होगा वह महाराजही पूरा कर लेंगे और अधिक होगा वह महाराजही निकाल देंगे ऐसा मेरा विश्वास है। और महाराज जिस बातको मानेंगे उस बातको श्री. बापट भी मानेंगे ऐसा मेरा निश्चय है। जिनके अनुभवोंको मैंने संक्षिप्त किया है वे लोग मुझे क्षमा करेंगे ऐसी मुझे आशा है। जिनमें द्विरुक्ति और आक्षेपार्हता है उन अनुभवोंको ही मैंने संक्षिप्त किया है। इससे महाराजके बारेमें जो आदर और भक्ति है वह कम नहीं हो सकती है। निष्कारण टीकास्त्र चलानेके लिये जहां जगह रह सकती है उतना ही भाग कम कर दिया है। किसीकी भावनाको धक्का देनेका इसमें इरादा नहीं है।

चैत्र शु. १५ शके १८६६,
येवला.

विष्णु महादेव भट

नाथपंथ

प्रथम खंड

आज कलके दिनोंको हम " प्रगतियुग " वाले " सत्यमंडन-युग " नाम दे सकते हैं। क्योंकि हरेक शास्त्रमें मानव नये आविष्कार कर रहा है। आज जिस बातको नयी मानते हैं उसीको कल पुरानी मानना पडता है। मानवी बुद्धि, पिछली सब बातोंको मिटाकर नयी बातें प्रकट करती है। इस प्रकार वह अज्ञात क्षेत्रमें " प्रगति " कर रही है। और सब शास्त्रोंका उगम एक ही है इस तत्वका प्रतिपादन करनेमें यश प्राप्त कर लेनेके लिये पंडितोंका यत्न चल रहा है। " धि ग्रेट डिझाइन " ग्रंथके समान अन्योन्य ग्रंथोंका विचार इसी बातकी सत्यता सिद्ध करता है।

विचारी मानव इसपर यही कहता है कि भौतिक शास्त्रोंके सब प्रयत्न और मानवकी बुद्धिने इस सर्वसाधारण तत्त्वकी खोजके कार्यमें, जितने मार्ग निकाले उतने सबके सब निष्फल होनेकी संभावनाही अधिक है। जिससे सबको शाश्वत शांति निश्चित रूपसे मिलेगी ऐसा वह तत्त्व प्राप्त करनेके लिये शास्त्रोंके मायामर्यादित यत्न और मायाव्याप्त बुद्धि काम नहीं देगी।

हमारी आर्यसंस्कृति इस प्रश्नका विचार एक और ही विशेष मार्गसे करती है। हमारे द्रष्ट महात्मा कहते हैं कि विश्वका गूढ खोलनेके लिये हमारी बुद्धि हमें काम नहीं देगी। अंदरकी भावसंवेदनाओंसे ही इस शास्त्रका श्रीगणेश समझनेका प्रारंभ हो सकता हैं और जो सब शास्त्रोंका और तत्त्वज्ञानोंका मूलाधार है उस ईश्वरज्ञानके शास्त्रमें ही। नीचेके सभी वादविवाद इसी ज्ञानसे बंद होते है। आत्म-ज्ञानके दीपसे ही सारा मायामय अंधकार दूर होकर हमारे रास्तेपर प्रकाश हो सकता है। उसीसे 'सत्य' क्या चीज है और वह कहाँ मिलता है यह बात मालूम होती

है। इसी रास्तेपर सुख-शांति देवता हमारा स्वागत करनेके लिये हमेशा तयार होकर बैठी है। आर्य-भूमि वही तत्त्व-ज्ञान-संग्रह सब जगतके विचारी लोगोंको शाश्वत-शांति प्राप्तीके लिये नौता देती है। वही नाथपंथका दृढ-निश्चय है। वह सब दुनियासे न्यारा है और उसीमें इस पंथका महत्व है। इसका आदि गुरु है श्री महादेव और आदि नारायण हैं मच्छिंद्र।

श्रीमच्छिंद्रजीके समयमें समाजके सब अधिकार वैदिक धर्ममें समाविष्ट थे। कर्मकाण्डकोही महत्व देनेवाले सनातनी लोग जहाँ तहाँ दिखाई पडते थे। मठ-मंदिरोंमें उन्हींका फैलाव हो गया था। राजोपाध्याय होनेसे उनको बहुतसा मान था और वे तो कहते थे कि सब ज्ञानके सर्वाधिकारी कर्मकांडवाले सनातनीही है। स्त्री–पुरुष और ज्ञातिवर्णोंके भेद कडे-बंधनोंसे बद्ध हुए थे। जो सन्यासी बनेगा उसकोही ईश्वर ज्ञानका अधिकार है ऐसा भी वे कहते थे। शूद्रोंको और स्त्रियोंको इस ज्ञानके बारेमें अच्छूतोंकी अवस्था प्राप्त हुई थी। स्नान-संध्यादि कर्मोंमें ही धर्म समाविष्ट किया गया था। इसीसे हटयोगको बडा महत्व आकर लोग हटयोगियोंसे बहुत डरने लगे थे। क्योंकि वह शाप देकर संपूर्ण संसारको जला देगा ऐसा डर उत्पन्न किया जाता था। इसीसे ठगाने वाले साधु-बैरागी लोगोंकी उत्पत्ति होकर वे धन इकट्ठा करने लगे। शाक्त और भैरव पंथ भी इसीसे अपना महत्व जमाने लगे थे। ऐसे जमानेमें श्री मच्छिंद्रनाथजीका उदय हुवा ओर इस सारे अज्ञान-अंधकारको हटाना पडा। आपका तेजस्वी मुखकमल और आपकी मधुर वाणी सबका हृदय जीतने लगी। आपके पास आनेके लिये किसीको बंधन नहीं था। कितना भी नीच समझा हुआ जीव आपके पास आकर ज्ञानलाभ उठा सकता था। इससे सनातनी पंथोंको कितना जबरदस्त धक्का मिला! उनके देवल और मठ खाली होने लगे।

श्रीमच्छिंद्रनाथजीका प्रथम उपदेश यही था—"ईश्वरप्राप्तीका जन्मसिद्ध हक्क हरेक व्यक्तीको है। फिर वह व्यक्ति स्त्री हो या पुरुष। श्रेष्ठ ज्ञातीमें जन्म लिया हुआ हो या नीच अछूत।" जरूरत एक ही बात की थी कि व्यक्तीको जिज्ञासा 'समझ' होना। जिसको संसार-जीवन निरर्थक है यह मालूम है ओर ईश्वर-ज्ञान यही एक चीज सब सुखशांतीका उगमस्थान है इतनी कल्पना आयी है, उस व्यक्तिको 'समझ' है ऐसा आपका स्पष्ट मत

था। सब साधकोंको आप पुकार कर कह देते थे। "आओ! संसारत्रस्त जीवों! मेरे पास आओ! मैं तुम्हें शांतिका साधन देता हूं और तुम्हारे हृदयमें सच्चिदानंदकी मुद्रा बिठाये देता हूँ।"

सद्गुरु मच्छिंद्रनाथजी व्याख्यानबाजी नहीं करते थे। सिर्फ कहते थे। "आपके मनमे वासना कहांसे और कैसी पैदा होती है इसकी खोज करो। इससे तुम वासना काबूमें ला सकते हो। और वासनाओंको कब्जेमें लातेही आत्मज्ञान प्राप्त होता है।" आप शिष्योंके विचार जानते थे और शिष्योंके मानसिक श्रेष्ठ कनिष्ठताके अनुसार उन्हें ठीक ठीक स्थान बताकर ज्ञान मार्ग-पर चलाते थे। फिर उनको चलनेमें अपनी अंतःशक्तीसे मदद भी देते थे। शिष्यके पास आतेही उसको बिठाकर आंतरिक दृष्टीसे आत्मसुधार करनेका मार्ग बताते थे। ध्यानधारणा यही वह मार्ग था। शिष्यके मार्गमें अडचनें हों तो स्वयं दूर करते थे। अंतमें शिष्यको अनंतब्रह्मका आनंद मिलता था। श्रीगजानन महाराजकी प्रथा भी बिलकुल वैसी ही है।

आपके शिष्य गोरखनाथ प्रसिद्ध हैं। गोरखनाथजीने अडबंगनाथ नामक एक साधारण कृषक पर अनुग्रह किया। गोरखनाथसेही गहिनीनाथको और उनसे निवृत्तिनाथको अनुग्रह हुआ। निवृत्तीसे ज्ञानदेव अनुग्रहित हुए। ज्ञानेश्वर महाराष्ट्रके आद्यपुरुष हैं जिन्होंने मातृभाषामें तत्त्वज्ञानका फैलाव करके सबके लिये स्वर्गद्वारको मुक्त कर दिया है। इस प्रकार नाथपंथ महाराष्ट्रमें आया। इस पंथके प्रदीपोंनें महाराष्ट्रकी संतभूमि बना दी।

यही है नाथपंथका प्रारंभ। इसमें ऐसे कितने महात्मा हो गये हैं कि जिन्होंनें अनगिनती जीवों का उद्धार कर दिया है। उन महात्माओंका एकही धंधा आदिकालसे अंतकालतक चलता था और वह स्वर्ग छोडकर नीचे मृत्युलोकमें शरीर धारण करना है। लक्षावधि जीवोंको आत्मज्ञान देकर सच्चिदानंद पदके रास्तेपर खींच लेना और वहांतक पहुंचनेके लिये सबके पथ-प्रदर्शक सेवक बनना। एक जन्म का शरीर बेकार होते चला तो दूसरा तय्यार ही करके रखते हैं। जन्म, मरण, फिर जन्म, बचपनमें काल-हरण करना इनको पसंदही नहीं आता है। चौरंगीनाथजीका अवतार श्रीराम मारुती कल्याणके रूपमें कार्य करते ही थे तो इधर दूसरा देह लेकर गजानन

महाराजके रूपमें बढ रहे ही थे। श्रीगजानन महाराजके रूपमें आप ही पूर्ण होते देखा। तो फिर पहला शरीर जो राम मारुतीजीके नाम धारण किया हुआ था उसको छोड दिया। आज भी और कहीं दूसरी जगहमें दूसरा नाम और देह धारण करके उस देहको पूर्णता लानेकी तैय्यारी चली ही होगी। श्रीगजानन महाराज, जो खुद चौरंगीनाथ ही कहलातें हैं। धन्य हैं। त्रिवार धन्य है। शतवार नमन है ऐसे सद्गुरुओंके चरणों में जो इस प्रकार अविश्रांत श्रम लेकर जीवोंका उद्धार कर रहे हैं। स्वर्गको भी तुच्छ समझते हैं। हमारा महद्भाग्य है कि उनमें से एक महात्मा श्रीगजानन महाराजका चरित्र ग्रंथ हमें मिला है।

ॐ

द्वितीय खंड

योग-साधन-मार्ग

और

श्रीगजानन महाराजकी ध्यान-योग पद्धति

'योग' का साधारण अर्थ है मिलना-जुलना या एक चीजका दूसरेके साथ संयोग, या संम्मिलन हो जाना। अंतमें दोनोंका एकही हो जाना, इसी प्रकार जीव और शिव एकही बन जाते हैं। क्योंकि एक दूसरेका विभाग भी नहीं है। एकही हैं। जीव को अपने शिवत्वका अनुभव समाधिमें कैसे आता है और उस अनुभवकी स्थितितक पहुंचनेका क्या रास्ता है यही योग-शास्त्र बताता है। योगी लोग बताते हैं कि जीव और शिव दोनों एकहीके नाम हैं। अवस्थाभेद दीखता है वह मायाभ्रमसेही दिखाई देता है। यह भ्रम-जाल मिट देना ऐसा जो चाहते हैं उनके लिये मुनि योगिओंने वह शास्त्र बनाया है। खुद अपने अनुभव उन्होंने लिखे हैं।

योगशास्त्र यह भी उस अनुभव तक पहुँचनेका एक रास्ता है। अंदर का आत्मतत्व पहचानकर उसीके साथ एक होनेके लिये कौन कौनसी शारीरिक और मानसिक क्रियाएं साहाय्यता देती हैं उनका उपयोग किस प्रकार कर लेना है यही योगशास्त्र बताता है। मानवी और दैवी आत्मा तो एकही हैं यह जाननेका योग-मार्ग है। चैतन्य ही जीवकी सत्यस्थिति है ऐसा वेद बोलते हैं और मनुष्य भूलसे समझता है कि चैतन्य बंधनमें है और हमें उसे छुडाना है। चैतन्य बंधनमें पडेगा तो मोक्षकी बातही नहीं हो सकती है। बंधन है मामामय और भ्रमात्मक। बंधन भी सच्चा नहीं हैं। ज्ञानकी सहाय्यतासे जब यह भ्रम नष्ट होता है तब स्वप्नमें कैद भुगता हुआ आदमी जैसा जागृतीमें आनेके बाद अपनेको पहलेसे ही स्वतंत्र

समझ सकता है, उसी प्रकार जीव और शिवकी प्रथमसे ही जो एकता है उसका अनुभव होता है।

अब ऐसी सहाय्यता देनेवाले ज्ञानके दो विभाग हो सकते हैं। एक तो दोनोकी एकता "है" यह समझनेका ज्ञान। और दूसरा इस एकताका अनुभव लेनेका जो रास्ता बताता है वह "ज्ञान"। सत्यस्वरूपका ज्ञान और वहांतक पहुंचनेके लिये क्या क्या बातें करनी पडेंगी उन क्रियाओंका ज्ञान। ब्रह्म क्या है और माया क्या है यह समझनेका ज्ञान आत्मा क्या है और अनात्मा क्या है यह समझनेका ज्ञान। नीचेसे उंची स्थितितक योग हमें ले जाता है। इसी रास्तेपर चलते हुए किसी साधनका अभ्यास करतेवक्त परमात्मा कृपा करके सहायता पहुंचाता है। जैसा सोता हुआ और भयंकर स्वप्न देखता हुआ आदमी अंदरसे ही जागृति पाता है।

बुद्धीके साथ मानवको देह और मन भी है। इन सबकी शुद्धि योगसे करनी पडती है। इन सबोंपर मायामय ऐहिक जगतके संबंधसे संस्कारोंके छाप पक्के होते चलते हैं। उनको हटा देना और मिटा देना यही योगका काम है। वासनाओंसे संस्कार उठते और पक्के होते हैं। जिससे आदमी खुदको ही भूल जाता है। योंगसे श्वासपर और श्वाससे मनपर अधिकार जमाकर आदमी संस्कारोंको नष्ट कर सकता है। वासनाओंको निर्मूल कर सकता है उसी स्थितिमें ईश्वरत्वका अनुभव होता है। समाधि वही है।

श्वास और मनका संपूर्णतया नियंत्रण होनेसे समाधि स्थिति प्राप्त होती है। उसीमें जीव और शिवका ऐक्य मालूम पडता है। तबतक "मैं" और "तूं" का द्वंद्व रह जाता है बादमें जैसी शक्कर पानीमें मिलजाती है वैसा मिलन हो जाता है। अब दोनोंके बीचमें कोई "अंतर" ही नहीं रहता है। जहांतहां शांति और अमर्याद तेजका समुद्रही बहता जाता है। इस स्थितीको योगिओंने बहुतसे नाम दिये हैं! वे हैं। जीव, शिवैक्य, अमरत्व, परमपद, एकता, स्वातंत्र्य, निरंजनावस्था, जीवन्मुक्ति, सहजावस्था और तूर्या। जागृति, स्वप्न और सुनिद्राके भी परे यह अवस्था है। 'सब द्वंद्वोंके पार जाना' यही सबका अर्थ है।

इसके चार विशेष योगमार्ग हैं। मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। नाथपंथीय श्रीगजानन महाराजका ध्यानयोग इन सबोंका सुंदर मिलन है। और चारोंमेसे कोईभी एक रास्ता पकडा तोभी दूसरे तीनोंमेंके तत्त्वोंका उपयोग होनाही है। क्यों कि वासनानिर्मूलन यह तो सबोंमें मुख्य बात है। और चित्तही वासनाओंका आधार है। सबोंमें आठ साधनोंसे काम लिया जाता है। केवल राजयोगमें बुद्धिका प्राधान्य है। मंत्रयोगमें श्रद्धा प्राधान्य है। हटयोगमें क्रिया प्राधान्य है। अब सब योगमें जिन आठ साधनोंका उपयोग है वे हैं।

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि. इनका स्पष्टीकरण क्रमशः करेंगे।

(१) **यमः**—सद्गुणोंको आचरणमें लाना यह बात इसमें मुख्य है। बातें तो सब करते हैं लेकिन जीवनमें सत्वगुणोंका उपयोग करना यह कठिन बात योगी लोग करते हैं। मनमेंभी बुरी बातोंका विचार नहीं आयेगा ऐसा चित्त शुद्ध होना चाहिये। सत्संग और सद्ग्रंथ पढनेसे यह साध्य होगा। मन वशमें तो रहनाही चाहिये।

(२) **नियमः**—फिर आहार विहारके कोई बंधन बनाकर कडी रीतिसे उनका पालन करना चाहिये। दिनकी सब क्रियाएँ नियमबद्ध कर लेनी चाहिये। जप, मौन, शुचिर्भूतता वगैरह बातें नियमोंमें समाविष्ट हैं।

(३) **आसनः**—जिसमें शिर, और पृष्ठवंश एक कतारमें रहेंगीं और बहुत देरतक वैसी ही स्थितिमें रहनेसे शरीरको कष्ट नहीं मालूम होंगे ऐसा कोई भी शरीर रखनेकी स्थिति चुनकर घंटोंतक उसे एक आसनमें बैठनेका अभ्यास करना चाहिये।

(४) **प्राणायामः**—श्वास ऐसी गतिसे चलना चाहिये कि हमें उसकी चालकी गति भासमान् भी नहीं होना चाहिये। थोडे कालतक रुक भी गयी तो हमें पता नहीं चलना चाहिये। रुकावटका काल बढानेकी कोशिश बिलकुल नहीं करनी चाहिये। चित्त तो श्वासोंपरसे उठकर अंदर जाना चाहिये। श्वासोच्छ्वासकी क्रिया भी भूल जानी चाहिये। यही प्राणायाम है।

(५) **प्रत्याहारः**—चित्त शरीरमेंके कोई एक स्थानपर जमानेसे हम बाहरकी सब बातें भूल जाते हैं। श्वासको भी भूल जाते हैं।

(६) **धारणाः**—अंदरके एक चक्र पर या मंत्रके अर्थ पर चित्त जमाना और वही बहुत देरतक रखना, यही धारणा है।

(७) **ध्यानः**—मनको ऐसी ही आदत लगाना जिससे एक विषय वह छोड ही सकता नहीं। इस स्थितिका नाम है ध्यान।

(८) **समाधिः**—ऊपरके सात कार्योंसे आपहीसे ऐसी एक स्थिति प्राप्त होती है जिससे मनुष्य खुद शरीरको भी भूल जाता है। देहका भान नष्ट होने की स्थिति समाधि है। मन भी उसमें कुछ विचार का कार्य नहीं करता है। आनंदमय हो जाता है। धारणा ध्यान और समाधि इन तीनोंको 'संयम' भी नाम है। समाधिकी अवस्थाए बहुतसी हैं। लेकिन श्रीगजानन महाराज इन सब बातोंको महत्व कम देते हैं। उनका मार्ग सीधा है, अलग है, और उसमें इन सब बातोंका सुंदर मिश्रण भी है। कोई इच्छुक 'साधन' के लिये अटक जाता है। ऐसा श्रीगजानन महाराजके बारेमें कभी नहीं होता। जो पासमें हो वही 'साधन' लेकर आप 'साधक' को 'साध्य' की प्राप्ति कर देते हैं। नवनाथ भी ऐसा ही करते थे। गुलाबराव महाराजके समान आधुनिक संत भी वैसाही करते आये हैं। आप लोगोंमें अति मानवी शक्तियां हैं। मानव जैसा हो, वैसाही उसको उठाकर योगमार्ग पर चला देनेकी ताकद आप लोगोंमें है। यही आपकी विशेष योग्यता है।

मंत्रयोगः—वृत्तियोंके अनुसार मन मायामें गढ जाता है। लेकिन उसी मनकी सहाय्यतासे मायामय जगत्पर कब्जा भी हो सकता है। अतः कोईभी मंत्रोच्चारण, उसका जप और यम नियमादिकोंका पालन करनेसे मनुष्य धारणा, ध्यान और समाधितक पहुंच सकता है। मूर्ति-पूजा, त्राटक वगैरे साधनोंसे मंत्रयोगमें सहाय्यता ली जाती है। श्रेष्ठ-कनिष्ठ वर्ग और स्त्रीपुरुष इनके बारमें अलग अलग मंत्र हैं। श्रीगजानन महाराज 'सोऽहम्' मंत्रका उपदेश देते हैं।

हठयोगः—जड शरीर, सूक्ष्म शरीर, और कारण शरीर ऐसे मानवके तीन देह हैं। जड शरीरको यम-नियमोंसे काबूमें लाना, साफ रखना और

सुयोग्य बनाना यही हठयोगका ध्येय है। क्योंकि केवल इसी बातसे जड शरीरके साथ बद्ध रहनेवाले बाकी दो देह भी अन्यहीसे शुद्ध होनेमें मदद होती है। प्राणायाम और ध्यानसे फिर मनकी शांति उत्पन्न की जाती है। ध्यानदीप शिखरपर जमानेका और शरीर अनेक उपायोंसे साफ रखनेका महत्त्व इस योगमें है। इससे सर्वव्यापी चैतन्यमय प्राण और मनुष्यके प्राणके मिलाप प्राणायामसे होता है। मंत्र, लय, और राजयोगमें प्राणायामपर इतना जोर नहीं दिया जाता है, जितना हठयोगमें दिया जाता है। खानापीना, उठना-बैठना इनके बारेमें जीवनके साधारण व्यवहारोंमें भी इसमें कहे नियमोंका पालन करना पडता है। शरीरशोधन, धृति, स्थैर्य, शौर्य, चापल्य, ध्यान, वैराग्य वगैरे बातोंका महत्त्व इस योगमें अधिक है। कफ, वात, पित्तोंका जोर हो तो पहले उसका इलाज करके फिर प्राणायामका अभ्यास करना पडता है। प्राणायामसे नसोंनसोंमें शुद्धता भर जाती है और मन भी वासनाविरहित हो सकता है। बादमें सिद्धियां हस्तगत होती हैं। और समाधिसुख प्राप्त होनेपर जीवशिवैक्य होकर सच्चिदानंदपदमें मानव पहुँचता है। सारांशमें शरीरकी सहाय्यतासे ही आप आदमीको हटयोग अखीरतक पहुंचता है। श्रीगजानन महाराज इसमेंसे आसनका उपयोग करते हैं और षट्चक्र भेदकी क्रियाका भी उपयोग करते हैं। बात यह है कि, सब प्रकारके योगोंमेंसे सीधी बातें चुनकर महाराज शिष्यको सुलभतासे आनंदपदमें पहुंचाते हैं।

लययोगः—हटयोगकी अगली मंजिल लययोग है। ध्यानधारणादि अष्टांगोंका पालन इसमें भी करना पडता हैं। जिससे वासनात्याग होकर जड पंचज्ञानेंद्रियोंका समूह सूक्ष्म पंचज्ञानेंद्रियोंके साथ मिलाप कर लेता है। क्यों कि योगोंका मुख्य तत्व यही है कि जो कुछ पूरे जगतमें है वह सब हमारे अंदर भी है। लययोगका मुख्य तत्व है प्रकृतिपर कबजा करना और वह सूक्ष्मेंद्रियोंकी सहायतासे। कोई बाहरी वस्तु या अंदर दीखने वाले उजेलेपर चित्त स्थिर करके दोनोंकी पकड जमा देना यही कार्य इन योगोंमें मुख्य है। कुंडलिनी को इन्होंने जादा महत्व दिया है। उसीको प्राण-शक्ति बोल सकते हैं। वही ईश्वरी-शक्ति है। सब लोगोंमें यह मौजूद है। सिर्फ़ सद्गुरूकी सहाय्यतासे उसको ठीक ठीक रास्ते पर लाकर चलाना पडता है। कुंडलिनी

का प्रभाव अंदर तो चलताही है। उसीको प्रबल करके उसका अधिकार बाहर भी चलानेका इलाज इन योगोंमें है। इसलिए पहले कुंडलिनी जागृत करना और फिर उसे ब्रह्मरंध्रमें पहुंचा कर ब्रह्मानंद लूटना यही हरेक योगका लक्ष्य है। गायनमें नादका लय होता है। इसी प्रकार लययोगकी रचना है। श्रीगजानन महाराज इसका भी उपयोग अपने शिष्योंके बारेमें करते हैं। कोई शिष्योंके जो अनुभव इस पुस्तकमें दिये हैं उनके पाठकोंको इसका वर्णन भी मिल जाएगा। कोई शिष्य चारों ओरका संपूर्ण जगत् भूल जाते हैं। यही लय हैं। कई शिष्योंको कई एक प्रकारके नाद सुनाई देते हैं। यह भी लय योग है। इस प्रकार श्रीगजानन महाराज सब योग पद्धतियोंका मिलाप कर सकते हैं।

राजयोगः—इन चारोंमें राजयोगका महत्व ज्यादह है। मंत्र-हठ-लय योगसे जो समाधि प्राप्त होती है इससे श्रेष्ठ समाधि राजयोगसे मिलती है। वासनाओंका पूरा निर्मूलन होता है। और जन्ममरण मिट जाते हैं। वैसा दूसरे तीन योगोंसे नहीं होता है। सिर्फ वे तीन इस राजयोगके लिये मनुष्य का मन तैयार करते हैं। सौम्य, मध्यम, अधिमात्रा और परा ऐसे वैराग्यके चार प्रकार हैं। जिनमें परा वैराग्य श्रेष्ठ है। तीन योगोंमें सौम्य वैराग्यसे काम चलता है लेकिन राजयोग 'परा' वैराग्यकी सहाय्यतासे ही सिद्ध होता है। जिसके लिये मन तैयार करना यही राजयोगकी मुख्य क्रिया है। शास्त्राभ्यास करनेके बाद अपने ही विचारसे इस वैराग्यकी प्राप्ति करना इसमें मुख्य साधन है। विचारोंसे ही आत्मप्रचीति लेना यही राजयोगका मुख्य साध्य है। इससे कर्माकर्म विचार छूट जाता है। करनेवाला 'मैं' शरीरमय "मैं" नहीं हूं इस ज्ञानका प्रत्यय आ जाता है। यही राजयोगमें महत्वकी बात है। राजा जनक ऐसे ही राजयोगी थे और बहुतसे दूसरे भी हो गये हैं। जीवनयात्रा चलाते हुए भी आदमी उससे छुटकारा पाता है और कार्य तो निरहंकार वृत्तीसे करते ही रहता है। श्री गजानन महाराजका कार्य भी ऐसी ही वृत्तीसे बनता है और उसी वृत्तीको आप अपने शिष्योंमें पैदा करनेका मार्ग बता देते हैं। अब महाराज इन सब योगोंका उपयोग करके अपना ध्यानियोग कैसा बनाते हैं इस बातका विचार करेंगे :—

ध्यान योगः—श्रीगजानन महाराज अपने शिष्योंको ध्यानयोगकी सहायतासे किस प्रकार अध्यात्म मार्गपर बढा देते हैं इस बातका यहां अब विचार करेंगे। सब योगोंका मिलाप करके महाराज विशेषतः राजयोग और ध्यान इन दोनोंका सुलभतासे उपयोग करते हैं। श्रीरामकृष्ण परमहंस देवके समान श्रीगजानन महाराजने भी बिलकुल लिखना पढना नहीं किया है। तो भी आत्मज्ञानके बारेमें उनसे जो प्रश्नोत्तर होतें हैं, वें अर्थपूर्ण और ज्ञानपूर्ण रहते हैं। कोई भी शिष्य अपने पास आते ही उसका आध्यात्मिक अभ्यास कहांतक हुआ है वह झट उनको समझमें आता है। जिज्ञासु शिष्यमें किसी भी दूसरे गुणोंकी अपेक्षा आप रखते नहीं हैं। उसकी चाल चलन शुद्ध होनी चाहिये। समाजमें उसको अपने कर्तव्य शुद्ध मनसे करते रहना चाहिये। उसे श्रद्धा चाहिये। मनमें भक्ति चाहिये। और ईश्वरका अस्तित्व मानना होगा तो ठीक ही। ऐसे शिष्यको महाराज अपने गुरुसे प्राप्त हुआ मंत्र 'सोहम्' कह देते हैं। और शिष्यकी गाडी आगे बढने लगती है। काम पडा तो बीचमें जरूरी मदद भी देते रहते हैं।

और भी एक बात है। महाराज तो शिष्योंकी गतिकीची जिम्मेवारी भी मन ही मम अपने शिरपें लेते हैं। और इसमें दक्षणा पूजा वगैरे कुछ बात का सौदा नहीं होता है। ऐसे गुरु दुर्लभ हैं। शिष्यके मनको इतनी सीधी सरलतासे शांति प्राप्त कर देनेवाले और ऐहिक लोगोंके साथ वैराग्य प्राप्त कर देनेवाले सद्गुरु मिलना सौभाग्यकी बात हैं और ऐसेही गुरु सच्चे होते है। ढोंगधत्तुरे मचाकर और शिष्योंका पेसा लूटकर उसके बदलेमें उसे तनिक भी शांति न देनेवाले गुरु तो बहुतही हैं। मुमुक्षुजनोंको यह फर्क समझ लेना चाहिये।

ध्यानयोगमें शारीरिक ओर मानसिक कडे नियमोंकी जरूरत मालूम नहीं पडती है। तोभी कोई उनके अनुसार आचरण करनेकी कोशिश करेगा तो लाभही होता है। इस लिये जिसको जहांतक बन सकेगा ऐसा नियम महाराज देते हैं। ध्यानयोगकी सहाय्यतासे प्राणायामादि क्रियाएं आपहीसे साध्य हो जाती हैं। कुंडलिनी या प्रज्ञाशक्ति जागृत होती है।

कोईभी आसन जमाकर शांतिके साथ बैठना सोऽहम् मंत्रका जप चलाना और चित्त अंदरकीही कोई भ्रूमध्यके समान ग्रंथीपर लगाना, इतनाही काम

शिष्यको करना पडता है। और चाहे किसीभी समयपर करे। कितनाभी समयतक करें। मंत्रपठनके लिये जबानभी हिलानेका काम नहीं पडता है और थोडेही समयमें मंत्रही आकर शिष्योंके सामने खडा हो जाता है। उसको ख्याल करनेकी भी तकलीफ नहीं उठानी पडती है। इतना सरलतापूर्ण अभ्यास महाराज बताते हैं। और बदलेमें कुछ भी लेने देनेका सवालही नही होता है। धन्यवाद है श्रीगुरुको जो ऐसे समयमें हमारे साथ, हमारे माफिक रहकर हमें श्रेष्ठ पद पर पहुंचनेका सीधा रास्ता बताता है।

अब ध्यानयोगमें श्रीगजाननमहारज जैसे सत्पुरुषोंकी सहाय्यतासे जो दिव्य प्रकाश दीख पडता है उसके बारेमें कुछ कहना जरूरी है। कोई लोग बोलते हैं, हम तो जो चाहे सो चीज हमारे आंखोंके सामने ला सकते हैं और यह उजेला भी वैसा काल्पनिक है। बात तो ठीक है लेकिन इसमें भी भूल हो सकती है। ध्यानमें जो प्रकाश और दिव्य आकृतियां दिखलाई पडती हैं वे बाहरी जगत् के न होकर ऐसे होतें हैं जो हमने न कभी देखें हैं न उनका कभी जीवनमें विचार भी किया है। क्यों कि ये बातें अंतःचक्षुसे दीखती हैं। यही दिव्य दृष्टिका एक दृश्य है।

अब कोई बोलते हैं, की प्राणरोधनसे मनुष्यका मगज घूमता है और मानसिक रोगवाले मरीजके समान ये दृश्य दीखते हैं। लेकिन सच बात तो ऐसी है कि, श्रीगजाननमहाराज प्राणायामकी सहायता तो लेते ही नहीं हैं। और किसीने ली भी तो उसका ध्यान व सुखासनमें होनेसे मगजके भ्रमणकी तो बात ही नहीं रहती है। इसमें चित्तशांति उत्पन्न होती है और वह शांति जीवनमें भी प्रकट होने लगती है। ऐसी शांतवृत्ति देनेवाली ध्यानक्रियामें और मानसिक रोगोंमें तो बिलकुल विरोध है।

उपनिषदोंमें भी आत्यप्रत्यय उजेलेसे ही होता है यह बात स्पष्ट लिखी हुई मिलती है। परमात्मा दिव्य है और वैसा ही आत्मा तेजोमय है। ध्यानयोग में उसीका दर्शन तेजोमय रूपोंकी सहाय्यतासे होता है। श्रीगजानन महाराजकी सहाय्यतासे अंतःचक्षु खुलता है और उसीसे हम आत्मप्रकाश देख सकते हैं। दृष्टीका सूक्ष्म ज्ञानेंद्रिय इस प्रकार ध्यानयोगमें काम देने लगता है। और दूसरे चार सूक्ष्म ज्ञानेंद्रिय भी काम करने लगते हैं। अब साधारण

हठयोग और यम नियमोंके पालनसे भी इस प्रकार कुछ कार्य हो सकता है। लेकिन श्रीगजाननमहाराज जैसे सद्गुरुकी सहाय्यतासे हठयोग या यमनियमोंकी अपेक्षा न रखते हुए सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियोके कार्यका अनुभव आता है। इसमें सद्गुरूकी करामत है।

॥ प्राणपूज्य किरिया ते न्यारा सहज समाधि सिखावैं ॥
द्वार न सांधै, पवन न रौकै, नहि अनहद असझावैं ॥

संत कबीरसाहबके इस वचनके अनुसार श्रीगजाननमहाराजकी कृपादृष्टि भक्तोंपर होती है। आप खाली 'सोहम्' मंत्रका जप करनेको कहते हैं। यह मंत्र वायुतत्त्वका है। और वायु तो जगह जगह प्राप्त होनेवाली चीज है अतः इस मंत्रकी-सिद्धि श्वासोच्छ्वासके साथ ही साथ होती है और भी इससे जो लाभ हैं उन्हें संत ही जानते हैं। श्वासोच्छ्वासके साथ हरेक प्राणी यही मंत्र जपता है। इसे अजपाजप नाम है। लेकिन बुद्धी होनेसे केवल मनुष्य ही यह बात समझ सकता है। 'सो' ईश्वरके बारेमें उपयोगमें लाया जाता है। और 'हम' मनुष्यके बारेमें। इस प्रकार मानव या 'जीव' हमेशा ईश्वर के साथ मिलाप करते ही रहता है। अकलसे इसका अर्थ मालूम होता है। और सद्गुरु की सहाय्यतासे इसकी शक्ति प्रकट होने लगती है। फिर तो आदमी अपने अपने जीवनके कर्तव्य करता रहता ही है। और इधर इस मंत्र के साथ उसका ईश्वरानुभव भी होते रहता है। यह मंत्र तो साथ ही साथ, दिनरात उसके सामने खडा होता है। तेजोमय रूपमें दीख पडता है। आपहीसे सुननेमें भी आता है। अनुभव लेने की तीव्र इच्छा चाहिये। जब इधर मनुष्य तो अपना कर्तव्य ठीकठीक रीतिसे कौशल्यके साथ करता ही रहता है, तब इधर उसका मंत्र जप भी होते रहोंते हैं, और उसके सामने तेजो-रूपमें दीख भी पडता है तब ऐसा समझता ठीक नहीं है की वह तेज कल्पनामय और भ्रमोत्पादन है। "योगः कर्मसु कौशलम्"। भगवानके इस वचन के अनुसार ही ये सब बातें होती रहती हैं। यही राज–योग है। ध्यान–योग की ही सहाय्यतासे राज–योग की स्थिति प्राप्त होती है। ध्यानका 'अभ्यास' करनेसे जीवनमें राजयोगसिद्धि होती है। इससे मानवका ध्येय भी साध्य होता है।

श्रीगजानन महाराज जैसे सद्गुरु सूक्ष्म रूपसे शिष्योंके सूक्ष्म रूपमें प्रवेश कर सकते हैं। और उसी अवस्थामें शुद्धि कर दे सकतें हैं। उसीमें फिर जब 'सोहम्' मंत्रकी भी सहाय्यता होती है, तब अधिक उपयुक्त कार्य होता है। शिष्य ध्यानमें सूक्ष्म जगत का अनुभव लेते चलता है। फिर यमनियमोंकी आवश्यकता ध्यानसाधन के बाद नहीं रहती है। महाराज किस प्रकार शिष्य को मदद देते हैं यह्बात निश्चित रीतिसे बताना अशक्य है क्योंकि शिष्यकी पिछली की हुई प्रगति बहुत प्रकार की होती है और हरेक व्यक्तिके साथ आप अपना मददका मार्ग अलग रीतीसे काममें ला सकते हैं।

सद्गुरु अनेक शरीर धारण करके एक ही समयमें पृथ्वीतलपर हमेशा रहते ही हैं। उनमेंसे किसी एकके साथ हमारा परिचय हुआ और आपकी भेंट और कृपा भी हुई तोभी शिष्यको अपना मार्ग अपनेही यत्न और अभ्यास के कष्ट उठाकर आक्रमण करना पडता है। पूर्वसंस्कारोंमें जो बुरे होते हैं, वे इस मार्गमें कठिनाइयां प्राप्त करते रहते ही हैं। इससे मन चलबिचल होता है और एकाग्रता साध्य करना कठिन जान पडता है। तोभी भक्ति, वैराग्य और अभ्याससे शिष्य कठिनाइयोंका नाश कर सकता है। इसमें सद्गुरुकी मदद मिलती रहती है। श्रीगजानन महाराजके शिष्योंका ऐसा ही अनुभव है। कोई आहिस्ते आहिस्ते, और कोई जलदीसे आगे बढते हैं। कोई एकदम कुद कर आगे बढते हैं। कोई एकेक पग बढाते चलते हैं। लेकिन आगे तो बढते हैं जरूर। साधारणतः प्रथम आत्मप्रचीति होती है। उस अनुभवके साथ गुरुकी कहीं हुई बातों की तुलना की जाती है। शास्त्र ग्रंथोंमें लिखीं हुई बातें भी उसे मिलतीं हुई मालूम होने लगती हैं। इन सर्वसाधारण अनुभवोंके साथ हरेक के अनुभव अलग अलग होते हैं जैसी जिसकी पूर्व तयारी हो।

श्रीगजानन महाराज मार्ग बताते हैं। शिष्यको कुछ अभ्यास करनेकी आज्ञा देते हैं। और ऐसा भी एक समय बता देते हैं की जिसके बाद फिर आपके सामने आनेकी जरूरत भी नही पडती है। स्वयं शिष्य ही आगे बढ सकता है। अब मनुष्यको और होना ही क्या ? ऐसे संत मिलते नहीं हैं। बारबार ढोंगधतूरे वालों को सुवर्ण दक्षणा देतेही रहना पडता है। और जीवनमें अंतिम स्थानपर पहुंचनेकी तो बातही नहीं होती है। श्रीगजानन महाराज

और साधारण 'गुरु' कहलाने वालोंमें यह तो बडा भारी फर्क है। आप तो झट कह देते हैं कि "आनंद" खुदमें है। मैं उसकी लूट करनेका मार्ग बताता हूं। अब तुम लूटतेही रहो।

इस प्रकार अंतर्दृष्टिसे दिखनेवाला तेज या तेजोमय रूपोंका प्रकाश अधिकाधिक स्पष्ट होते चलता है। और उसे अपनी प्रगति अपनेको मालूम होती चलती है। प्रथमतः यह अनुभव थोडी देर तक रहकर मिट जाता है। प्रगति के साथ यह ज्यादह समयतक हमारे सामने रहसकता है। कोई 'लोगोंको प्रकाशके साथ नादका भी अनुभव आता है। ये प्रकाशचित्र और नादध्वनि अनेक प्रकारके हैं। आपके शिष्योंके बारेमें 'सोहम्' मंत्रका ध्वनि प्रमुख है।

ये सब अनुभव स्वप्नके माफिक नहीं होते हैं। स्वप्नोंमें रूप ऐसे प्रकाशमय नहीं होतें हैं, और ध्वनि ऐसे नादमधुर नहीं होते है जैसे ध्यानमें होते हैं। क्यों कि ध्यानमें शिवसे मिलाप होता है और चैतन्य का अनुभव होता है। स्वप्नमें मायावृत 'जीव' से मिलाप होता है। 'जड' सृष्टि का ही सूक्ष्म अनुभव आता है। सूक्ष्म होकर भी चैतन्यमय सृष्टि का अनुभव जीवोंके स्वप्नोंमें नहीं प्राप्त होता है। ध्यानमें तीन चीजें एक होकर हमारा मन अधिक शांत होता है। वे तीन चीजें:—ध्यान, ध्यानविषय और ध्यानकी कृति। स्वप्नमें यह मिलाप न होते हुए मनको तो शांति कभी नहीं प्राप्त होती है। गाढ निद्रामें भी मन केवल 'सुन्न' होकर जागृति के समयमें 'होशियार' हो जाता है। लेकिन 'ध्यानमें' मन तो 'शांति' प्राप्त कर लेता है। 'जीव' और 'शिव' एक होतें हैं। अनुभव एकने लेना और अनुभव दूसरे बातका लेना ऐसी स्थिति नहीं रहती है।

'उपासना' जबतक हो सकती है, कि 'मनुष्य' और 'सच्चिदानंद' दो समझे जाते हैं। उनका मिलन होनेपर उपासक, उपासना और उपास्य दैवत तीनों एक हो जाते हैं। हमारा ध्येय यही है। मंत्रकी बात भी वैसी ही होती है। मंत्रकी देवता, मंत्र का जप और मंत्र जपनेवाला ये तीनों एक हो जाते हैं। और केवल आनंद—स्फूर्ति मात्र रह जाती हैं। यही मोक्ष है। और मोक्ष इसी जीवनमें प्राप्त हो सकता है। श्रीगजानन महाराज इस सत्यका अनुभव देते हैं।

ऐसी सद्गुरुकृपासे मनुष्य 'सहज समाधि' प्राप्त कर सकता है। सहज समाधि का अनुभव हमेशाके लिये अखंड प्राप्त होनेकी स्थिति यही सहजावस्था है। राजा जनक, श्रीराम और श्रीकृष्ण ऐसी सहजावस्था में रहनेवाले 'चैतन्य' हैं। और भी श्रीगजानन महाराज और दूसरे ऐसे ही मौजूद हैं। जो भाग्यसे ही हमें दर्शन देते हैं। ऐसे लोगों के हाथ पाँव कार्य करते रहते हैं। इंद्रियसमूह काम करता है। लेकिन खुदको इससे सुखदुःख नहीं होता है। 'आत्मप्रकाश' यही आपका जीवन है। सच्चिदानंद में ही आप अखंड हैं। पहले 'यत्न'करके शांति प्राप्त करनी पडती है। फिर 'सहज' भी वही कार्य होने लगता हैं लेकिन बारबार 'शांति' का अनुभव टूटता है। बादमें वही 'शांति' अखंड अनुभव देती रहती है।

श्रीगजाननमहाराजके ध्यानयोग की और एक विशेषता है। आप अपने शिष्यको ध्यानयोगकी शिक्षा देते हैं। तब उसको अंतिम सीढीतक ले जानेका बोझा अपनेही सिरपें लेते हैं। और इतना करके खुद को परमेश्वरका एक नम्र सेवक कहलाते हैं। रहनसहन तो बिलकुलही सीधी साधी रखतें हैं।

श्रीगजाननमहाराज सबसे कहते हैं:—भाई बहनों! मैं तो साधनपथका एक साधारण यात्री हूं। और अपने गुरुका एक अति नम्र शिष्य हूं। आपके माफिक मैं भी ब्रह्मविद्यासरस्वतीका एक विद्यार्थि हूं। सद्गुरुकृपासे मुझे जो कोई अनुभव आयें हैं वेही मैं तुम्हें कह देता हूं। अज्ञानके अंधकारमें 'सोहम्' की ज्योति प्रकट होने दो। ध्यान का अभ्यास करके आत्मज्ञान प्रकट कर लों। जिसे तुम्हारा जागतिक जीवन आनंदपूर्ण हो जाएगा। तुम्हारे अंदर आध्यात्मिक शक्तियां उत्पन्न होकर कोईभी पातकी तुम्हारे विरुद्ध कार्य नहीं कर सकेगा। ध्यान जब वह तीव्रतासे एकाग्रचित्त होकर करेगा तब शत्रुमित्र एकसरीखे होकर तुमसे भाईबहनोंके माफिक व्यवहार करने लगेंगे। फिर तुम अपना साधारण, सामाजिक ऐहिक जीवन बिताते रहो। आध्यात्मिक सिद्धीका अर्थ यही है। और जागतिक जीवन और अध्यात्म-साधन एक करनेका रास्ता है, संसार ओर संन्यास एक ही हो जाता है। दोनों में हमेशाके लिये आनंद प्राप्त होते चलेगा। सद्गुरु कृपा, ईश्वरकृपा या आत्मकृपा यही है। इस अध्यात्मसे मन कच्चा नहीं रहता

है। संघर्षमय कालमें कठिन मामले में भी मन शांत रखकर किसप्रकार लढना यही बात हम सीखते हैं। इस शास्त्र की निंदा करनेके पहले अनुभव ले लो अनुभवके बाद उसको अच्छा बुरा कहो।"

श्रीगजानन महाराजके पास शिष्योंका समूह कभी बैठा हुआ नहीं मिलेगा। पुष्पमाला, प्रसाद, पूजा पुराण, कथा और वेदांत चर्चा अवडंबरके साथ चली हुई कभी नहीं मिलेगी। "बच्चा होगा, नौकरी मिलेगी, धनी बनोगे, बीमारी हट जायगी!" इत्यादि आशिर्वाद आपसे कभी नहीं मिलते हुए दिखेंगे। पूर्व कर्मोंके अनुसार जो होनेवाला है वह आप जानतेही हैं। फिर ईश्वरी योजनाके विरुद्ध भविष्य वाणी संतोंके मुखसे कभी नहीं निकलती है। इस प्रकार भक्तोंमें लोभ बढानेकी क्रिया आपसे कभी नहीं होती है। साधकोंको अध्यात्मपथपर बढादेना इतनाही आपका कार्य है। शिष्यका काम है कि गुरुकी आज्ञानुसार ध्यानका अभ्यास करना और जीवितमें शांति बढाते चलना! लेकिन श्रीगजानन महाराज भविष्य बतानेवालों के भी विरोधमें कभी कुछ बोलते नहीं है।

चार दो लोगोंसे अधिक संख्या आपके पास बैठी हुई कभी कहींभी मिलती नहीं है। इससे बहुत लोग समझते हैं कि, आप तो बिलकुल साधारण गृहस्थ हैं। साधु नहीं हैं। श्रीगजानन महाराज भी बोलते हैं। "आत्मदर्शनमार्ग बताने वालेकोही तुम्हें गुरु कहलाना चाहिये। चमत्कार देखकर और सुनकर किसी आदमीपर श्रद्धा रखना भूल है! इसमें किसी साधारण इच्छाका फल प्राप्त होगा, परंतु मुक्ति मार्ग नहीं खुला होगा। मेरा तो पक्का निश्चय है कि, कोई भी साधु किसीका भी भाग्य नहीं बदल सकता है। जो कुछ ईश्वरी न्यायसे होनेवाला है वही होगा। जिसने कभी पुण्य कर्म किया हुआ मालूम नहीं है ऐसा आदमी लक्ष्मीके साथ खेलता हुआ भी दीख पडता है। यही पूर्व कर्मका फल है। जब यह बात सच है तब किसी संत कहलानेवालेने किसीका किस्मत बदल देनेकी बातही करना व्यर्थ है। अज्ञानके अंधकार पथमें प्रकाश देनेके लिये 'सोहम्' मंत्रका उज्वल दीप ले लो। फिर भवसागर पार करो। और वैराग्यसे अपना कार्य करते रहो। इससे तुम अपने 'धाम' तक पहुँचोगे। वहां सच्चिदानंद प्राप्ति होगी।

'अनंत' के पास पहुंचनेका रास्ता मैं बताता हूं। और तुमको उस ब्रह्मपदका स्वरूप समझ आएगा। ध्यानयोगका अभ्यास तीव्रतासे–दृढतासे करते रहो। तुम्हे कोई भी पापी तकलीफ नही दे सकता है। मैं तुमको मुझपर श्रद्धा रखनेका उपदेश नहीं करता हूँ। मैं कहता हूं 'सोहम्' पर श्रद्धा रखो, और आत्मानुभव प्राप्त कर लेलो। दृढताके साथ ध्यान करते रहो। 'सब जगत् ब्रह्ममय है' इस बातका तुम्हें अनुभव होगा। संसारमें रहकर तुम उससे अलिप्त रहोगे। सुखदुःखोंके द्वंद्वोंके परे रहोगे। और तुम्हारी शांति कभी दूर नही होगी। फिर देहके रोग और कष्ट चले जाएँगे। ब्रह्म जाननेके बाद आदमी 'साधक' नहीं रहता है। सर्वसाक्षी भगवान्के सद्भक्त होकर आनंदमय हो जाओगे। भगवानके साथ मिलाप होनेपरही सच्ची पूजा हो सकती है।"

नाथपंथके बहुतेरे संत गुप्त रीतीसे रह कर कार्य करना ही पसंद करते हैं। श्रीगजानन महाराज तो उनमेंसे एक प्रमुख हैं। तब आप भी इतने साल तक एक जगहमें रहकर लोगोंको मालूम नहीं होता है यही बात ठीक मालूम पडती है। बीस साल अकोलामें आपने बिताये, लेकिन मालूम हुए केवल दो तीन आदमियोंको ही। बंबईमे सोलाह सालके ऊपर रहके भी बिलकुल अप्रसिद्ध रहे हैं। और बीस सालके ऊपर श्रीक्षेत्र नासिकमें होकर किसीको पता नही है, कि आप का निवास कहाँ है। अभी कोई दिन हुए आपकी कृपा हम लोगोंके अनुभवमें आने लगी है। और किताब प्रसिद्ध करनेकी अनुज्ञा आप देते है। युग प्रवर्तन होता है और भगवानके अवतारके समय ऐसे संत भी प्रकट होते हैं, और अवतारके साथ अपने अपने कार्य का बोझ उठाते हैं। तो भी आपकी रहनसहन इतनी सीधीसाधी है कि, आप सद्गुरुपद प्राप्त किये हुए संत हैं यह बात कहनी पडती है। अहंभावना का तो आपमे कभी छोटासा भी अंश दीख पडता नहीं है।

ऐसे संत कम हैं, और हैं, तो भी मालूम नही होने देते हैं। अब आपकी कृपासे आपके शिष्योंके अनुभव जाहीर होते हैं। पाठक ध्यान देकर पढें और लाभ उठावें। महाराष्ट्रके और भारतभूमीके जितने संत हो गये हैं, उनका और श्रीगजानन महाराज का मार्ग एकही है यह बात इन अनुभवोसें स्पष्ट होती है। इस बातके समर्थनके लिये कोई पुरातनें संतों के अनुभव यहां दिये हैं:–

श्रीनारायणोपनिषद्:—भूमध्यमें ध्यानसमय एक अग्निशिखा दीखती है। वह ऊपर जाती हुई दीख पडती है। और श्यामला मेघोंमें बिजली के जैसी चमकती है। वह बिलकुल छोटीसी, चमकीली और सुवर्ण रंगकी होती है। परमात्मा इसीमें है।

श्वेताश्वतरोपनिषद:—वह सर्वशक्तिमान् महापुरुष सबका कर्ता है। वही सबका मालिक है। और कभी न बुझनेवाली प्रकाशशिखा है।

संत कबीर:—जबतक आत्माका अंदरका उजेला नहीं दिखलाई पडता है तबतक सब बातें फजूल हैं। यह उजेला दिनरात, तेजस्वी मुक्ताफलके समान दीख पडता है। इसज्योति को न होना तेल या बत्ती और न कभी वह बुझती है। जागते सोते वह वहांही है। किताबतो बहुत घरोंमें पढतें हैं, लेकिन यह दिव्य प्रकाशका दर्शन एकको भी नहीं हुआ है। चारों और सफेद और बीचमें नीलवर्ण ऐसी हमारी देवता है।

ज्ञानेश्वर:—आकाशगर्भके समान, चमकदार, स्वच्छ, शांत नीलवर्ण दीख पडता है। सब एक होगया है। जहातहां अमर्याद नीलवर्ण गहरा भरा हुआ दिखता है। केवल सद्गुरुकृपा प्राप्त करनेवालोंकोही यह दिख पडता है। मेरे सद्गुरु श्रीनिवृत्तिनाथ की कृपासे मुझे यह मालूम होता है। हम और प्रकाश एकही होनेसे अब हम देखनेवालेभी नहीं रहे हैं। सर्वांगसुंदर चमकनेवाली मोंतियोंकी लडियाँ और उनके चारों ओर प्रकाश दीखनेवालेको सच बात–सत्य-का प्रत्यय होता है। शृंखलाएं छूट जातीं है। सब ओर शांति बहती है। उसका वर्णन नहीं हो सकता है। वह आनंद शब्दातीत है।

एकनाथ:—ये सब सूक्ष्म प्रकाश ब्रह्मके हैं। ब्रह्मही वैसा प्रकट होता है। नजर उस पर गड जानी चाहिये। पक्की बैठ जानी चाहिये। भूमध्यमें जब आंख मिल जाती हैं तब यह बात सिद्ध होती है। प्रकाश स्थिर हो जाता है। पहलेपहले जो अंधेरा दीख पडता है वह अष्टधा प्रकृति काही है। बत्ती होकर धुंआँ नहीं ह ऐसा ब्रह्मका प्रकाश या ज्योति बादमें दीख पडती है। इसी ज्योतीकी आरती सद्गुरुके सामने करनी पडती है। इसमें प्रेम और आनंद होता है। फिर द्वंद्वभेद नहीं रहते हैं। सब वृत्तियां मिट जाती हैं। श्रीजनार्दनस्वामीकी कृपासे एकनाथको वह अनुभव आया है। एकनाथने इस दिव्य तेजसें मिलन पाया है।

सोहिरोबानाथः—यह दीप शिखा हमेशाके लिये जलती रहती है।

जनार्दनस्वामीः—हरतरहके प्रकाशित आकार दीखतें हैं। रत्नोंके माफिक उनका तेज है। ये सब सच्चिदानंदके रूप हैं। चंद्रभी दिखता है।

मेरुस्वामीः—सूर्य स्पष्ट दीखता है। न दिखनेवाली वस्तुएं दिखती हैं। सब परमात्माके रूप हैं। नीलवर्ण मयूर पंख फैलाकर नाचते हुए दीखतें हैं।

निवृत्तिः—प्रकाशमय आत्मा सर्वत्र रहता है। वही गुरुकृपासे दीखता है।

महीपतिः—गुरुमंत्र सुनकर आखोंमें उजेला भर आया है। पंचप्राण और मन एक होकर आनंद भरा है।

हैबतीः—दिव्य चक्षु अंतरेंद्रिय हैं। जिसको इसका अनुभव आता है वही 'सत्य' देख सकता है। नीलवर्ण जगमग करता हुआ प्रकाश दीखता है। शिखाभी दीखती है। यही ब्रह्मबीज है। यह प्राप्त होने तक मनःशांति नहीं प्राप्त हो सकता है। खाली पढनेसे यह नहीं होता है।

जनाबाईः—नीलवर्णमें आत्मा जमकर बैठा है। औरभी रंगके प्रकाश दीखतें हैं।

तुकारामः—सबका उगम यही है। छोटासा तेजस्वी गोलाकार भ्रूमध्यमें दीखता है। सब दुनिया उसमें हैं। देव उसमें हैं। यही शुद्ध परमात्मा हरएकको हमेशा देखना चाहिये।

टिकमदासः—हे संतजन! सद्गुरूके घरमें कितना आनंद है। बादल न होकर बिजली चमकती रहतीं है। गुलाल और मुक्ताफलोंकीं वर्षा होती है।

रामदासः—बिजलीके समान सुवर्ण रेखाएँ चमकती हैं। तेजोमय शिखाएँ दीखती हैं। यही सद्गुरु कृपाका मुख्य चिन्ह है। जन—वनोमें वह हमेश मौजूद है। निर्जनों में भी है। वह अंदर बाहर है। यह अंतःप्रकाश देखनेपर शुद्ध आनंद मालूम होता है। श्रीगुरु कृपाका यह परिणाम है।

ॐ

तृतीय खंड

श्रीगजानन महाराजका फुटकर चरित्र-लेख

(१) शुभधाम और मातापिता:– नाथपंथमें सुप्रसिद्ध चौरंगी-नाथजीका यह आधुनिक अवतार, सच पूछा जाय तो स्वयंभूही है। शरीर केवल इस रूपमें आज धारण किया है। इस कारणसे मातापितरोंके नाम बताना है। परमेश्वरी लीला है। इस देहका नाम गजानन मुरलीधर गुप्ते। पिताजी मुरलीधर बाजीराव कुलाबा जिले में 'पेण' नामक ग्रामक निवासी थे। और वंश परंपरासे इसी ग्रामके और समीपके दूसरे चारपांच ग्रामोंके मालगुजार थे। १८५१ ई० के अंदाजमें मालगुजारी उत्पन्न बिलकुल कम होनेसे आप वऱ्हाडमें बुलडाणा जिलेके मलकापूर ग्राममें आकर अंग्रेजी रियासतके साधारण नौकर बन गये। तो भी तनखा इतना कम मालूम हुआ। घरमें आनेवाला नौकरीका पैसा भी कम ही होने लगा। फिर आप कानून का अभ्यास कर के वकालत करने लगे।

(२) परिवार:--वकालात वरार में यवतमहाल ग्राममें शुरू की। उस वक्त वहां और दो तीनही वकील थे। आपकी प्रॅक्टिस अच्छी ढंगसे चलने लगी। श्रीगजानन महाराजकी मातुश्रीका शुभनाम 'राजूबाई'; श्रीगजानन महाराज पांच भाईयों में सबसे छोटे। चारों भाई आपसे बडे। नारायण रामचंद्र, केशव और लक्ष्मण नामक ये चारभाई थे।

सबसे बडे नारायणरावका जन्म मलकापुरमें १८६८ इ. में हुआ। बचपनसेही नारायणराव चालचलनमें धार्मिक और बुद्धिमान मालूम होने लगे। अमरावतीमें उसका मराठी शिक्षण हुआ। इसको शिष्यवृत्ति थी। आज तो आप "BEE" "मधुमख्खी" नामसे महाराष्ट्रके प्रसिद्ध कवि समझे जाते है। श्री गजाननमहाराजके माफिक आपभी प्रसिद्धिपराङ्मुख हैं। "पुष्पांजलि" नामक आपका कवितासंग्रह विख्यात है। मनकी संपूर्ण

श्री सद्गुरुनाथ श्री गजानन महाराज

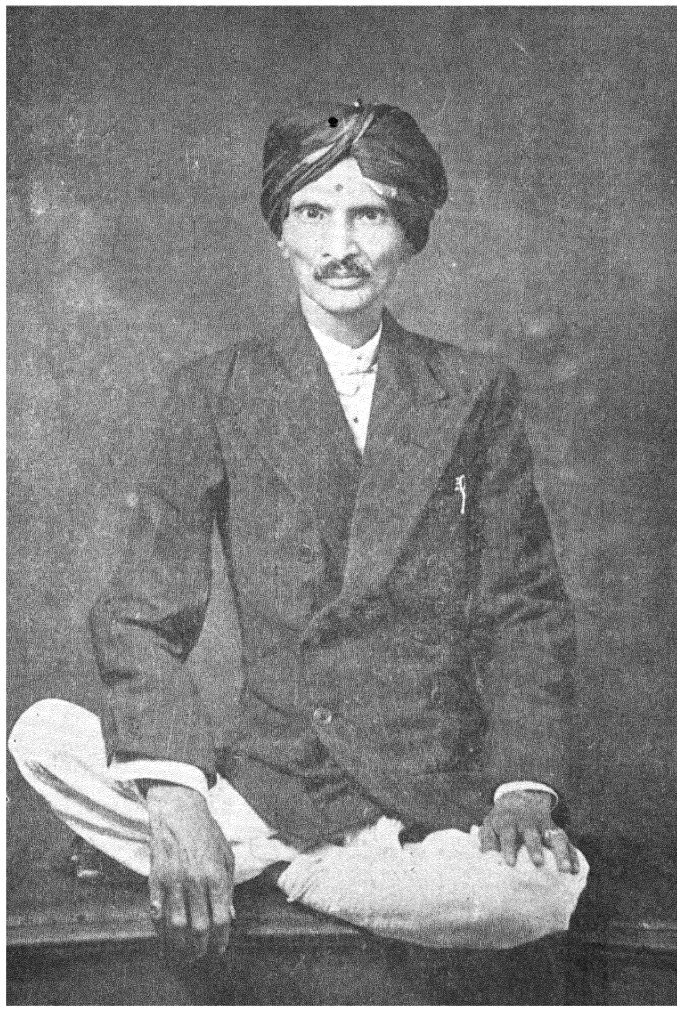

जन्मस्थान : बबतमाळ (वऱ्हाड)

जन्मतिथि :
श्रावण कृष्ण ८, शके १८१४

समाधि :
आश्विन शुक्ल ३, शके १८६८

शुद्धावस्थामें जो सौंदर्यके आनंदमय अनुभव आते हैं वे आपके काव्योंमें प्रकट हुए हैं। औदुंबर वृक्षके पुष्पोंके माफिक ये दोनो भाई संसारकी नजरसे दूर, अदृश्य रहनाही अधिक पसंद करते हैं।

नारायणराव भी प्रथमसे अखीरतक सरकारी नौकरीमें थे। अकोला और मूर्तिझापूरमें आप नायब तहसिलदार थे। अकोलामें आकर रिटायर होगये। रामभाऊ राली ब्रदर्समें थे। केशवरावको चचाने दत्तक लिया। लक्ष्मणरावभी अकोलेमें नौकरी करने लगे।

श्रीगजानन सबसे छोटे। और बचपनमें तीसरी सालकी उमरमें माताकी बीमारीमें पांव अधूरे होगये। कोई भी डाक्टरी इलाज काम नहीं दे सका। जीवनमें आप पाँवसे अधूरेही रहे हैं।

(३) **मातापिताका अंतः**—इससे मातापिताको दुःख तो जरूर हुआ। लेकिन ईश्वरी सूत्रसे दोनो भी बादमें कोई थोडे ही दिनोंमें बीमार होकर एक दो महिनोंका समय बीच छोडकर स्वर्गवासी हुए। मरते समय माताजीने गजाननको अपनी बहन 'बालूबाई' को सुपूर्द किया। और बोलीः—

"मैं तो संसार छोडकर चली। गजानन तो पांवसे अधूरा है तू देखतीही है। अब तूही उसकी मां बन जा। उसको मेरा ख्यालभी न आएगा ऐसा उसका सँभाल कर। कभी कोई संत मिले तो उसके चरणोंमें गजाननको सौंप दे। सत्संग और संतकृपासे उसका जीवन आनंदमय बनेगा।"

(४) **बालूबाईः**—यह मौंसी बचपनमेंही वैधव्य प्राप्तकर, कोई समीप वाला रिश्तेदार न होनेसे बहनके पास आकर रही थी। इस घरमेंतो सबको वह प्रिय हो गई थी। गजाननका उसने बराबर पालन किया। और समय आतेही अपनी बहन की अनंतकालकी इच्छा उसने पूरी की। माता पिताकी मृत्यूसे इस घरकी बडी हानी हुई और अब सब बोझ बडे भाई नारायणराव और मौंसी 'बालुबाई' इनकेही कंधेपर आ पडा। ईश्वरकी कृपासे तीन बहनोंकी शादियां होकर वे अपने घर चलीं गयीं। इ. स. १९०१ में गजाननका मौंजी बंधनभी होगया।

(५) **संतदर्शनः**—इस समय दूसरे भाई रामभाऊ चिखली ग्राममें राली ब्रदर्स कंपनीमें काम करते थे। आपने बडे भाईको चिठ्ठी लिखी कि

सब लोग चिखली आकार समीपवाले जंगलीस्थानमें रहनेवाले संत नारायणसरस्वतीका दर्शन लेंगे। दो महिनोंकी छुटी लेकर नारायणरावभी झट् सबलोगोंके साथ वहां पहुंचे। इनमे गजाननभी था। जो इस समय दस सालकी उम्रका था। बुलडाणा जिलेमें चिखलीके पास छः मीलकी दूरीपर अंत्री नामक ग्राममे वह संतमूर्ति रहती थी। यहांही 'जांबोरी' नामक ग्रामके पास चारों ओर जंगल ओर पर्वत राजीमें गढीहुई एक पुरानी समाधि और गुंफाएं हैं। श्रीनारायण सरस्वती यहांही रहते थे ओर पंजाब, दिल्ली, ओर बंगाल जेसे दूरदूर प्रांतोसे लोग आपक शुभचरणोंका दर्शन लेनेकेलिये आते थे।

(६) श्रीनारायण सरस्वती :—वह जगह बडी रमणीय थी। बीचमें एक पुरानी समाधि थी। उसके चारो ओर गुफांए और नीचे कोठरियां है। दसपंधरह लोगोंका रहने का इंतजाम वहां हो सकता था। नजदीक एक मीठे पानीकी बावडी भी थी। बहुत लोग वहां संध्यावंदन और आहार विहार भी करते थे। समाधीके पासही एक चबुत्रेपर बैठक लगाकर श्रीनारायण सरस्वती जी हमेशा बैठते थे।

(७) जांबोर में की पूजापद्धति :—सुबह को काकड आरती होती थी। मध्यान्हमें पूजा ओर आरती होती थी। शामको भी अर्चन ओर बादमें भजन होता था। श्रीगजानन महाराज ओर साथके सबलोग वहां पहुंचतेही श्रीनारायण सरस्वतीके दर्शनके लिये गये। और महाराजने उन सबके लिये वहांकी एक कोठी खाली कर दी। फिर मौंसीने अकेले गजाननको लेकर महाराजका दर्शन कीया। गजाननने तों झट साधुमहाराजके पाँवही पकडलिये।

मौंसीनें साधुमहाराजकी प्रार्थना की। "आप इस अधूरे बच्चेपर कृपा कीजिये। उसकी फिकिर करनेके लिये मा बाप तो हैही नहीं। इसका आगे कैसा होगा? सिवा परमात्माके उसे दूसरे किसीका आधार नहीं है। आप ईश्वर प्राप्त किये हुए महात्मा हैं। ईश्वरकी सब शक्तियां आपमें हैं। कृपा करके इस बच्चेको अपने कृपा छत्रका आश्रय दीजिये। इसकी माँ, मेरी बहन शुद्ध मनकी उदार चरिता साध्वी थीं। मरनेके समय उसने वह बच्चा मेरे सुपूर्द किया। और कि महात्माके चरणोंपर इसको सौंप देनेकी इच्छा प्रकट की।

और बोली, कोई संतके आसरे अगर बच्चेका जीवन सुखी नही होगा। तो कैसे अब जो समय आया है वह उसकी शुभेच्छासे ही आया है।"

(८) श्रीनारायण सरस्वतीका शुभाशिर्वादः—महाराज तो यह बात सुनकर प्रसन्न होते दीख पडे। आप बोले "मांईजी आप दोनों बहनोंनें पीछले जन्ममें योगाभ्यास किया है। और यह प्रसंग पूर्व पुण्यसे ही आया है। गजानन पूर्व जन्मका योगी है। कई सालके बाद वह बडाःसाधु हो कर बहुत साधकोंको अध्यात्म मार्ग में सहाय्यता देगा। उसकी आंखोंकी पुतलियोंसे मुझें मालूम होता है कि, वह नाथपंथका योगी है। इसके लिये कुछ भी फिक्र मत करो। लेकिन तुमको इसकी कीर्ति खुद सुननेका मौका नहीं आनेवाला है। थोडासा अनुभव आते ही तुमको समाधान प्राप्त हो जाएगा। महाराजनें बादमें मौंसीको "मुक्ताबाई" का अवतार बताया था।

बादमें सबको रोटीपानी करनेका हुकुम हुआ। और वह होनेके बाद सब सो गये। प्रातःकाल चार बजे सब लोग आरतीके लिये तय्यार होनेवाले थे। वैसा सबने किया भी। खाली गजानन जाते समयमें आसन जमाकर अपनी जगहमें बैठा रहा था। वैसा ही वे लोग लौट आये तबतक बैठा ही रहा। जाग्रति और निद्राके बीच स्थितिमें वह बिस्तरेपर ही बैठा रहा था। आंख खुले ही थे। और इस अवसरमें गजाननने एक दृश्य देखा।

(९) आध्यात्मिक दृष्टांतः—अंधेरेमें गजाननको ऐसा अनुभव आया की, वह कहीं चला जा रहा है। बीचबीचमें सामने एक तारा चमक रहा था और अदृश्य होता था। पानी भी जैसा गिरने लगा। मेघगर्जनाएं भी सुनाई देती थीं। बिजलीकी चमक भी समय समयपर दीख पडती थी। रास्ता सर्पोंसे भरा हुआ था। सर्प काले, सफेद, और किस्म किस्मके चिन्होंवाले थे। कोई छोटे तो कोई मोटे थे। गजाननके पांवको और कमरको उन्हें वेष्टित कर दिया। सबसे मोटा तो आकर गलेमें लपटा और सिरमें फणा धर बैठा। यह सब अनुभव लेते गजानन चलता ही था। चलते चलते आपका शरीर बदल गया। वह शक्तिमान बनके सर्पोंको हटाते चला। आनंद और भीतिका संमिश्र अनुभव लेते आगे बढा। कितनी दूरीतक चल पडा इसका पता नहीं था। फिर शरीर हलका बनते चला तो भी सर्प तो वैसे ही थे।

लेकिन अंधेरा चला गया और चारों ओर उजेला फैला उठा। इस उजेलेमें सामनेही एक सुंदर समाधि दीखने लगी। जिसकी सुंदर सुवासिक फूलोंसे पूजा की हुई थी। एक बाजूमें घी की बत्ती और दूसरे बाजू कपूरकी ज्योति जलती थीं। पासमें एक देवता खडी थी। जिसके कमरमें सोनेका पट्टा और नंगी तलवार थी। गजानन उसके चरणोंपर नम्र होनेके विचारमें था। जबही वह देवता अदृश्य हो गयी थी। गजानन तो आश्चर्य और आनंदसे मग्न हो गया। समाधी किसकी है, और जिसकी है उसका दर्शन कैसा होगा, इन प्रश्नोंका विचार गजानन करने लगा। उसी क्षणमें समाधिको तोडकर एक दिव्य सत्पुरुष बाहर आगया। एकदम आवाज भी हो गया।

"आदेश ॐ हंसः सोऽहम् ब्रह्म"

गजाननको तो ऐसाभी मालूम होने लगा कि वही आवाज अपने शरीरके रोमरोमोंसे निकल रहा है। गजाननने देखा उस दिव्य पुरुषको लंबी दाढी है। गेरुएं कपडे हैं। गलेमें रुद्राक्षमालाएं हैं। और शिरपेर जटा मुकुट हैं। ऐसे दिव्य–भव्य पुरुषको देखकर गजाननकी आंखे भर आयीं। उनसे उस पुरुषका तेज सहन करना मुष्किल होगया। लेकिन उस मंत्रका उच्चार जैसा उस महापुरुषके मुखसे होता था वैसाही गजाननके मुखसे आपहीसे होते चला। फिर उस महापुरुषने सौम्य स्वरूप धारण किया। "मच्छिंदर आदेश!" ऐसी एक आकाशवाणी होगयी। और सब दृश्य मिट गया।

(१०) दृष्टांत के बादः––बादमें गजानन पूरा होशमें आया और बिस्तरेपर उठबैठा। स्वेदसे उसका शरीर और कपडे गीले हो गये थे। और शरीरसे चारों और सुगंध फैलती थी। वह अपनी। आंखें मलने लगा। सूरजका उजेला चारों ओर फैला गया था तो भी वह अंधासाही रहा। इससे उसको बहुत डर उत्पन्न हुई। स्वेदसे गी लापन तो इतना प्राप्त हुआ था कि, दूसरोंको मालूम हुआ कि, गजाननके पांवतले जलका हंडा था वही फुट कर पानी वहआ चला है। गजाननको डरा हुआ देख कर मौसीनें फिरसे उसको उठाया और झट स्वामी महाराजके पास ले गयी। महाराजने तो उन्हें देखते ही मौसी से पूछा। "क्यौं? अब तो मालूम

हुआ ? वह सच्चा योगी है ! उसके बारेको तुमने चिंता नही करनी चाहिये।" फिर स्वामीजीने गजाननको उसी मंत्रका उच्चारण करने लगाया जो उसने सुना था। वह मंत्र तो गजाननके रोमरोमोंसे उच्चारित होता ही था। लेकिन अगले पीछले शब्द मिट गये थे और खाली 'सोऽहम' रहा था। इतना ही उच्चार गजाननने किया। स्वामीजीनें फिरसे कहा। "इतनी छोटीसी उमरमें तुम्हें देवीका और मच्छिंदर नाथजीका भी दर्शन हो गया।"

(११) भविष्यवाणीः—गजाननने फिर सब दृष्टांत स्वामीजीको सुनाया स्वामीजीने बहुत आनंद प्रदर्शित किया। गजाननको आपने दृढालिंगन देकर उसका चुंबन लिया। और शुभाशीर्वाद देकर आहिस्ते आहिस्ते भविष्यवाणी प्रकट की। "हे गजानन ! तूं संसारमे कीर्तिशाली होगा। बहुतेरे अध्यात्म मार्ग चलनेवाले साधकोको तुम्हारी सहाय्यता होगी। तुझें हमेशा आनंद और शांति का लाभ होते रहेगा। प्राणोंमें मैं तुझें हमेशा प्रकट होता हुआ मिलूँगा।" बादमें सबजनोंने स्वयंपाक और भोजन किया।

(१२) व्याघ्रका समाधि-दर्शनः—एक दिन जब गजाननके घरके सब लोग महाराजका दर्शन लेने गये, तब महाराज बोलेः—"रातको हररोज एक शेर आकर समाधीका दर्शन लेनेके लिये अंदर आता है। इसलिए किसीको भी ग्यारह बजेके बाद जागते रहना नहीं चाहिये। शायद उसे देखनेसे बहुत भीति उत्पन्न होगी।" उसी रातको सबतो सोगये, लेकिन गजानन खाली बिस्तरेपर पडा रहा था। जप चला ही था और मन आनंदमग्न था। समयपर शेर आकर उसने समाधीका और स्वामीजीका दर्शन करके वह अपने रास्तेसे चल पडा। महाराज सहज जैसे गजाननकी तरफ देख कर बोलेः—"हे पुत्र ! अबतक तूं जागता ही है ? तूझें डर नहीं पैदा हुई ?" गजानन बोला "जी हां ! मैं तो जागता ही हूं ! सद्गुरु कृपासे मुझे बिलकुल डरका तो स्पर्शही नही हुआ !" दूसरे दिन सबको व्याघ्रकी यह बात मालूम पडी। सब फिर बोलेः—"गजानन जागता ही था तो हमें क्यों नहीं उठाया ?" स्वामीजीने उत्तर किया "क्यों कि तुम लोग तो जरूर डर जाते।"

(१३) नारायण सरस्वतीजीका गुरुगृह, बोरगांवः—स्वामीजीके गुरूकी वार्षिकोत्सव तिथि थोडे ही दिनोंके बाद आगयी।

बैलगाडीसे सात आठ दिनमें उस वक्त अंत्रीसे बोरगांव जाते थे। 'बाबामगनका बोरगांव' इस संज्ञासे वह ग्राम प्रसिद्ध है। निज़ाम राजमें औरंगाबादके उत्तरी जंगलमें चालीस भीलका रास्ता कष्टसे काटना पडता था। जब वहां पहुंच सकते थे। अंदाज सौ दोसौ गाडियोंमें और दो तीनसौ पैदल लोगोंका समूह स्वामीजीके साथ चला। दर्शन वगैरे होकर उत्सवसमारंभके लिये पंधरह दिन तक वहां ही मुकाम पडा। हररोज पूजाअर्चा, भजन और दिंडिवोंका जलसा होता रहा। बहुत लोग आकर भोजन भी कर जाते थे।

(१४) पवित्र सद्गुरु संदेश—बोरगांवमें एक नदीकिनारेपरका स्थान बताकर स्वामीजी बोलेः—"यहां हमारे गुरु ध्यान करने बैठते थे हमारा नाम परमानंद था। और गुरूका नाम नारायण सरस्वती था। जब आपका समाधि–समय आया, तब मुझे गुरुपरंपरा चलानेका आदेश दिया और अपना ही नाम लेनेको आज्ञा हुई। जिसका मन खुला नहीं होगा और जिसका अपने मनपर अधिकार नही होगा उसको उपदेश देनेका नहीं ऐसा भी आदेश दे दिया। उपदेश देनेके बाद भी कोई इस आज्ञाके विरोधमें वर्ताव करेगा उसके पाससे अपनी शक्तियाँ वापस लेनी चाहिये ऐसा भी हुकुम होगया। बादमें समाधि लेली।"

(१५) गुंडोंसे सामनाः—सद्गुरूके शुभतिथीका उत्सव होजानेके बाद महाराज सबलोगोंके साथ बोरगावसे अंत्री लौट आये। रास्तेमें जंगलके पास एक गुंडोंका मुकाम था। वे आपसमें हंसते खेलते भोजनकर रहे थे। उनके पास और महाराजके लोगोंके पास भी कोई बंदुकें थी। लोगोंनें गुंडों-पर बंदूक चलानेकी आज्ञा मांगनेपर स्वामीजीने इन्कार किया। अतः सब लोग अपने रास्तेसे चुपचाप चलने लगे। एक मीलकी दूरीपर जानेके बाद स्वामीजीके लोगोनें गोलाबारीके आवाज करदिये। जिससे गुंडोंको डर पैदा होकर वे इन लोगोंको सतानेका विचार नहीं कर सके।

(१६) श्रीनारायण सरस्वतीके बारेमें शिष्योंके अनुभवः—परमानंदजी (जो पीछेसे नारायण सरस्वतीजीकेही नामसे प्रसिद्ध हुए) बडे योगशक्तिमान् संत थे। गजानन और दूसरे शिष्योंने आपके बहुतसे चमत्कार देखें है। अपनी छबी आप कभी नहीं निकालने देते थे। अकोलेके ड्रॉईंग

मास्टर श्री० पेंढारकरने बहुत यत्न किये थे। लेकिन छबी तो कभी ठीक ठीक उतारी नहीं गयी। कुछ सौ यत्नोंके बाद श्री० पेंढारकरने बहुत दीन भावसे प्रार्थना करनेपर, एक दफे छबी उतारी गयी। यह बात १९४० इ० के जुलाई महिनेमें श्री० पेंढारकरकी पत्नीने श्रीगजानन महाराजको बताई थी। वह बोली कि, दूर रहनेवालोंको छबीकी सहाय्यता होगी ऐसा बहुत शिष्योंने कहनेके बाद स्वामीजीने यह अनुज्ञा दी दियी थी।

शिष्यको कभी स्वामीजीके दर्शनकी सच्ची और तीव्र इच्छा हुई, तो आप क्षणार्धमें उसके सामने कहीं भी खडे हो सकते थे और पूछते थे कि मुझे क्यों बुलाया ? उनके स्थानपर जो हजारों लोग जाते थे उनमेंसे अनेक लोगोंको आप अनेक जगहोंमें और अनेक रूपोंमें दीखते थे। फिर भी कहते थे कि ऐसे चमत्कार योगियोंके बारेमें उनकी इच्छा न होकर भी दीख पडते हैं। और चमत्कारोंपर निर्भर रहना भूल है ऐसा भी कहते थे। नव्हेंबर १९१० ई० में कार्तिक वद्य द्वादशीको स्वामीजी समाधिस्थ हो गये। पैठणसे चालीस मील दूरीपर "दैथाना" ग्राममें गोदातटाकपर स्वामीजीका जन्मस्थान है। बचपनमें ही पिताजी गुम गये थे। जिनका धंदा सराफका था। माँने ही पालनपोषण और मौंजीबंधन किया था। बारहवे सालकी उमरमें माँभी गुजरजानेपर आप माताकी अस्थि नासिकमें रामकुंडमें डालनेके लिये आये और वहांसे कभी घर न लौटकर पंजाब चल पडे। वहां गुरुमुखी भाषा पढी और बहुत कालतक रहे।

ये सब बातें स्वामीजीके एक बहुत वयस्क शिष्यने बतायीं हैं। और जीवनमें कितने सालतक कहां कहां रहे उसकाभी हिसाब बताया। जिस मालूम होता है कि स्वामीजी कमसे कम एक सौ चौदाह साल तो जीवित थेही। १२ सालतक दहियानेमें। १६ साल पंजाबमें। जिसमे से कोई साल दक्षिण हैदराबादमें राजा रायचंद दफ्तरदार के साथ बिताये। ६ साल चारों धामकी तीर्थ-यात्रा की। ७ साल करतवाडीमें। ६ महिने नेतानशामें। ६ साल जाफराबादमें। ६ साल वरूडमें। ४ साल सालेगांव सावंगी। ७ साल कसबा खेड। १ साल अमासरी। ७ साल जलगांव। १२ साल पळसखेड।

१३ साल बेराला। ३॥ साल अंबासी। और १३ साल अंत्रीमें निवास करते थे। कुल ११४ साल होते हैं।

(१७) गजानन फिरसे अकोलेमें :—स्वामीजीकी अनुज्ञा लेकर सब लोगोंके साथ गजानन पहले चिखलीमें चार दिन रह कर अकोला लौट आया। वहां मराठी चार वर्गका शिक्षण प्राप्त किया। फिर बडे भाई वाशीम गये। साथमें गजानन भी था। लेकिन शिक्षणका प्रबंध होकर भी वहां ज्यादा शिक्षण नहीं हुआ। उस बखत बहुतसे संत वाशीम आते जाते थे। करुणेश्वर के देवालयमें हरिहर स्वामी आकर कोई दिन रहे थे। आपने मौन धारण किया था। नंगे महाराज नामक एक साधु वाशीम में ही रहते थे। "फुटा-तलाव" के पास एक पर्णकुटी बनाकर आप रहते थे। आपके साथ एक ब्राह्मण भी सेवामें रहता था।

(१८) नंगे महाराजसे मुलाकात :—गजानन आपके साथ बैठकर बहुतसा समय बिताता था। एक दिन किसीने महाराजको शराबकी बोतल लाकर दी थी। आधी पीकर आधी महाराजने गजाननको दी और बोले "ले प्रसाद" गजाननने झट सब पीली। लेकिन वह दूधसी मालूम हुई। शराबका तो गंधही उसमें नहीं था!

(१९) नंगे महाराजकी लहरें :—महाराज सदैव हंसमुखसे कुछ लिखते और लिखने के बाद वही कागज फाडतोड कर फेंक देनेके ही काममें लगे रहते थें। सबके पास मद्य और मांस माँगते थे। इसके सिवा कुछ भी खाने पीनेको नहीं मँगते थे। और खाते पीते नजर भी नहीं आते थे। बाहर जाते थे जब इतने जोरसे चलते थे कि पाँव भी जमीन पर लगते कभी नहीं दिखाई देते थे। और क्षणमें दूर तो क्षणमें नजदीक आते जाते थे। मरनेके बाद तो आप हिंदु या मुसलमान थे इस बातका ही झगडा शिष्योंमें शुरू हुआ था। सरकारकी सहाय्यतासे ही मिट गया। जब पहले वाशीम आये तो एक बूढी वारांगनाके घर रहे। कोई दिनोके बाद उससे सब गहने माँगकर तालावमें डुबा दिये। एक दिन तो करुणेश्वरके देवालयमें जाकर देवके पास ही झाडा किया। इससे आपको पकडकर जेलमें भेज दिया गया। लेकिन अंदरसे बाहर कब और कैसे आये वह कुछ किसीको समझा नहीं। जबसे बाहर रहे परंतु मौन धारण कर बैठे।

(२०) तेली महाराज और खटिया महाराजः—बादमें नारायणराय फिर अकोला आये। फिर रिटायर होनेतक वहीं पर नौकरी हुई। वहां गजानन भी साथ आया। लेकिन संत-दर्शनका कार्य चलता ही रहा। नजदीक दारकामें जाकर तेली महाराजके साथ रहा। फिर यवतमहलमें खटिया महाराजके भी साथमें रहा। आप तो किसी भी गाडीके बैल छोड देते थे। बैलोंको चारा देते थे। गाडीवालोंको आराम लेनेका और थाके मांदे बैलोंको न सतानेका उपदेश करते थे। गजाननने बादमें पंढरपूरके तपकिरीबाबाका भी दर्शन लिया। इन संतोंको आप सद्गुरु नारायण सरस्वतीके समानही माननीय समझते थे। अब अकोलेमें आनेके बाद तो गजानन आत्मानंदका सूख खूब ही लूटने लगा।

(२१) श्री गुलाबराव महाराजः—आपके सत्संगमें आप तो खुद नारायण सरस्वतीके रूपमें गजाननको दीख पडे। और "हम ज्ञानेश्वरकी कन्या हैं, श्रीकृष्णकी प्रेमी गोपी हैं," ऐसा भी कहते थे। सब संत एकही हैं इसका दाखला इसे गजाननको मिल गया।

(२२) ध्यानः—अकोलेमें गजानन महाराजके निवासस्थानसे एक फर्लांगके दूरीपर एक पुराना गढ है। दिनरात वहां जाकर एकांतमें ध्यान करनेको गजाननने शुरुआत की। बात किसीको मालूम नहीं थी। रातको जानवर आकर आवाज करते थे। उस बखत डर भी पैदा होती थी। लेकिन वहां जानेका क्रम बंद नहीं हुआ।

(२३) आकाशवाणीः—वहां ध्यान करतेसमय आकाशवाणी भी हुई थीः—"डरो मत! चारपांच दिनोंमें डर बिलकुल चले जाएगी!"। सचमुच जानवरोंका आवाज भी बंद होगया। ध्यानमें आनंद भी बढते चला। रास्तेमें भी जानवर दीखते थे। लेकिन तकलीफ कभी नहीं हुई।

(२४) श्री शिवरामभाऊ गुप्तेः—आप अकोलेमें गवलीपुरेमें रहते थे। गढमें जानेका रिवाज आपको मालूम हुवा तो गजाननको न जानेका उपदेश करने लगे। कभी कभी आपके घर जाकर गजानन सोता।

(२५) ब्रम्हानंद स्थितिः—इस मित्रकी उम्र उस वक्त अंदाज तीस सालकी थी। तहसिल कचहरीमें अर्जनवीस था। गजाननका रिश्तेदार था और

उसपर प्रेम और विश्वास था। जब वह बोला भि रातको किलेमें डर है, मत जाना. तब गजाननने उत्तर दिया। "मैं तो अपनी प्रेरणासे नहीं जातां हूं। कोई अति मानवी शक्ति मूंझे खींचसी ले जाती है। वही मुझे वापस लाती है। और उस वक्त मेरे मनमें तो उत्साह और आनंद भर आता है। सद्गुरु बडे ही दयालु हैं मुझसें। मेरे सब विचार और आचार सद्गुरुकी हाथसे ही उत्पन्न होते हैं और चलाये जातें हैं। साथ साथ मन तो आपहीसे 'सोऽहम्' मंत्र का जप करने लगता है।" बादमें आपके घर ही श्रीगजानन महाराज ध्यान चिंतनके लिये बैठनें लगे।

(२६) श्री. कर्णिकः—उसी समयमें राजेश्वरके देवालयके पास एक और मित्र श्री. कर्णिक रहते थे। आप देवीके बडे सक्त उपासक थे। संस्कृतके बडे पंडित, अभ्यासु और लेखक थे। साधारणतया शाक्त पंथीही बने थे! नवरात्रमें देवीकी उपासना धूमधामसे होती थी, और गजानन वहां जाता था। एक समय देवीके सामने शराबका प्रसाद रखकर वही गजाननके सामने रख्खा गया। मौंसी वहां ही थी। उसने उस प्रसादका स्वीकार मत करो ऐसा कहा। गजानन तो झट उसे पी कर घर भाग गया। बादमें "सोहं" मंत्र जोर जोरसे आपहीसे उच्चारण होने लगा। मौंसीने शराबकीसे बात शिवराम भाऊको बतायी और दोनो गजाननसे पूछने लगे कि शराब क्यों ली। गजाननने नंगे महाराजके प्रसादका अनुभव बता दिया। और दोनों वक्त उस प्रसादसे हानि न होते मनकी श्रेष्ठ अवस्था कैसी हो गयी उसका वर्णन किया। श्रीगजानन महाराज क्षत्रिय कुलमें जन्म लिये हुए होकर आपके घरमें मद्यमांसका त्याग ही किया गया था।

(२७) चमत्कारोंका प्रतापः—अब इस कालमें श्रीगजानन महाराजके बारेमें आपहीसे कुछ चमत्कार होने लगे। उस समय महाराजके साथ खाली मित्र ही रहते थे। उनको चमत्कारकी बात दूसरोंसे न कहनेकी सलाह दी। महाराजके बचपनमें ही ऐसी बातें जाहीर करनेसे महाराजको तकलीफ होगी ऐसी भी मित्रोंकी सलाह थी। तो भी कोई लोग महाराजको चमत्कार बतानेके लियें बिनती करने लगे। तब महाराजने कहाः—"ये मेरी इच्छासे नहीं होती हैं। उसका कारण भी मैं नहीं जानता हूं। मैं तों खालीं "ध्यान"

जानता हूं। महाराजके घरके लोगोंको भी इसका कुछ पता नहीं था। लेकिन एक दिन महाराजने ध्यानमेंही देखा और समझा की, ऐसे चमत्कार योगियोंके बारेमें आपहीसे होते हैं और इससे उनको कुछ डर नहीं है। कुछ वास्ताभी नहीं है। यह समझ कर खुद महाराजके मनको भी आराम होगया।

(२८) बालिशता के खेलः—श्री० कर्णिक के घर जो शक्तिपूजा होती थी उसमें शराब और मांस का नैवेद्य अर्पण किया जाता था। गजाननने भी एक दिन अपनेको कोठरीमें बंद करके वैसा ही नैवेद्य लेनेके लिये देवी को प्रार्थना की। लेकिन देवीका कुछ भी असर मालूम नहीं हुआ। प्रसाद जहां का वहां जैसेके वैसेही पडा रहा। इसे गजाननको ठीक नहीं मालूम हुआ। दूसरे दिन फिरसे नया नैवेद्य लेकर वैसाही देवीकी प्रार्थना करते बैठा। लेकिन परिणाम वही हुआ। लेकिन तीसरे दिन और भी फिरसे नैवेद्य लेकर जब बैठा तब ध्यानके समय एक विचार आया कि जब नैवेद्य किसीको हम देतें है तब वह केवल एक सद्गुरुको ही पहुंचना चाहिये। इसी विचारमें ध्यान लग गया और ध्यान में देखा गया कि बात सच है। झट शराब का दूध बन गयासा ध्यानमें दिखाई पडा और मांसके गुलाबपुष्प बन गये। ध्यान उतर जानेपर प्रत्यक्षमें भी देखा तो शराबका दूध बन गया था। मांस के गुलाबपुष्प बने थे। और देवीके लिये जो माला रख्खी थी वह खुद अपने ही गलेमें आ पडी थी! शिवरामभाऊ गुप्तेके घरमें एक कोठरी बंद करके यह प्रयोग चला था। अंदर अकेला गजानन था और उसे बाहरसे छुपकर श्री. गुप्ते अंदर क्या हो रहा है यह देखने का यत्न कर रहे थे। आपने जब यह चमत्कार देखा तब झट अंदर आये और गजाननके पाँव पकडे। श्री. गुप्तेको 'सोहम्' मंत्र की दीक्षा दी गयी।

(२९) ध्यानमें संत-दर्शनः—बादमें ध्यान ठीकठीक रीतीसे चलने लगा। गजाननको उसमें कोई अडचने नहीं आयीं बादमें ऋद्धिसिद्धि और दूसरे दिव्य संत मँहंतोका दर्शन होगया, वे सब बोलेः—"अब तुम्हारा योग साधन पूरा होगया है। अब अखंड ध्यानके ही अवस्थामें तुम रहोगे। तुम अब 'सिद्ध' हो गये हो। साधकको तुम जो मंत्र दोगे वह सिद्ध होगा।

तुम्हारे स्पर्श सेही साधकको साधनपथपर आगे बढा सकेंगे।" इतना बोलकर सब अदृश्य हुए।

(३०) सद्गुरूकी मानसपूजा:—ध्यानमें एक दिन हररोजके माफिक सद्गुरुचिंतन किया तो खुद नारायण सरस्वती प्रकट हुए। मनसेही षोडषोपचार पूजा की। सद्गुरु हँसकर बोले:—"इन सब बातोंकी जरुरतही तो क्या है? 'सत्य' तो खुद तुमही हो। खुदही खुदा है। तुम्हारी भक्ति और श्रद्धामें सब कुछ आया। खुदही सच्चिदानंद हो। अनुभव लेते रहो!" इतना बोलकर सद्गुरु अदृश्य होगये। जबसे श्रीगजानन महाराजके ध्यान समयमें, अंदर पूजा होनेके समय में खुद नारायण सरस्वतीजी नदीक बैठेही हैं ऐसा अनुभव आता था और पूजाके सब साहित्य और प्रत्यक्ष नैवेद्यके पक्वान्न सामने उत्पन्न हो जाते थे। प्रत्यक्षमें दूसरे अनेकोंने यह चमत्कार आँखोंसे देखा है। गजानन महाराजके गलेमें आपहीसे पुष्पमाला लटकी जाती थी ऐसा दृश्य भी उसी बखत देखा गया है।

(३१) मूर्तिका अदृश्य होना:—गजाननके बचपन की एक बात ३४ सालके बाद श्री० पंडित ने बंबईसे लिख भेजी है। जब गजानन तेरह साल का था तब पडोस की एक स्त्री हाथमें श्रीकृष्णकी मूर्ति लेकर ध्यान करते बैठी थी। कोई लडकोंके साथ गजानन वहां खेलते खेलते गया और बोला। "माजी मैं तुम्हारे श्रीकृष्णको यहांसे उड जानेका हुकुम देदूँगा तो क्या होगा?" स्त्रीने इस बातपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। फिर गजाननने मूर्तिको उड जोनका हुकुम किया और वह सचमुच हाथमें ही अदृश्य होगयी। फिर तो स्त्री और देखने वाले बिलकुल डर गये। बडी ही धूम मची। फिर गजाननने मूर्तिको बुलाया तो वह जैसीकी वैसी ही हाथमें प्रकट हुई।

(३२) गुलाबपुष्प और सुगंधके चमत्कार:—अकोलेमें गजानानके बचपनमें आपके साथ खेलती हुई एक लडकी बहुत साल के बाद मिली। इस स्त्रीनें दो चमत्कारोंका अनुभव बताया। एक दिन बहुतसी लडकेलडकियां अकोलेमें एक घरमें इकट्ठी हुई थीं। वे सब बोलीं कुछ चमत्कार बताओं। गजाननने कह दिया कि चमत्कार हमारे हाथसे नहीं होतें हैं। कैसे होते हैं मेरी समझमें भी नहीं आतां है। तो भी साथियोंने बहुत कुछ

कहा जब गजानन बाहर गया। उस पर सबकी नजर थी। जरासा बाहर की कोठीमें जाकर फिर अंदर आया। और एकदम पचीस तीस गुलाबके फूल उसने कोठीमें चारों और फेंक दिये। मार्तंडराव गुप्ते वकीलने इसमेसे कोई फूल पेटीमें बंद करके रखे। वे जैसेके वैसेही बहुत कालतक रहे। गजानन स्नान करनेका हमेश टालताथा। बहुत दिनकेबाद मित्रोंने उसको पकडके नहलाया। उस बखत पानीका सुगंध खसके अत्तरके माफिक चारों और फैल गया।

(३३) बीमार की इलाज:—श्री. संतुराम गुप्ते नामक एक डिस्ट्रिक्ट कोर्टके रीडर उसी घरमें रहते थे। आपकी स्त्री टाइफॉइडसे बीमार होकर मरनेका समय आया। गजाननने उसके पास केवल कपूर जलानेको कहा। वह स्त्री आहिस्ते आहिस्ते सुधर गयी।

(३४) महाराज बंबईमें:—बहुत यात्रा करके महाराज बंबईमें नारायणराव समर्थ नामक रिस्तेदार के घर परेलमें रहने लगे। आप परेल मिलमें काम करते थे। महाराजसे अनुग्रह भी आपने लिया था। मि० मथुरे नामक एक दोस्त उसी मिलमें था जो एक दिन इनके घर आया। बचपनमें इसने महाराजको देखाथा।

(३५) श्री० मथुरे :—जब गजानन प्राथमिक पहिले क्लासमें था तब मथुरे चौथी पढता था। अब परेलमें चौदह सालके बाद यह मुलाकात हुई। आतेही महाराज तो ध्यानमग्न बैठे थे। तारीफ पूछनेपर श्री. समर्थनें नाम बताथा और श्री मथुरे को भी बचपनका ख्याल आया। लेकिन बचपनमें तो गजानन साधारणसा ही लडका था महाराज कब बना? वगैरह बातें हुई। फिर एक मित्रने श्री. मथुरेको महाराजके चमत्कारोंके बारेमें बताया था यहभी ख्याल आ गया। और बोले हां! अकोलेमें शेगाववाले गजानन महाराज आते थे। अपना गजानन भी संतों के दर्शन लेता था। उस वक्त कुछ कृपा उसपर होगयी होगी। अबतो देर होगयी है। बादमें आकर इनसे मिलूँगा।" दो तीन दिनोंके बाद श्री. मथुरे फिरसे आये और महाराजके साथ बात करने लगे। महाराजने प्रथम आपको नहीं पहचाना तों भी ध्यान के बारेमें कुछ प्रश्नोत्तर हो गये। किताब पढनेके बारेमें महाराजने कहा कि, खाली किताब

ही पढते रहेगा तो मगज मंद होगा। आत्मानुभव मिलाना यही सबसे महत्वपूर्ण बात है। फिर नाम, धाम, वगैरह पूछनेपर पहचानत पूरी हो गयी । बादमें श्री. मथुरेके आंखोंमें देखकर महाराजने झट् बताया कि "मेरे गुरुकी कृपासे मैं कह सकता हूं कि तुमने प्राणायामका अभ्यास भी किया है। बात सच थी इसे श्री. मथुरेने [illegible]लिया कि गजानन अब पहला रहा नहीं है। गुरुकृपा होगयी है। फिर श्री. समर्थ से पूछनेपर आपनेभी मथुरेको बताया कि महाराज प्रसिद्धिपराङ्मुख है। और खुदभी अपनी इच्छानुसार चलते हैं। इससे किसीको आपके बारेमें कहतें नहीं हैं। खुदकोभी महाराजसे मंत्र मिला है और नाद और दृश्य ध्यानमें दीखतें हैं। कुछ सुगंधभी आतें हैं। लेकिन यह सब बंद होकर बादमें घंटोंतक समाधि लग जाती है। और परमानंद प्राप्ति होती है। आपने श्री. मथुरेकोभी ध्यान करनेका अभ्यास रखना, जिससे आपहीसे वह चल सकता है ऐसा बताया।

फिर मथुरेने महाराजसे नम्रतापूर्वक अपने घर चलने की बिनति की। महाराज बोले–"महाराज तो मेरे गुरू हैं। मै आपका सेवक हूं" महाराज उसके घरजानेपर उसकी भगिनी आकर बोली कि मि. मथुरेपर दया करो। प्राणायामसे उसका मगज बिगडते चला है। महाराजने फिर उपदेश दिया कि प्राणोंपर खाली ताबा रखनेके अभ्याससे फायदा नहीं हैं। मन काबूमें लाना चाहिये। मि. मथुरेने पूच्छा–"सच्चे गुरु कैसे पहचानना महाराज बोले–"ब्रह्म जाननेवाले सद्गुरु जो बोलते वही गीता है। लेकिन कोई लोग दूसरेको रास्ता बतानेलायक नहीं रहतें हैं। उससे शिष्य धोखा खाता है ; राजयोगीको ध्यानके बारेमें नियमित और बहुतसा अभ्यास होना चाहिये। साथ साथ वैराग्य भी चाहिये। इस योगमें गुप्तता रखनेका काम नहीं है। सब बातें खुलीं हैं और अनुभव देती हैं। अतः कमसेकम थोडा तो भी अनुभव देखनेपर गुरुके बारेमें श्रद्धा रखना चाहिये। अंधश्रद्धा नहीं होनी। अंधश्रद्धा रखो ऐसा कहनेवाला गुरु इस शास्त्रको कलंक लगाता है। मैं अपने अनुभवसे और गुरुकृपा होनेसे यह कह सकता हूं। आजकलके बहुत विद्वानोंने वेदोंपर भाष्य किये हैं। लेकिन उसमें बहुतसीं त्रुटियां और भूलें है। इससे यह किताब

पढनेवाले भी भूलमें पडतें हैं। पुराने भाष्यवाले स्वानुभव लेकर लिखते थे। आजकलके खाली बुद्धि प्रकट करते हैं। इससे आदमी खाली गूढगुंजनमें ही फंस जाता है। मगज घूम जाता है। अनुभव नहीं आता है।" फिर श्री. मथुरेने प्राणायाम छोड देनेका वचन दिया और श्रद्धापूर्वक महाराजके पाँव [redacted]। उसके मनकी शुद्धता समझकर महाराजने उसे 'सोहम्' मंत्र दिया और ध्यानयोगका मार्ग भी बताया। श्री. मथुरेको झट उसी बैठकमे नाद, गंध और दृश्योंके दिव्य अनुभव आगये। फिर महाराजने बताया कि आत्मानुभवकेलिये ध्यानका अभ्यास करने रहना यही एक ध्येय रखना चाहिये। अनुभवपर गुरुसे भी जादह निर्भर रहो। चमत्कारका भरोसा मत करो। यही खुला सत्य इस मार्गमें है। गुरुकृपासे मैं यह कह सकता हूँ। प्रश्न करनेपर महाराजने और भी बताया कि 'मैं तो माताके गर्भमें भी ध्यानमग्न था। अभी तक ईश्वरके हाथका एक यंत्र हूँ। और फिर भी तत्त्वसंशोधनमें मग्न हूँ।" ईश्वरके अस्तित्व सिद्ध करनेके बारेमें महाराज बोले:— "ईश्वरका आधार हमारे लिये माननेके बदलेमें खुदका ही आधार यह क्या चीज है यह पहले समझकर उसी आधारपर निर्भय रहो। ईश्वर, तुम और अस्तित्व सब एक ही मानो। वैराग्य, सत्संग और गुरुभक्तिसे यह साध्य होगा। आचरण शुद्ध रखना यह एक ही नियम बस है। गुरुमंत्रसे यही बात सहजसाध्य होती है।" संतोंके दुर्गुणोंके बारेमें महाराज बोले:— "सच्चे संत जनसंमर्दसे दूर रहनेके लिये ऐसा बर्ताव बनाते हैं। सचमुच तो सच्चे संत दुर्गुणोंके परे हैं। लेकिन साधारण साधु कहलानेवाले इस तत्वसे लाभ उठाकर लोगोंको गढेमें डालते हैं। और ऐसी बात तो पूर्वकालसे चलती आयी है और आगेभी चलती रहेगी।" फिर श्री. मथुरेनेभी ढोंग मचानेवाले गुरुओंकी बहुतसी बुरी बातें कहीं. महाराज बोले:—"बाजारमें जैसे अपना पैसा हमें खुद परीक्षा करके स्वीकार करना पडता है वैसाही गुरू पहचानना पडता है। दूसरे गुरु भस्मासुरके माफिक अपनेही हाथसे जल जायेंगे। पानी बनानें की कृति भौतिक शास्त्रमें है। लेकिन बनानेवाले बिलकुल कम हैं। हैड्रोजन और ऑक्सिजन कितना लेना और किस प्रकार मिलाना यह बात जाननेवाला और वैसा प्रयोग करनेवाला मिलना बहुत कठिन है। फिर जिस शक्तिसे इतना पानी पृथ्वीपर हुआ और होता है उस शक्तिको मानना चाहिये।

वेदोंमें भी उसी शक्तिको महत्व दिया है। इस प्रकार भौतिक और आध्यात्मिक दोनोंही मार्गोंसे 'सर्व समर्थ शक्ति' मानना पडता है।" फिर मथुरेने पूछा "महाराज आपकी चारही प्राथमिक पुस्तक पढी है।" फिर इस ज्ञानका अनुभव कैसा? महाराज बोले मैंनें पंडितों का संभाषण बहुतसा सुना है। उसपर विचार किया है। पतंजलीके योग शास्त्रके माफिक जो ग्रंथ हाथमें आये वे पढलिये हैं और दूसरोंसे स्पष्टीकरण कर लिया है। इस प्रकार उपनिषदोंका और संत चरित्रोंका भी श्रवण, मनन और निदिध्यास हुआ है। लेकिन अपने ज्ञानका प्रदर्शन करनेवालेसे वह छुपानेवालाही अधिक अच्छा है। इससे मैं नम्रता धारण करता हूँ। अब मुझसे अधिक बातोंका खुलासा कर लेनेका यत्न मत करो। ध्यान करते रहो, भ्रूमध्यपें ख्याल ठीक जमाते चलो। दूसरोंके चमत्कारों पर निर्भर मत रहो। खुदको चमत्कारपूर्ण अनुभव अंदरसे ही आते हैं। उन्हें लेते चलो। फिर आत्मदर्शन होगा।" बादमें वैसाही श्री. मथुरेने किया और ५८ सालकी उमरमें समाधि साधनके बाद संसारयात्रा सफल करके देह त्याग कर दिया।

(३६) कल्याणके महान संत श्रीराम मारुती महाराज:— बंबईसे एक दिन गजानन महाराज कल्याण पहुंचे। वहां श्रीराम मारुती नामक संत थे। उनसे आपने पूछा:—"मेरा योगसाधन कहांतक पहुंचा है और मैं ठीक रास्तेसे चल रहा हूं या नहीं, यह बात कृपा करके बताईये जिससे मेरा कुछ समाधान हो जायगा।" संत बोलते नहीं थे। अपने झट लिख कर बताया:—तुम और हम एकही पदपर हैं। दोनो एकही चौरंगीनाथ के अवतार हैं। और जानबूझकर यह प्रश्न पूछ रहे हैं।" बादमें आर्शिवाद लेकर गजानन महाराज बंबई लौटे। इधर कल्याणमें दो महिने के बाद श्रीराम मारुती समाधिस्थ हो गये। बादमें वहांके कोई शिष्य गजानन महाराजकी खोजमें बंबई पहुंचे। उन्हें एक मित्रने बताया था कि श्रीराम मारुतीके पीछे उनकी गादी चलाने लायक एक श्रीगजाननमहाराजही हैं। उन्हें बुलाकर कल्याणकी गादी चलाना।" अब इन लोगोंने महाराजको कभी देखा नहीं था। वे आये तो बंबईमें गजाननमहाराजकेही सामने खडे हुए, लेकिन भूलसे आपको दूसराही कोई साधारण आदमी समझे। महाराजने पूछा:—"क्यों भाइयों, कैसे आये?" लोग बोले:—हमें कुछ काम है।

महाराज :–मुझ से आपला क्या काम है ? श्री. गुप्ते :–तुमसे काम नहीं है। गजाननमहाराजसे है। महाराजः–भले, लेकिन काम तो बताओ। शायद मैं मदद कर सकूंगा। नहीं तो आप किसी दूसरेही आदर्शसे मिलकर गड्ढेमे गिरोगे। मैं गजाननमहाराजके बारमें कुछ बतासकता हूं।

गुप्तेः–श्रीराममारुति समाधिस्थ हो गये हैं। और उनकी गादी लेनेकी बिनती करनेके लिये हम गजाननमहाराजकी खोजमें हैं।

महाराजः–ठीक. मुझे इस गजाननबावा का अनुभव हैं। मुझे को इसने शराब पीनेकी आदत लगायी। वह बिलकुल खराब आदमी है। मवालीके माफिक स्त्रियों को भी गालियां देता है। खाने पीने का भी कुछ निर्बंध नहीं रखताही है। गालियांही अध्यात्म है ऐसा बकता है। अघोर पंथी होनेसे भयंकर चमत्कार भी करता है। पांवसे अधूरा है। नाना समर्थ और उसके घरके ३०।५० आदमी उसे मानते हैं। वे उसे 'देवमामा' कहते हैं। मैंभी यहां रहता हूं इसलिए गजाननबुवाके विरुद्ध कुछ उनके पास नहीं कहसकता हूं। अकोलेकाही रहनेवाला हूं। करके गजाननके बारेमें सब कुछ जानता हूं। ऐसे आदमीको श्रीराम मारुतीकी गादी देना उस संतका अपमान करना होता है। इससे तुम लोगोंको नीचे देखना पडेगा। दोचार दिनके लिये वह गांवको गया है। मैंभी आज जानेवाला हूं। बादमें गजाननके सामने ही तुम्हारी हमारी मुलाकात होगी। जब मैं कुछ बोल नहीं सकूंगा। खुद तुम ही देख ले लो। खाली एक आदमीने कोई अच्छी बातें बतायीं होगी उसके भरोसे यह काम मत करो।

अब बात ऐसी होगयी कि इनमें एक आदमी चतुर था। उसने झट महाराजको पहचानकर पाँवही पकड लिये और बोलाः—"आपही महाराज हैं।" महाराजको मानना पडा लेकिन बोले :–"जी हां। लेकिन मैं तो कोई महाराज नहीं हूं। लोग बोलते हैं। अब मुझको तुमने जान लिया है। अब क्या कहना है ?"

आदमी :–"कुछ नही। आपही श्रीराम मारुतीके गादी के लिये लायक हैं।"

महाराज :–लेकिन मैं तो ऐसा हूं जैसा मैंनेही अभी बताया। बल्कि अधिकतर खराब हूं।

बादमें सबको चाय पिलाकर फिरसे अपने विरोधमेंही नम्रतापूर्वक बातें बतायी और आठ दिनके बाद विचार करके आने को कहा और विद किया। पीछे कोई कभी आयाही नहीं। या तो कल्याण में श्रीराम मारुतीका जो उत्सव हरसाल होता है उसके लिये भी कभी महाराजको बुलाया नहीं। खुद महाराज दोतीन बार स्वयंही गये थे।

बादमें नानासमथेन पूच्छा कि गादीका स्वीकार क्यों नहीं किया तब उत्तर दिया, कि फिर तुम्हारी और मेरी आज जैसी मैत्री नहीं रहेगी। मानते होंगे तो मैं गादी लेता हूं। नाना बोले:—"जी नहीं। फिर हमारी यह नुकसानी कोईभी बातसे भर नही पाती है।" महाराज बोले "फिर सब हुआ सो ठीकही हुआ। मुझको तो अभी बहुत कुछ सुधरना है। बादमें मै अपनेही आनंदका अनुभव लेता रहूंगा। वही ठीक होगा।"

(३७) बंबईमें अनुग्रह:—उससमय बंबईमें रहने वालों को मंत्र और अनुग्रह दिया उनके नाम:—श्री० पाटणकर, बालासाहेब गडकरी, नानासाहेब गडकरी, रामकृष्णपंत गडकरी, राजे और रणदिवे.

(३८) श्री. वामनराव कुलकर्णी:—भाईके कहनेसे कभी कभी महाराज 'पेण' ग्रामको जाते थे जहां खुदकी इनामी जमीन है। १९२० में जब वहां थे तब एक श्री. त्रिंबकराव शिकेकर बोले, मेरी बहेनको 'रोहे' से ले आना है। कृपया मेरे साथ चलिये।" महाराजने थोडे देर नकार देकर बादमें कबूल किया और चलपडे। रास्तमें महाराज बोले:—"मुझको अपना नौकर मान कर चलो! सबको ऐसाही बताओ।" मित्रको यह पसंद नही था। तोभी मानना पडा। मुकामपर पहुंचने पर बहनकोभी यही बात बतायी गयी। उसकोभी बात पसंद नही हुई। तोभी अपनेको लेजानेके लिये ये लोग आये हैं यह बात जानकर उसको आनंद हुआ। उसका नाम "केरूबाई" था और पतिका नाम "वामनराव" जो तहसिलकचहरीमें क्लार्क था। घरमे उसकी मां थी। लेकिन आठ सालमें खुद को बच्चा नहीं हुआ था। लोग बोलते थे:—"केरूबाईको भूत लगा है।

वामनराव कचहरीसे आया तो अभ्यागतों की तरफ बिना देखे पूछे झट अंदर चलपडा। रातको महाराजने नौकर के जैसे उसको अपनी स्त्रीको पिताके घर भेजने के बारेमें नम्रतापूर्वक सवाल किया। जवाब कुछ भी नहीं मिला। स्त्रीने जब पूछा तब तों वामनराव इतनी कडी भाषामें इन्कार करने लगा कि स्त्री तो बिचारी चुप होगयी। दूसरे दिन प्रातःमहाराजने अपने सब साथियोंको जरा घूमकर आनेके लिये बाहर भेजा। और खुद वामनराव से बात करने लगे। बात बातमेंही वामनरावका क्रोध कम करदिया और स्त्री को भेजनेका वचन ले लिया। वामनरावको भी अचंभा होगया कि इस साधारण नौकरने अपने मनपे इतनी पकड कैसी बिठायी ?। सोच विचार पर समझ गया कि यह कोई साधारण नौकर नहीं है। बातें करते हुएही उसे कुछ विचार आया और उसने तो झट महाराजके पाँवही पकडे। महाराजने भी फिर अपनेको प्रकट किया और बताया कि बच्चा हो जाएगा। फिर वामनरावने भी एक दिन के लिये सबको ठहराकर दूसरे दिन स्त्री कोभी साथमें बिदा किया। उनका बच्चा अभी बडा हुआ है। वामनरावभी बादमें महाराजसे मिलने के लीये बंबईतक आते जाते रहा। और योगाभ्यासमें प्रगति करत रहा।

(३९-४०) महाड कँपमे श्री० रणदिवे के साथः-अगले सालमें महाराजको एक श्री० रणदिवेने अपने मुकामपर भोजनके लिये बुलाया। कायस्थ और ब्राह्मण दोनोभी बुलाये गये थे। कायस्थोंके लिये मांसाहारका भोजन बनाया था। महाराजने वह सालके लिये इन्कार किया। और अपनी थालीका नैवेद्य ध्यानपूर्वक ईश्वरार्पण करते ही थालीमे का मांस बदल गया और वह सब शाकाहार से भर गयी। इसमेसे कुछ प्रसाद रणदिवे साहबने घर भेजादिया। जो जैसाका वैसा घर पहुंच गया।

(४१) शहर धूलियामेंः—धूलियामें श्री० राजे नामक एक सज्जन पोष्ट ऑफिसमें थे। कुछ कामसे उन्हे नासिकमें आना पडा जब महाराजकी भेंट हो गयी। अपनी मांको दर्शन देनेके लिये महाराजसे श्री. राजेने बिनती की आर दोनोंके मांताओंकी पहचानत रहनेसे महाराजने भी मान लिया। लेकिन पहले श्री० राजको धूलिया जानेको कहा। बादमें खुद निकल पडे।

वहां आठदस महिनों तक मुकाम किया। लेकिन गांवमें किसीको मालूम नहीं किया गया कि आप कोई संत हो।

(४२) गोकुल-अष्टमीः--१९२६ के गोकुल अष्टमीका दिन पडा। श्री० राजेको एकदम चारो और सुगंध मालूम होने लगा। आकर महाराजको देखा तो आप आराम कुर्सी में बैठे थे। सुगंधके बारमें पूछनेपर महाराजने खाली हंस दिया और बोले। मैं तो अपनेही आनंदमय ख्यालमें हूं। मुझे तो कुछ पता ही नहीं।

बादमें सुबहके चारपांच बजेभी ऐसा ही सुंगध कभी कभी निकलता था। कभी कभी एकदम महाराजका अंग चंदनसे या भस्म विभूतिसे भरा जाता था। श्री० राजे विद्वान् पंडित होनेसे बहुत लोग उनसे मिलने आते थे। लेकिन बात पूछनेपर महाराज खाली गुरुकी और मंत्रकी बात बताते थे। और अपनी तरफ नम्रतापूर्वक हीनता लेते थे। किसीने अधिक कुछ यत्न किया तो अनुग्रह भी करते थे।

(४३) अनंत-चतुर्दशीः--उस दिन अच्छे बुरे संतोंके बारमें बहुत कुछ चर्चा होगयी। लेकिन महाराज चुपही बैठे थे। खाली एक दृष्टांत दिया कि, कोई औरतें भाग जातीं हैं। इससे तो कोई शादी करना नहीं छोडता वैसाही कोई साधु खराब होगा तो भी किसीको साधुमार्ग नहीं छोडना चाहिये। बादमें महाराज तनिक चुपचाप बैठे और एकदम सब जनोंके आंगपे बुक्का आकाशमेसें गिरने लगा। बहुतोंने वह जमा भी करके रखा है। महाराज खाली गुरु का नाम लेते रहे थे। यह चमत्कार देखकर बहुत संतोष होकर लोग चले गये। दूसरे दिन और भी लोग आकर बुरे संतोंके बारेमें बोलने लगे तब महाराजने अपनेही दुर्गुण बहुत खुले मनसे बताये। फिर बोले की सब कुछ अपनेमेंही है। कोईभी किसीका किस्मत नहीं पलटा सकता है। फिर बोलें मैं तो एक फत्तर हूं तुमही उसे देव बनाते हो। फिर एक श्रोता बोला सुवर्ण को और घिसनेका या रंग देनेका कामही नही पडता है। महाराजने जवाब दिया "वैसे अधिकारी पुरुष तुकाराम ऐसे होगये हैं। मैं तो खाली गुरुका नाम और सोहम् मंत्र जानता हूं।" चमत्कारों को और ज्यादा महत्व न देनेका उपदेश देकर महाराजने सबको बिदा किया।

(४४) नानासाहेब गंदेकर:—इस आदमीने बहुतसे गुरुओंका दर्शन लिया था। मनको शांति नहीं आयी थी इसलिए महाराज के पास आता था। महाराजके चमत्कारोंके बारमे भी बातें होती थी। और महाराज बातें टालते थे। लेकिन पंढरपूरके तपकिरी बावानें गंदेकर को महाराजके पास भेजा हैं। ऐसा जब महाराज को गंदेकरने ही बताया तब महाराज उसको अधिक ठीक रीतिसे उत्तर देने लगे।

(४५) तपकिरी बावा:—महाराज बोले:—"मैनें तपकिरी बावा को देखा है। उसवखत भीमा किनारे पीपल वृक्षके नीचे आप बैठे थे। मुझे बहुत प्यास लगी थी। एक गंदे पानीसे भरा हुआ टिनपाट आपने मेरे सामने किया। मुझको तो अच्छा नही मालूम हुआ। तब खुद आपही वह पीने लगे। और देखा तो उसीमेसे दूध टपकने लगा। मैने उसका स्वीकार पहलेही नही किया इस बातसे दुःख होने लगा। झट आधा बरतन मुझें दे दिया और मैंने तो सब वैसाही पी लीया। और उस महात्माके पांव पकडलिए। आपने मुझे आलिंगन दिया और मेरे पांव पर जोर जोरसे हाथ फिराकर पावकी चमडी घंस दी। और बोले "बच्चा! जाओ!" मेरे पाँव दुखते थे वे मलनेके बाद ठीक हो गये। इधर मेरी गाडीकी टाईम भरगयी थी लेकिन महाराजकी कृपासे गाडी ही देरसे आयी और मैं वापस आसका। लेकिन तुमको बोला है कि खुद तपकिरीबावा मैंही हूं तो वह बात बराबर नही है।" उस पर जहागिरदार नामक वह आदमी बोला:—जो कुछ हो! वे तो बडे साधु है। महाराज बोले:—तोभी मै वैसा नहीं हूं। मैं तो सद्गुरुका और तुम्हारे जैसे लोगोंका एक साधारण सेवक हूं। मेरे सद्गुरुके माफिक जो दीखेगा उसीको मैं संत मानता हूं। क्योंकि वे सब एकही परमात्माके रूप हैं। इसमेंसे किसीने भी कौनसा भी मंत्र दिया होगा तो उससे प्रगति होती है। इससे अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी।

(४६) श्री० सासवडकर:—आप वहांही सबरजिस्ट्रार थे। श्री दामोदर मार्तंड चिटणीसके साथ आप भी महाराजसे मिलने आये। चिटणीसको महाराजके बारेमे पूछनेपर कुछ नहीं बताया था। क्यों कि प्रसिद्धी करनेका महाराजका हुकुम नहीं था। तो भी श्री० सासवडकरने झूठ बोलकर

सब बातें श्री० चिटणीससे निकाल ली थीं। चिटणीसको स्वप्नमेंही महाराजका दर्शन और उपदेश लेनेका हुकुम मिला था। और उन्होंने वैसाही किया था। यह बात अपने कहदी। महाराजने यह सब अंतर्दृष्टीसे समझा। और श्री० चिटणीसपर महाराज नाराज हुए। दूसरे दिन श्री० सासवडकर कीं मुलाखत होनेपर पहले श्री० चिटणीसने उनको झूठ बात करनेके बारेमें फटकारा। जिसे श्री० सासवडकर को महाराजके बारे में जादह विश्वास उत्पन्न हुआ। और उन्हें श्री० चिटणीस से क्षमायाचना की। फिर श्री० चिटणीससे और भी कुछ बातें मिल जानेपर श्री. सासवडकर फिरसे श्री. राजे के घर जाकर महाराजसे मिले। तो भी महाराज उत्तर देना टालते ही रहे। महाराज बोले :–"मैं एक फकीर हूं। जो प्रेमसे बुलाता है उसके घर जाकर रहता हूं।" बादमें बहुत दफे भेंट करनेपर एक दिन फिरसे श्री० सासवडकरने लंबा चौडा भाषण किया। संतोंको दोष दिया और केवल अनुभवोंपर जोर दिया। तो भी महाराज कुछ बोले नही। दूसरे दिन और दो मित्रोंके साथ फिर दर्शन करने गये। तब महाराज बोलेः–भाईओं! वेदांतकी बाते तो मैं कुछ समझता ही नही हूं। मैं तो यहां अपनी प्रसिद्धी करनेके लिये नहीं आया हूं। और चमत्कार भी मेरी शक्तिसे नहीं होते हैं। तुम भी ध्यान ठीक ठीक करोगे तो तुम भी चमत्कार कर सकते हो। और तुम लोग तोतेके जैसे किताबमें की बातें बोलते हो तो मैं अनपढ आदमी कहांतक तुमसे वाद कर सकूंगा? मैं कहता हूं भाईयों! अनुभव लेलो! सच्चे संत मानव जातिपर प्रेम करतें हैं। और उनके उद्धारके लिये अवतार धारण करते हैं।" इतना बोलकर भी श्री० सासवडकरके मनमें कुछ नम्रभाव उत्पन्न नहीं हुआ। दूसरे दिन मित्रोंके साथ आये। तब हाथको बहुतसा अत्तर लगाकर आये। महाराजने पूच्छा "आज क्या दिवाली है?" तब उत्तर किया "जी नहीं. आप सुगंधका चमत्कार करतें है। तो मैंने भी सोचा ऐसा सुगंध तो हम चार पैसे देकर खरीद सकतें हैं। तो क्यों न करना?" इसमें श्री० सासवडकरके मनमें संतोंकी निंदा ही करनेका इरादा देखकर महाराजने बोला "लेकिन मुझको तो तुम्हारे चार पैसेके अत्तर में कुछ सुवास मालूम नहीं होता है। जरा देखो तो सूंघ कर!" सब लोगोंने

श्री० सासवडकरके अत्तरका नमूना देखा तो सुंगध तो था ही नहीं, लेकिन पुराने तैल जैसी बदबू आने लगी! फिर सब लोगोंनें श्री० सासवडकरसे कहा कि भाई "संत की परीक्षा करना ही तो करो। लेकिन नम्र भावसे करो।"

(४७) **अत्तरवालाः**—एक दो दिन के बाद महाराज खुद सासवडकरके ही घर जाकर बैठे थे। जब एक अत्तरवाला आकर महाराजसे टेढीं बातें करने लगा तो उसके मनमें आया कि यह फटे मैले कपडे पहननेवाला अत्तरकी क्या बात करता है ? महाराजने सासवडकरसे पांच रुपये उसे देनेको कहा और वे बोले अब मुझे सब अत्तरोंका नमुना बताओ। जब एकेक अत्तर बाहर निकाला तो उसको पुराने तेल जैसी बदबू आती हुई मालूम हुई। खुद अत्तरवाला चकरा गया और रोने लगा कि मेरा कितने रुपयेका अत्तर बिगड गया!" फिर महाराज के बारेमें उसको कुछ निश्चय उत्पन्न हुआ और उसने पाँव पकडे। तब सब हँसने लगे। महाराजने भी सब अत्तर जैसेके वैसे ठीक कर दिये। आदमी चल पडा। बादमें सासवडकर और उनके मित्रोंने महाराजकी क्षमा मांग ली। एक ने तो मंत्रका उपदेश भी लिया और ध्यानके अभ्याससे जो लाभ हुए वे श्री० सासवडकरको बतलाये। फिर सासवडकरने महाराजसे मंत्रोपदेशकी याचना की। महाराजने वैसा किया और कहा भी "देखो अपने अनुभवोंपर विश्वास रखो। मेरे पर मत रखो।" सासवडकरको बादमें सब अनुभव ठीक ठीक आ गये। लेकिन फिर भी दो तीन सालके बाद महाराजसे पूछाः—"ये सब दृश्य स्वप्नमें भी दीख सकते हैं। फिर दोनों में भेद क्या ?" महाराज बोले "स्वप्नके दृश्य इतने तेजस्वी नहीं होते हैं। ध्यानमें के दृश्य दिव्य तेजस्वी दीखते हैं। तो भी दृश्य ही सब कुछ हैं ऐसा कुछ कभी मानना नहीं। ये सब ऐसे चिन्ह हैं जिससे समझता है कि आदमी ध्यानपथपर प्रगति कर रहा है।"

(४८) **बुखार**—१९३२ ई० में महाराज श्री. सासवडकरसे मिलने निफाड गये थे। वहां एक डॉक्टर आये। डॉक्टरसे महाराज बोले "मुझे भी बुखार आया है जरा देखिये तो कितना है"। डॉक्टरने थर्मामिटर लगाया तो बुखार इतना चढा था कि थर्मामिटरके बिलकुल सिरपें जाकर पहुंचा। डॉक्टर को डर मालूम हुई और आप तो घर छोड बाहर भाग गये।

(४९) **बाला महाराज**—गुरु दत्तके भक्त बाला महाराज एक दफे श्रीगजानन महाराजके साथ प्रवास करते थे। स्नानके बाद भस्मका उपयोग करने का बाला महाराजका नियम था। लेकिन एक ऐसी जगह देवलमें पहुंचे कि वहां केवल शिवालयमें शिवलिंगही था। बाकी ग्राम वगैरे कुछ नहीं था। भूलसे महाराजके शिष्योंनें बाळा महाराजके सब कपडे धो डाले। जिसमें भस्म पूरा धोवा गया और पानीमें चला गया! गजानन महाराजके शिष्योंपर और महाराजपर भी बाला महाराज बहुत गुस्सा हो गये। बात बिगडती हुई देखकर महाराज शिवालिंगके चारो ओर हाथ फिराते चले और मुठीसें भस्म निकाल कर बाला महाराजको देते चले। बाला महाराज आश्चर्यसे मूढ होकर महाराजसे बोले, "मैं आपका बच्चा हूं! मेरा अपराध माफ कीजिये।" बादमें सब चल पडे। रास्तेमें महाराज सबसे बोलेः—"देखो आदमी पैसेके और स्त्रीके फेरमें पडकर कितना दिवाना बनता है। ईश्वर स्मरण यही एक सद्गुण पकडो। बाकी सब कुछ झूठ है।" मालूम होता है कि यह बात बाला महाराजके लियेही बताई गयी थी। जो नाशिकके पास रामसेज पर्वतके नीचे रहते हैं।

(५०) **श्री. कारखानीसः**—इस नामका एक बासठ सालका बूढा आदमी महाराजके निफाडके मुकामपर आया और बोला कि यवतमहालके कोई साधुका अनुग्रह लिया है, तोभी मनको शांति प्राप्त नहीं हुई है। महाराजने पहले तो टाल दिया लेकिन मनःपूर्वक प्रार्थना करनेके बाद पास बिठाया और अपनेही गुरूका मंत्र और चिंतन करननेका हुकूम किया उसका आसन जमतेही शिरपें हात रखा। तो उसकी एक घंटेके ऊपर समाधी लग गयी और उसके गुरुका दर्शन होगया। उससे समाधिका आनंद क्या चीज है वह समझ गया।

(५१) **शक्तिदेवीपर विजयः**—एक दिन बंबईमें अपनी कोठीमें शराब लाके बैठे और जोरजोरसे गालियां बकते हुवे एक दो बोतलें खलास करदीं। फिर घंटों तक गालियांही बकते रहे। सब चालके लोग इकठे होकर सुनने लगे। बादमें आधी रख्खी हुई बोतल जोरसे जमीनपर पटकदी। उसमेंसे दो तीन कांचके टुकडे खुद महाराजको लगकर घायल हुए। खून बहते चला। तब सब लोग अंदर आये। पहले जब लोग अंदर आये

तबसे हरेकको हरएक किस्मकी सुगंधही कोठीमें फैली हुई मालूम होने लगी। शराबकी दुर्गंधी तो आयीही नहीं। महाराज बोलेः—"आज शक्तिदेवी पर विजय मिलाया। अब उसके जालमें मैं फँसनेवाला नहीं हूँ।" जबसे शराब पीना बंद हुआ। लोगोंने मलमपट्टी करदी। और महाराज दो तीन दिनोंमें अच्छे होगये।

श्री गजानन महाराजके सब दिन आत्मानंदमें और शांतिस्वानुभवमें बीताये जाते हैं। आपका बर्ताव शांत, आनंदमय, प्रेमयुक्त और छोटे-बडोंके साथ मित्रके माफिक रहता है। अपनी ही महती कभी कहते नहीं हैं। दूसरे संतोंके बारेमें आदरसे बोलते हैं। आदमीका पूर्वचरित्र और आदतें समझ लेकर उसके मनकी निष्कारण तकलीफ न होगी ऐसी ही बातें करते हैं। लेकिन उसके मनकी शुद्धीकी लिये कभी कभी कडी बात भी करतें हैं। या तो मस्करी में भी उसे उसकी भूलें बताते हैं। कभी कभी आदमीके मनकी ही बातें या प्रश्नोंके उत्तर आपके मुंहसे निकलते हैं। वे जिसके उसीको समझतें हैं। बहुत बारीकीसे देखे बिना आपका दर्जा कितना ऊंचा है वह समझमें नहीं आता है। महाराज कहते हैंः—"मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। आदमी खुद ही अपना शत्रु बनता है। मै तो अच्छे बुरे सबको साथ लेकर आगे बढता हूं। दूसरोंने भी ऐसा किया तो वे भी मेरी स्थिति पा सकते हैं।" महाराजके पास बहुत धनी लोग भी आये हैं। महाराज अपने लिये उनके हाथसे बंगले, बगीचे और जमीन खरीद ले सकते थे। लेकिन इरादा वैसा कभी किया ही नहीं। वे बोलते हैं, मैंने अपना ऐहिक जीवित खराब-कर लिया है। जिसको वैसाही अपना जीवित खराब करना हो उसने मेरे पास आना।" आप जैसे एक संतनें कहा है।:—

"गुरुकृपा मेरे, ऊपर हुई है। अमृतका पियाला मुझे मिला है। सब चीजे मुझमें ही हैं। मैंही गुरु और मैं ही शिष्य हूँ!"

(५२) **मेनिनजायटिस केसः**—एक दिन महाराज नासिकमें शिष्योंके साथ बैठकर एकदम बोलेः—परेलमें जाना पडेगा। क्योंकि वह तो मेरी कोठीमें मेरे पलंगपर मेरे घरमें ही बीमार होकर पडा है। बादमें एक तार भी आ पहुंचा कि "परेलमें नाना समर्थके भाईका लडका बीमार होकर

महाराजका ख्याल कर रहा है।" वहां जाकर देखा तो डॉक्टरोंने सब आशा छोड दी थी। आप तो वहां जाकर खाली गालियां देते बैठे। वैसे ही बहुत दिन गये। मरीज तो मरनेको ही आया।

(५३) **संकट पार हो गया**:--आखीरमें मरीजने खुद मृत्यु और उसके दूत देखें। बादमें महाराजको देखा। फिर कालिया के शिरपर नाचता हुआ बालकृष्ण देखा। पासमें रातदिन कपूर जलता ही था। महाराज भी बैठे थे। इस दृश्यके बाद मरीज सुधरने लगा।

(५४) **श्री० उपाध्ये**:—इस नामके एक बडे वेदांती वकील महाराजके पास हमेशा आते जाते थे। एक दिन आप दूसरे ही एक आदमीको महाराजके सामने लाये और कहा कि उस पर अनुग्रह करो। महाराज बोले, आज उसको तो नहीं लेकिन तुमको ही ध्यान योगका रास्ता बतानेका मौका है। इसलिए तुम ही मेरे सामने बैठो। श्री० उपाध्ये झट सामने बैठे। महाराजने वरदहस्त शिरपें रखते ही श्री० उपाध्ये डेढ घंटा समाधिमग्न हो गये। समाधि उतरना जरा मुष्किल होता देखकर महाराज खुद निद्रित हो गये। इधर समाधि उतर गयी। और श्री० उपाध्येने साथ बैठे हुए मित्रोंको अनुभवका वर्णन किया। भ्रूमध्यमें तेजस्वी चक्र कैसा बिजलीके जैसे घूमने लगा। अमृतपान कैसा हुआ। वगैरे बातें बहुत रसपूर्ण शब्दोंमें बताया। जब महाराज भी उठ गये और बोलने लगे:—" अजी, मुझे भी तो कुछ इस आनंदका लाभ कर देदो! एकने दूसरेको बतानेसे इन बातोंका अनुभव तो नहीं आता है। खुद अनुभव लेना पडता है। इसमें श्रद्धा जरूरी है। श्री० उपाध्येने सब अनुभव फिरसे बताये और बोले:—" महाराज! आप निद्रिस्त न होते तो मेरा वापिस आना अशक्य होता था।" बादमें सब लोग घर चले गये। लेकिन श्री० उपाध्ये आनंदमें इतने मग्न थे कि आपको घर पहुंचनेमें बहुत सी कठिनाइयां उत्पन्न हुई।

(५५) **श्रीमती गुप्तेका अर्धांगवायु**:—नासिकमें गुप्ते नामक इंजिनियरकी स्त्री अर्धांगवायुसे कमसे कम सालभर जगह छोड नहीं सकती थी। डॉक्टरोंका इलाज कुछ भी सुधार नहीं कर सका। एक दिन महाराजसे उस पर अनुग्रह करनेके लिये कहा। आप बोले:—ऐसा मुझसे होता तो खुद मैंही

अपंग क्यों रहता ? बादमें आप उसके घर गये और स्त्रीको उठाकर बोलेः— "जिसका आजतक ध्यान करती थीं उसका ही ध्यान करके खडी हो जाओ !" वह खडी हो सकी। घरमें थोडी उसी वक्त घूम सकी और चार आठ दिनमें बिलकुल ठीक हो गयी।

(५६) **श्री भावे**—आप एक पेन्शनर इंजनेर हैं। उपासनी महाराज और बहुतसे दूसरे संतोंका दर्शन लिया है। वेदांतके अभ्यासी हैं। महाराजसे प्रथम मिलनेको आये तब महाराजने टालना शुरू किया और जो उपासनी महाराजने कह है वही करते रहो ऐसा कह दिया। "मैं संत नहीं हुं; तुम्हारे जैसेका मित्र हूँ; ऐहिक भावसे तो तुम्हारा बच्चा हूँ और पारमार्थिक भावसे पिता हूँ।" ऐसा भी बातबातमें बोल दिया। श्री० भावे हमेशा आने जाने लगे। एक दिन बुरे संतोंपर भी संभाषण हुआ। "ऐसे बुआ और उनके शिष्य दोनों भी गड्ढेमे जाते हैं। मन शुद्ध होना। चमत्कार कोई प्राथमिक अवस्थाकी सिद्धी है। उसके पीछे नहीं पडना चाहिये।" वगैरे बातें बतायीं। उपासनी महाराजने स्नान, संध्या, पूजा, अर्चा जो बतायी हैं वह करते ही रहना चाहिये ऐसा उसको बताया। लेकिन उसी रास्तेसे एक दिन 'गजानन'का दर्शन होगा ऐसा भी बताया था। यह बात श्री० भावेने बतायी। दत्तजयंतीके दिन अनुग्रह करनेकी विनंती की। लेकिन अध्यात्ममें सब दिन समान हैं ऐसा बोल कर उस दिन भी टाल दिया और अगले बृहस्पतवारको गुरु बताएँगे वैसा करेंगे, इतना बोल दिया। उस दिन श्री० भावेको सामने बिठाया और ध्यान करनेका हुकुम दिया। दस मिनिटतक श्री० भावेका मगज बिलकुल खाली होगया था। श्री० भावेने यह बात बतायी। जब महाराज बोले—"मैंनेही तुम्हारे विचारयंत्र अपने तावेमें लिया। अगले भेंटमें मंत्र दिया। और श्री० भावेके बहुतसे प्रश्नोंके उत्तर दिये। एक दिन भावेने अपनेको कुछ दृश्य क्यों नहीं दीखते हैं। ऐसा प्रश्न करनेपर महाराज बोलेः—"हर एकका रास्ता न्यारा है। दूसरों के अनुभव अपनेको नहीं भी आये तो कुछ फिकर नहीं करना। कहे हुए काम करते रहना।" एक दिन श्री० भावेके घर महाराज दिव्य रूपमें खडे हुए उनको दीख पडे और ध्यानके समय शरीर इतना हलका होगया कि जैसा फूल। हवासेही उड जाएगा ऐसी डर मालूम होने लगी।

(५७) **श्री. घाणेकरः**—नासिकमें श्री. घाणेकर, उनकी स्त्री और तीन चार सालका लडका दर्शन के लिये जाने लगे। स्त्री और पुत्रको महाराज गालियां देते रहतें थें महाराजके सांनिध्यमें वह बच्चेको अच्छे संतोंके दर्शन होते चले। बहुत आनंद होता था। और वह बात बच्चा बता सकता था। लेकिन महाराज बोले "वह अगले दोचार जन्मोंमें बडा संत होगा लेकिन अभी जादह नहीं बचेगा"। लडका छः सालका होकर गुजर गया। मां—बाप अभीतक महाराजका सत्संग नही छोडते हैं। बापको तो महाराज बहुतसी गालियां देते हैं। तोभी वह दर्शन नहीं छोडता है।

(५८) **श्री. सायगांवकर फोटोग्राफरः**—आप महाराजके चेले हैं। एक दिन नागपूरके डॉ. खरेके भाई आकर बोले। "मेरे गुरुका फोटो नहीं है और मैं वह आपसे निकाल लेना चाहता हूं। गुरुकी आज्ञा लेकर दोनों ध्यानमें आपने सामने बैठे। श्री खरेनें ध्यानेमें गुरुके सुने हुए वर्णनपरही ध्यान किया और वही रूप श्री. सायगांवकरके ध्यानमें खडा हुआ! ध्यान उतरनेपर श्री. सायगांवकरने चित्र खींचा। वह देखकर श्री. खरे बिलकुल खुष हो गये। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि जो सत्पुरुष ईश्वरमय होगये है वे कभी भी किसी भी शुद्ध मनवाले आदमीके ध्यानमें सामने आकर खडे रह सकते हैं। इतनाही नहीं बल्कि वैसा शुद्धचरित् मनुष्य ध्यानमें किसीका भी रूप सामने खडा कर सकता है। क्योंकि बादमें श्री. सायगांवकर और श्री. खरेने वैसाही अपने सामने ध्यान करके श्री. खरेके पिताजी और माताजीके चित्र खिंचवा लिये। और भी एक बात है कि जब चित्र पूरा करनेका काम चला था, तब श्री. सायगांवकरको ऐसे अनुभव आये जो चित्रके व्यक्तीके जीवनमें हो गये थे। और जो श्री खरेने अपने किताबमें भी लिखे थे। श्री. खरेके गुरुके बारेमें 'शिवगीता' नामक पुस्तकका पठन करने की इच्छा हुई जो शिवगीता सौ साल पहले हुए श्री. खरेके गुरुने लिखी थी।

(५९) **वेलदे महाराजः**—आप नासिकमें बहुत साल रहे हुए मौनी संत हैं। गजानन महाराजके सत्संगमें आप बहुत समय रहते थे। स्लेटपर लिखकर दोनोमें बातें होतीं थीं। गजानन महाराजके कहनेपर आप मौन छोडकर बोलने लगे। लोग आपको मगज घुमाहुआ आदमी समझते थे। लेकिन महाराज कोही आपकी स्थिति ठीक समझगयी थी। आपके

साथमें अस्सी सालकी उमरवाले श्री. सालीमहाराजभी कभी कभी गजानन महाराजके दर्शनके लिये आते हैं।

(६०) **सारांश**—महाराजका मन बिलकुल खुला है। छुपकर पैसा माँगनेकी बात कभी होती नहीं है। गालियां भी चाहे तो बरसती हैं। पूजा नैवेद्य कभी सामने रख्खा जाता नहीं हैं। स्नानसंध्याकी जरूरत नहीं रखते हैं। साधारण शब्दोंमें वेदांतकी बातें बतायीं जातीं हैं। चाहे तो गाँवमें रहनेवाले शिष्योंके घर बहुत सालमें जाते नहीं हैं। चाहे बिना बुलाये भी हरदम किसीके घर चल भी पडते हैं शराबका प्रसाद कभी किसीको दिया नहीं है। शराब छोडनेका ही उपदेश देते हैं। बहुतोंने छोडीभी है। सब बातें शिष्योंके सदसद्विवेकशक्तीपर छोडी जाती हैं। " अनुभव लेओ। ऊपरसे अच्छा बुरा मत नहीं बनाना "। वही हमेशा कहते है। नजरसे ही अपवित्र वस्तूको पवित्र बना सकते है। रातदिन 'सोऽहम्' का जप करनेको बोलते हैं। " केवल सत्संगसे ही मैं सुधरगया हूँ " ऐसा हमेशा कहते हैं। संसार कुटुंबमें मैं एक बच्चासा हूँ ऐसा नम्रभावसे बोलते रहते हैं। ' पानी तेरा रंग कैसा ? जिसमें मिलावे वैसा ' ऐसी आपका चालचलन है।

महाराज कभी कभी हंसते खेलते बातें करते है। जब भी वेदांतकी बातें सहज रीतीसे समझा देते हैं। ऐसे समयमें जो बातें होती हैं उनमेंसे कुछ नीचे दी है।

" वारकरी लोग बोलते हैं। देह देवल है और आत्मा अंदर देव है। लेकिन यह बात उसको ही समझेगी जिसको अंदरका ज्ञान है। खाली संतोंके शब्द बोलकर बतानेसे वह आनंद नहीं होता है। जिसको अनुभव है वही सात्विक अहंकारसे बोल सकता है कि मैं जानता हूँ। जिसके पास बहुत पैसा है उसने थोडा दूसरेको दिया और बोला कि मैंने दिया तो वह बात खराब नहीं है। लेकिन जिसके पास हैही नहीं और खाली बोलता है मैं दे दूँगा ! तो वह बात खराब है। मन, बुद्धि और अहंकार इकट्ठा करके ' सोऽहम ' बोलो। फिर तुम्हारे कर्मसे तुम अलिप्त रह सकते हो। द्वंद्वोंके परे हो सकते हैं। उसीको सच्चिदानंद प्राप्ति होती है। ध्यान उसका मार्ग है।

" निर्गुण ध्यान कई लोगोंको कठिन मालूम होता है। लेकिन वही सीधा और सुलभ मार्ग है। जिससे समाधि सहज रीतीसे प्राप्त होती है।

निर्गुणका मार्ग गुप्त है। वह दीख नहीं पडता है। आदमी अपना कार्य ही करता जैसा दिखता है। लेकिन अंदरसे तो उसका परमात्मासे ही मिलन हुआ रहता है। ध्यानमें कुछ भी न दीखना यही एकचित्तता है। दीखनेकी चीज और देखनेवाला अलग जहां रहते ही नहीं वहां दीखेगा क्या? मृत्यु जीतने के बादका जीवन ऐसी ही समाधि प्राप्त कर देता है। बातोंमें समय मत गँवाओ। ईश्वर अंदर ही है। देखनेकी कोशिश करते रहो। बिना तुम्हारे समझते ही सद्गुरु तुम्हे ठीक रास्तेसे ले जाएगा।

"संत कबीरने कहा ही है:—मंदिर मसिजिदोंमें या वेदशास्त्र कुराणोमें तुम्हें परमात्मा नहीं मिलेगा। उपवास, तप, यात्रा, और प्राणायामसे तुम वहांतक नहीं पहुंच सकते हैं। वह तुम्हारे 'हंस'में ही मिलेगा। श्वास लेते छोडते यही आवाज होता है। यही "सोऽहं" मंत्र है।

"सब तो ईश्वरही है। लेकिन इसका अनुभव लेनेवालेकोही आनंदप्राप्ति होती है। खाली पोषाक ही बदलनेसे कुछ होनेका नहीं है। चित्त साफ करो। मनमें बुरे विचार आये तो भी उनको रोको। सोहं मंत्र जपनेसे यह काम होगा। और आहिस्ते आहिस्ते मन स्वच्छ, निर्मल, निर्गुण होगा। जब ही सिद्धियां तुम्हारे पास आएँगी। लेकिन उनके फंदेमें मत अटक जाना। सीधे अपने ध्येय तक चल पडो। जहां द्वंद्व मिट जाता है। सच्चे संतोंका यही कार्य है कि भक्तजनोंको अंदर रहने वाले खुदाका दर्शन करवा देना।"

महाराजके पास बहुत किसमके लोग आते हैं। अंध विश्वाससे एक भी शिष्य नहीं हुआ है। खुद अपने ही अनुभवसे संतुष्ट होनेके बाद महाराजको गुरु मानते हैं। यह बात ख्यालमें रखकर पाठकोंको आपके इस जीवितसे लाभ उठा लेना चाहिये। प्रेमसे आप तो सबको ही अपनी तरफ खींच लेते हैं। रहन सहन बिलकुल सीधीसाधी है। तो भी कभी उदास बैठे हुए दीख नहीं पडते हैं। पास कभी बहुत शिष्योंका जमाव बैठा हुआ नहीं दीखता है। दोचार आते हैं, तो दोचार बाहर निकल पडते हैं। इस प्रकार बहुत जनोंके साथ खुद बातचीत शांततासे कर सकते हैं।

(६१) स्वभाव और व्यक्तित्व:—श्रीगजानन महाराजका स्वभाव आनंदी है। हास्यविनोदके बडे शौकीन हैं। विनोद करते समय दूसरे आदमीको कुछ बात दुःखदायक होगी तो झट ऐसी भी बात कह देते हैं कि

जिससे उस आदमीका मन एकदम शांत हो जाता है। बाल ब्रह्मचारी हैं। रहन सहन साधी-सीधी और पोषाक अच्छा रखनेकी आदत है। नेकटाय, कॉलर, पिन वगैरेका भी उपयोग करते हैं। खाना-पीना तो बिलकुल हैही नहीं। चार-आठ दिनसे कुछ चीज चाहे तो खा लेते हैं। तो भी बिलकुल बच्चेके माफिक थोडी सी। चाय, सिगरेट, शराबमेंसे सिगरेट और शराब बिलकुल छोड दी है। दिनभरमें बहुत दफे चाय बनती है लेकिन वह भी आने जाने वालोंको देते हैं। खुद अपना कप भी दूसरोंको दिया जाता है। और लेंगे तो आधा कपसे भी कमती लेते हुए दीख पडते हैं।

इससे देखनेवालेको मालूम होता है कि यह कोई साधारण संसारी आदमी है। बडे योगीके सब चिन्ह गुप्त हैं। इससे पहले पहल आपके बारेमें किसीका मत तो बिलकुल उलटा भी हो जाता है। इस कम ताकद शरीरमें बडा जोरदार आत्मा होगा ऐसी कल्पना भी कभी नहीं होती है। नम्रभाव तो इतना है कि जैसे श्रीरामकृष्ण परमहंस बंगालमें हो गये वैसा ही। दूसरोंको चिठ्ठी लिखते समय अपना नाम नीचे लिखते हैं "झाडू", जैसा "झाडू" वाला सबके अखीरके पद पर है वैसा खुदको मानते हैं। और सबका मन साफ करनेवाले भी हैं।

"आईनेके माफिक अपना चित्त साफ करो। जिससे ईश्वरी तेजका प्रकाश उसीमेंसे परावर्तित होगा।" ऐसे शब्दोंमें एक समय आपने सुंदर उपदेश किया। बात बातमें कई एक दफे ऐसा उपदेश मिलता रहताही है यही सत्संग है। जिसको सत्यसंशोधन करना है उसको पहिले महाराजको ढूँढना पडेगा ऐसा आपका रिवाज है। ऐसे गुरुदेवही परमेश्वर हैं। आप जैसे संतोंकी कथाही अहंकार नष्ट करती है। संशय-भेदन करती है। ज्ञान बढाती है। जिसको अहंकार नहीं है वही 'संत' है।

लेकिन अहंकार बडी भूल करनेवाली चीज है। विद्यावंतोंपर तो झट पकड बिठाती है। इसलिये बोलते हैं कि पढतपंडितोंका अध्यात्ममें काम नहीं है। विद्या के साथ नम्रभावयुक्त भक्ति होना। अहंकार बिलकुल सूक्ष्म रीतीसे आदमीके मनमें फैल सकता है। और वह आदमीके समझमेंभी आना मुष्किल होता है जादूके माफिक वह तुम्हें भुलाता है। तुकाराम बोलते हैं।

" मैं ने अपनीही मौत देखी । अर्थ यही है कि अहंकार मर गया । " एकनाथ कहते हैं:—शरीरका प्रेम, सन्मानकी इच्छा, अपने महत्वकी कल्पना ये सब बातें जडसेही उखाड देनेपरही ब्रम्हप्राप्ति होगी । नामदेव कहते हैं:—" श्री विष्णुके श्रद्धावान भक्तोंपर अहंकारकी हवाभी हे परमेश्वर मत फिरने देना । वे मेरे भाई हैं । " श्रीगजानन–महाराजकी बात वैसीही है । शिरडीवाले सांइबाबा कहते हैं:—" मैं तो सबका सेवक हूं ! जो मुझसे मिलने आते है वे मुझपरी बडी मेहरबानी करते हैं । मैं तो क्षुद्र कीटकसा हूँ । आपकी मुझपर बडी कृपा हुई । " श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपासक तो इंग्लंड अमेरिकामें भी हैं । लेकिन खुद रामकृष्ण परमहंस कितने विनम्र थे, यह पीछे कह दियाही है ।

श्रीरामकृष्ण परमहंस रातको चुपचाप जाकर दूसरेके पैखाने साफ करते थे । हरिजनोंके आंगन स्वच्छ कर देते थे । भिख मंगिबोने फेंकेहुए अन्न और उनके खानेकी जगह खुद जाकर साफ करते थे । एम् नामक आपके एक भक्तभी वैसेही थे । बडे विद्वान् और ग्रंथकार होकरभी 'एम्' इसी नामसे लोगोंको मालूम हैं ।

'गुरुकृपाध्याय' नामक एक पुस्तक श्रीगजानन महाराजके बारेमें प्रसिद्ध हुई है। उसमें प्रसिद्ध करनेवाला शिष्य लिखता है:—" महाराज मुझसे कहते थे कि महाराज मेरे छोटे भाई हैं और मैं महाराजका बडा भाई हूं ऐसा मानते चलो । "

'गुरुशिष्य-विज्ञान-दीपिका' नामक और एक पुस्तक एक शिष्यने श्रीगजानन महाराजके बारेमें लिखी है उसमें वह लिखता है:—" श्रीगजानन महाराज एक महान् विभूति हैं । और ऐहिक–पारलौकिक सब बातें पूर्णतया जानते हैं । उमरसे जो बडा है उनको आप 'पिता' 'माता' 'चचा' इत्यादि नाम देकर मैं आपका बच्चा हूँ ऐसा कहते हैं आपके शब्दोंमें और आँखोंमें सदाके लिये 'प्रेम ही प्रेम' भरा हुआ मिलता है। सोलह सालतक 'परेल–बंबई'में रहकर किसीको आपका पता नहीं चला । हिमालयका या तपोवनका एकांतवास जैसा वहांही साध्य हुवा ! फिर आप 'योगी' हैं यह तो जानना बहुतही दूर ? ऐसे 'झाड्' को कितना प्रणाम करना ! "

कोईभी पास बैठा और उसके मनमें खराब विचार आये तो महाराजको पता लगता है। और कभी कभी बोलभी देते हैं कि "अब मैं तुम्हारा मन अपने काबूमें लेता हूँ।" और झट उस आदमीके विचार उसको सताना बंद कर देते हैं।

अब दूसरोंका मन साफ करनेका एक राजमार्ग महाराज बताते हैं। वही है "ध्यान-योग"। जो 'आर्त' या तो 'जिज्ञासु' हो उसके लिये यह बिलकुल सीधा और सुलभ मार्ग है और जिसको इच्छा हो उसे महाराज मदद भी देते हैं। फिर वह समीप हो या दूर हो। आदमी कैसा भी हो। उसको 'इच्छा' होना। 'निश्चय' होना।

ऐसे कई शिष्योंके अनुभव इस किताबमें दिये हैं। उनकी प्रगति किस रास्तेसे और किस प्रकार हो गयी वह इसमें बताया है।

ये अनुभव अलग व्यक्तिके अलग होते हैं। क्यों कि हर एक के मनकी अवस्था भिन्न होती है। तो भी पढनेवालोंको इन अनुभवोंसे आनंद और शांति प्राप्त होती है और मुक्तीका मार्ग मिल जाता है।

चतुर्थ खंड

कई महत्त्वपूर्ण संभाषण

[१]

अपनेको सर्व-शास्त्र-पारंगत समझनेवाला एक पंडित एक दिन महाराजके पास आया। और बोला:--"आपकी तारीफ सुनकर मैं यहां आया हूँ। हमें शास्त्रग्रंथोंमें जो कुछ कठिनाइयां मालूम होती हैं उनका आप निराकरण करेंगे और मेरे सब संशय नष्ट करेंगे, इस आशासे मैं आपकी तरफ आया हूं। मेरी आपपर पूरी श्रद्धा है।" बात सुनकर महाराजने जरा जाँचकर उसके मुंहपे देखा और एकदम समझ लिया कि पंडितजीको किसीने हमको कुंठित करके हंसी उडानेके लिये ही भेज दिया है। पंडित आगे बढकर बोला--"दो तीन दिनोंके पहले मैं यहां आया था। लेकिन आप बीमार हैं ऐसा सुनकर चला गया। आज फिरसे आया हूँ।"

महाराज--अरे भाई! लेकिन आपको किसने कहा कि मैं कोई महाराज हूं। मैं महाराज नहीं हूँ। मैं शास्त्र नहीं जानता हूं। और शास्त्रोंका विवरण तो बिलकुल नहीं कर सकता हूँ। ये यहांके सब लोग जानते हैं। फिर मैं आपके संशयोंका निरसन कैसे कर सकूंगा? आप बोलते हैं कि मुझपें आपकी पूर्ण श्रद्धा है। लेकिन वह श्रद्धा किससे उत्पन्न हुई? मुझसे किया हुआ कुछ चमत्कार आपने देखा है? विश्वास रखने योग्य कोई मेरे बारेमें अनुभव पहलेही आपको आया है? क्या आप मेरे कोई रिश्तेदार या मित्र हैं। या पूर्वजन्मकेही दोस्त होनेसे आज आपका मन बिना जाने ही मेरी तरफ खींचा गया है? आप देखते ही हैं कि मैं तो हमेशा बीमार ही रहता हूं। गुरुकृपाकी सहाय्यतासे मैं खोज कर रहा हूँ कि मृत्यु क्या चीज है? और इसी यत्नमें मैं मृत्युके ही पास जा रहा हूँ--नहीं, शायद उसीके गोदमें जा पडा हूँ। मृत्युकी पहचानत होते ही

मैं 'सोहं' मंत्रकी सहाय्यतासे ईश्वरको ढूँढ लूंगा। फिर मैं कौन हूँ यह बात मुझे विदित होगी। बादमें मुझे स्वानंदप्राप्ति होगी। फिर जगत्में ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है यह मुझे ज्ञात होगा। और उसके भी बादमें सद्गुरु-कृपासे मैं शास्त्रमेंकी सब शंकायें आपको सुलझा कर बता सकूँगा। जबतक वह स्थिति प्राप्त नहीं हुई है तबतक मेरे माफिक एक अनपढ और अनजान आदमी आप जैसे पंडितको कोई भी बात कैसी बता सकूँगा? तो भी मैं समझता हूँ कि कोई भी ज्ञानी वा अज्ञानीको जब ऐहिक जगतमें यश मिलनेके लिये, या पारमार्थिक मार्गमें कोई मददगार मिलनेके लिये संतके पास जाना ही हो तो पहले उस संतका संसारसे किस प्रकार संबंध है इस बातकी पूरी खोज किये बिना उसके पास जाना ठीक नहीं है। उसका चारित्र्य शुद्ध है ऐसी पूरी निश्चितता कर लेनेके बादमें ही उसके पास जाना। उसके बारेमें सिर्फ सुनी हुई बातों पर भरोसा रखकर कभी उसीके पास नहीं जाना चाहिये। संतोंके चरित्र पहले पढ लेना। उनके बारेमें पहले ही ठीक ठीक मनन करना। फिर अपनेमें सत्य और असत्यका अंश कहांतक है इसका भी विचार करना। बादमें स्वाभिमान और ज्ञानका गर्व अलग करके नम्रभावसे संतके पास जाना चाहिये। जो मनुष्य इतना करेगा उसको परमात्मा सब ऐहिक और पारमार्थिक संपत्तीकी प्राप्ति जरूर कर देगा इसमें मुझे संशय नहीं है।

मेरे खुदके विचारसे और सद्गुरुकी कृपासे मेरा ऐसा मत बना है। और हरेक मनुष्य संसारमें अपने पूर्वकर्मानुसार सुख या दुःख भोगता रहता है। इसलिये संतोंके पास कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्ति होकर भी वे ईश्वरका जो नियम है कि हरेक ने अपने पूर्वकर्मोंका फल लेनाही चाहिये, उसमे अदला-बदल नहीं करतें हैं। इनका इस संसारका कार्य इतनाही है कि जो कोई उनके पास आता है उसे अक्षया सुखका रास्ता बताना और उस रास्तेपर चलनेके लिये आशिर्वाद देना। ऐहिआ-सुख और दुःख अशाश्वत होनेसे संत उनपेख्याल नहीं रखतें हैं। ईश्वर साक्षात्कारी महान संत **तुकारामने** अज्ञानके अंधकारमें लडखडनेवाले लोगोके लिये जो विचार प्रकट किये वे बहुत सुंदर हैं। **तुकाराम** महाराज बोलते है:—"लोग डूबते हैं यह अपनी आंखोंसे मैं नहीं देख सकता हूँ। इनकेलिये मुझे उनपर बहुत दया उत्पन्न होती है।"

पंडितजी ! आप तो विद्वान हैं ही। इसलिये मै आपसे विनती करता हूं कि अब यह सब शास्त्रोंका अभ्यास छोड दीजिये। किसीकोभी शुष्क उपदेश करते बैठनेका धंदा अब छोड दीजिये। विशेषतः संतोकी हंसी उडानेकी चेष्टा छोड दीजिये। संतके पास जाना हो तो सचमुच पूजनीय भावनासे और विनम्र चित्तसेही जाना चाहिये। अब तो आप साठ सालकी उमरतक आये दीखते हैं। संध्या, अर्चन और वंदन समयपर कभी काम नहीं देता है। अंतःकरणमें सच्ची ईश्वरकी भक्ति होनी चाहिये। सर्व वस्तु-मात्रमें परमात्माही भरा हुआ है। उसे देखनेका अभ्यास रखना चाहिये। अब किसी सच्चे संतके पास जाइये। और उसके पांवतले बैठकर सच्ची ईश्वरभक्ति सीख लीजिये।

श्रीगजानन महाराजके इन शब्दोंका परिणाम उस पंडितपर बहुत कुछ हुआ। वह बोलाः—महाराज ! आपने तो अपना सोऽहम्का झाडू मुझ-परसे अच्छी तरहसे फिराफिराकर मेरे मनमेंका सब कचरा निकाल दिया। सचमुचही मैं तो आपकी हंसी उडानेके लियेही आया था। पहले एक दफे मैंने आपको कहीं देखा था। जबसे आपकेबारेमें मेरा ग्रह कुछ खराबही हुआ था। इसीलिये आज आपको कुंठित करके हंसी उडानेके लियेही मैं आया था। लेकिन आपने मेरी मनःस्थिति पहचानकर, मुझें मनःपूर्वक, निःस्वार्थी और प्रत्युत्तम उपदेश किया। जिससे मैं आपका अत्यंत ऋणी हूं। आपही के चरणोंपें सिर झुकाकर मैं आपको प्रणाम करता हूं। आपही सच्चे गुरु है। मेरी उमरकी क्या कदर है ? मेरे जैसे असंख्य लोगोंको आप उपदेश दे सकनेमें सामर्थ्यशाली है। महाराज बोलेः—आप तो विद्वान् ब्राह्मण है। आपका सन्मान करना मैं तो अपना कर्तव्य समझता हुं। आप ही मेरे लिये गुरुकें स्थानपे हैं। अब मैं एक दृष्टांत देता हुँ उसे ध्यानपूर्वकेा सुन लीजिये। बहुत सालके पहले एक राजा हो गया। उसने राज्यमें ढंढोरा पिटवाया कि जिसे ज्ञानेश्वरी मालूम हुई है उसने हमें आकर मिलना। सुनकर ज्ञानेश्वरीका पारायण करनेवाले बहुतसे पंडित उससे मिलने जाने लगे। कोई बोलते थे हमने पचीस, कोई पचास, तो कोई सौ दफें ज्ञानेश्वरी पढ ली है। राजा तो हरेकको अंधेरी कोठरीमें कैद करके रखते चला। एक गरीब दरिद्री ब्राह्मणने भी ढंढोरा

सुना था। और मालूम भी हुआ था कि जो ब्राह्मण राजाके पास गये वे वापिस नहीं आये। वह समझा कि राजाके घर वे लोग मजा करते रहे होंगे। तो हम भी चंदनवंदन सजकर वहां क्यों न जाना? जिससे अपना दारिद्र्य तो जाएगा ऐसा उसने विचार किया। उसे ऐसा भी ख्याल हुआ कि जब कोई वापस आयाही नहीं है, तब राजा तो किसीको कुछ प्रश्न भी नहीं करता होगा।

इस प्रकार विचार करके वह तो राजासे मिलने गया। राजाने उसे भी दूसरोंके साथ कोठरीमें बंद कर दिया। इस ब्राह्मणकी पत्नी बडी साध्वी और भक्तिमान् थी। 'सोहम्' से उसका अंतरात्मा तदाकार हो गया था। पतीको भी वह अपना ही अंतरात्मा मानती थी। ऐसी पत्नीकी महान् दशा क्या कहना है? वह तो तीन दिन तक उपोषण करती रही। और बादमें एकदम राजाके सामने जाकर खडी हो गयी। राजासे अभीतक कोई स्त्री तो मिलने नहीं आयी थी। इससे राजाको बहुत आश्चर्य मालूम हुआ। फिर रानीसे बोला कि उसे ठीक ठीक आदर बता कर स्वागत करो। रानीने आदरातिथ्यसे उसका सत्कार किया और पहननेके लिये उंचे वस्त्राभरण भी दिये। राजाने बादमें अपने ढंढोरेकी बात कहकर पूछा कि आप किस कारणसे आयी। वह बोलीः—वैसा तो मेरा कुछ हेतु नहीं है। मेरा पति आपकी तरफ आया है। मुझे छोडकर आज तीन दिन हुए हैं। आजतक राह देख कर रही। खाना पीना भी नहीं किया। कृपया मुझे उनकी भेट कर दीजियेगा। राजाने उत्तर दियाः—वे कहां है वह मैं तो बराबर नहीं कह सकता हूं। मैंने ज्ञानेश्वरी पढनेवाले सब पंडितोंको कोठरीमें बंद कर दिया हैं। शायद उन्हींमे वे भी होंगे। वह स्त्री बोलीः—"राजन्! खुद आप तो भी कुछ ज्ञानेश्वरीके बारेमें जानते हैं? जो ज्ञानेश्वरी (गीता) का अर्थ समझता हो वह कभी आपके राज्यमें रहेगा? वह हर जगह रह कर अलग रहता है। वह हमेशा अनासक्तही रहेगा। वह आपके तरफ क्यों आएगा? क्यों यह बात आप नहीं जानते हैं?"

बात सुनकर राजाने उस स्त्रीका सामर्थ्य जान लिया और यह उसे वंदन करके उसने सब पंडितोंको अपने सामने बुलवा लाया। और उनसे बोला देखो भाइयों! इस स्त्रीकोही ज्ञानेश्वरीका सच्चा अर्थ मालूम हुआ है।

इसलिए सबने उसेही गुरु मानना क्यों ठीक नहीं होगा ?" बादमें राजाने सबको छोडकर दानदक्षिणा देकर बिदा किया।

पंडितजी ! मेरी कथा खतम हुई। इससे आपको जो बोधलेना हो वह लीजिये। तो भी और एक अखीरी बात कहतां हूँ। **श्रीगुलाबराव महाराजके** पत्र और चरित्र अब प्रसिद्ध हुए हैं। कृपया वे लेकर पढलीजिये और उनपर विचार कीजिये। उनके सहवाससे और ग्रंथोंसे मुझें बहुत कुछ लाभ हुआ है। करके जानबूझकर मैं आपसे कह रहा हूँ। कोईभी छोटा बडा आदमी जब ऐहिक या पारमार्थिक बातोंको चाहता है तब वह परमात्माकी तरफ जाता है और प्रार्थना करता है। मंदिरमें हम जातें हैं जहाँ देवता तो पत्थरकीही रहती है श्रद्धापूर्वक हम उसीको राम या कृष्ण समझते हैं। और प्रार्थना करतें हैं जिसका फल हमे आज या कल मिलताही है। सबोंके बारेमें एकही बात सत्य है कि जब कोईभी कुछ चाहता है और इसलिये यत्न करके फल पाता है वह उसीके यत्न का फल है। फिर वह यत्न इस जन्मका हो या दूसरे किसी जन्मका हो। उसे तुम दैव, प्रारब्ध या यत्न नाम दे दो। इसकेलिये, ज्योतिष जानने वालेकी, या साधूकी, या ईश्वरकी भी जरुरत नहीं रहती है। तो भी स्त्री-पुरुष अपनी इच्छा सफल होनेकी आशासे सच्चे बुरे साधूके पास जातें ही हैं। कोई नौकरी, कोई बच्चे, कोई रोगनिवारण, कोई ईश्वर दर्शन इत्यादि बातोंके लिये संतोंके पास जाते हैं। लेकिन मैं तो अंतःकरणपूर्वक कहता हूँ कि जो मनमें ही 'सोहं' जप करते रहेगा वह अपनी इच्छाएं आपही पूरी करले सकेगा। इसलिये एक बात जरूरी है कि बर्ताव शुद्ध होना चाहिये। थोडा तो भी वैराग्य होना चाहिये। "सोहं" मंत्र सब इच्छाएं पूर्ण करेगा ऐसा दृढ विश्वास रखना चाहिये। ऐसा आत्मविश्वास जिसे प्राप्त होगा उसे साक्षात्कार और सद्गुरुप्राप्ति जरूर होगी। कुविचार भी फिर बंद होगे। एक बात ख्यालमें रखना कि इस मंत्रका जप मनमेंही होना चाहिये और तुम मंत्र जप कर रहे हैं यह बात दूसरों की समझमें भी न आनी चाहिये। जप इतना अखंड और निरंतर करना चाहिये कि नींदमें भी अंदरसे आवाज आते रहनी चाहिये। जब यह जप मनके साथ एकरूप होगा तब उसे षट् चक्रोंमें से एक पर जमा देना चाहिये। इतना करने पर मनुष्य जब गहरी नींदमें हो तो भी जप करनेका आदेश अंदरसे ही मिलता है। ऐसे समयमें

अंदरके ईश्वर से जो मनुष्य जो कुछ प्रार्थना करेगा वह सफल होगी इसक पूरा निश्चय रखना चाहिये।

बाहरी परमेश्वरकी प्रार्थना करनेकी पद्धतीसे यह रीति बिलकूल अधिक श्रेयस्कर है। इच्छाही सफल होगी ऐसा नहीं तो पूर्व जन्म और इह जन्मके यत्नोंकेअनुसार वह आत्मानंद और परमसुख प्राप्त कर लेगा। इसलियेभी सद्गुरु की कृपा और मदद इन दोनोंकी जरुरत है। जो कोई ऊपर कहे हुए माफक करेगा उसे कहा हुआ अनुभवभी मिलेगा। वे नकली साधुओंके कब्जेमें कभी नही जाएँगे। अच्छा अब जाइये और मेरे कहे हुए ज्ञानका फैलाव कीजिये। और बहुतसे कुटुंबोंमेंके आर्त जीवोंको समाधान देनेका यत्न कीजिये। आप विद्वान् है इसलिए यह कार्य आपने करना ठीक होगा ऐसी मेरी इच्छा है।

[२]

एक दिन महाराजका नाम सुनकर एक बहुश्रुत आदमी महाराजकेपास आया उसने बहुत कुछ यात्रा करके बहुतसे संतोंके दर्शनभी किये थे। दोनोंमे लंबीचौडी विवरणकी बातें हुई। धार्मिक और आध्यात्मिक बातोंमें इनका उपयोग होने लायक है। इसलिए काटछाट कियेबिना यहां दिया जाता है।

महाराजः—आप शास्त्राधारसे बात करते है। कृपया बताईये कि आपने धर्मसंबंधी कौनकौनसीं किताबें पढीं हैं।

गृहस्थः—सब उपनिषद्, योगवासिष्ठ, पंचदशी, भगवद्गीता और ज्ञानेश्वरी इत्यादि ग्रंथ हमने पढे हैं।

महाराजः—इनमेंसे मैंने तो एक भी पूरा पढा नहीं है। मैं अब ऐसा पूछता हूं कि आप वे सब ग्रंथ समझ गये है? याने पढनेसे आपकी सब शंकायें दूर हो गयीं हैं?

गृहस्थः—जी नहीं! मेरा तो ऐसा समझ हो चुका है कि सद्गुरुकी सहाय्यता लेने बिगर पढना व्यर्थ है। इसलिए मैंने किताबें अब दूर कर दिये हैं।

महाराजः—मैं समझता हूं कि यह बात आपने ठीक की है। बचपनमें मैंने एक श्लोक पढा था। उसका अर्थ है "हे मानव! ज्ञान, शास्त्रका तो

पार ही नहीं है और तेरा जीवित तो अत्यल्प है।" वेदान्तका अध्ययन और अध्यापन बुरा नहीं है। लेकिन पहले उसकी पहचानत सद्गुरुमुखसे कर ली होगी तब ही वह काम देगा। अनुभवका ज्ञान कुछ अलग ही रहता है। अच्छा आपने वेदान्तका अभ्यास किया है यह बात तो ठीक ही है। आपने कोई संतोंके चरित्र पढें हैं ?

गृहस्थः—जी हां ! रामदास, अक्कलकोटकर स्वामी और श्री गुलाबराव महाराजके चरित्र और विचार मुझे मालूम हैं।

महाराजः—**श्री. गुलाबराव महाराजनें** 'दोषदृष्टि और उसके प्रकार' इस विषय पर जो विचार प्रकट किये है वे आपके ख्यालमें हैं ?

गृहस्थः—जी नहीं। मुझें ख्याल नहीं हैं।

महाराजः—फिर मैं उसीके बारेमें कहूँगा। आप दोष दृष्टीके तीन प्रकार बताते हैं। (१) वैय्यक्तिक (२) सामाजिक व (३) शास्त्रीय. महाराज कहते हैः--पिता पुत्रको कहता है 'अब मैं तेरी शादी कर दूंगा !' इन शब्दोंसे पुत्र को आनंद होता है इसमें कुछ शक नहीं है। तो भी यह आनंद और पत्नीके सहवाससे होनेवाला आनंद, इन दोनोंमें भेद है। वही फरक ज्ञानी (जिसें ब्रम्हदर्शन हुआ है) और वादी (जिसे शब्दचर्चाहि मालूम है) इन दोनोंमें है। अंधा आदमी रंगोंका लाल, पीला, हरा इत्यादिका स्पष्टीकरण करेगा तो लोग उसकी हंसी उठाएंगे। उसी प्रकार स्वानुभवरहित वेदांत चर्चा हास्यास्पद है। वह स्वानुभव मार्ग जो कोई शिष्योंको बताएगा वही सच्चा गुरु है। ढोंगी गुरु आश्वासन देता है, तुम्हें साक्षात्कार होगा"। और गरीब शिष्य उसीके भरोसे रहकर अखीरमें निराश होते हैं।

बादमें वे लोक वेदांत और पूजन अर्चन छोड देते हैं और सर्वसामान्य नीतितत्त्वोंका अवलंब करते रहतें हैं। और दूसरोंकी तरफ देखनेकी उनकी दृष्टि बिलकुल अलग हो जाती है। बादमें उन्हें हरेक मनुष्यमें दोष दीखने लगते हैं।

हमारे मतसे दोष दृष्टीसे देखना एकप्रकारसे ठीक है और दूसरे प्रकारसे खराब भी है। ढोंगधत्तूरे मचानेवाले साधुओंके जालमें न फंसनेकेलीये यह आदत तो ठीकही है। लेकिन जब वही आदत सच्चे संतोमें भी दोष बताएगी तो ठीक नहीं है। अन्नभी प्रमाणबद्ध पद्धतीसे नहीं खाया तो वही विष बन

जाता है। और विषभी प्रमाणबद्ध पद्धतीसे खाया तो उससे रोगनिवारण होकर शरीर पुष्ट भी हो सकता है। दोषदृष्टीका उपयोग करनेके पहले हमे यह देखना चाहिये कि दोष सचमुच देखनेके लिये जरूरी रहनेवाली कुशाग्रबुद्धि और सूक्ष्म दृष्टि सचमुच हममें हैं या नहीं है ? ऊपर ऊपरसे दिखनेवाले दोषोंको ही तो हम सच्चे दोष नहीं मानते हैं ? इस प्रश्नका बराबर उत्तर हमें खोजकर निकाल लेना चाहिये। ऐसा न होगा तो अनाजमेंसे कंकड निकालनेके बदलेमें हम अनाजही फेंक देते चलेंगे। ऐसी भूल करने वालेको कोई भी 'समझदार' आदमी नहीं कहेगा।

इस लिये प्रथम मनुष्यको अपनी दृष्टि सूक्ष्म और कुशाग्र कर लेनी चाहिये। नहीं तो गुणकोही दोष मानकर गुणही फेंक दिये जाएँगे। जो बात हमारी समझसेही विरुद्ध है उसे दोषदृष्टीसे देखना इसे मैं **वैयक्तिक दोषदृष्टि** बोलता हूं। यही दोष दृष्टि, कौटुंबिक, सामाजिक और धार्मिक जीवनमें बिघाड कर देती है। दैवशाली और भाग्यवान् आदमी प्रतिकूल परिस्थितीमें झगडते रहनेवाले दूसरे सब लोगोंको 'दोषी' समझता है। और उनसे घृणा करता है। उनमें उसे दुर्गुण और दोषही दीखते हैं। यही **वैयक्तिक दोष दृष्टीका** सबसे बडा दुष्परिणाम है।

नकली साधु बहाना बताकर दूसरोंसे द्रव्य संपादन कर लेता है। बादमें हजारों लोगोंको भोजनसे तृप्त करके अपने दानधर्मका डंका बजाता है। और जनसंमर्दसे दूर रहनेवाले आत्मचिंतन–मग्न साधूको नीचले दर्जेका मानकर उसकी द्रव्यहीनताके लिये उसकी निंदा करता है। इससे मालूम होगा कि **वैयक्तिक** दोषदृष्टीका यह परिणाम बडा घातक है। अतः अच्छे आदमीको उससे दूर रहना ठीक होगा।

दोषदृष्टीका दूसरा प्रकार हैं **सामाजिक दोषदृष्टि**। कोई एक विशिष्ट मर्यादातक यह ठीक होगा। लेकिन इसमें भी अच्छे विभागसे बुरा विभागही अधिक है। जो कोई बातें किसी भी समाजकी समझमें दोषयुक्त होती हैं वे सब बातें उस समाजके सब लोक दोषास्पदही मानते हैं। लेकिन जब एक समाज दूसरे समाजसे मूल घटनामें ही अलग है तब एककी बातोंको दूसरेने दोषयुक्त समझना ठीक ही है। और समाजमें की हरेक व्यक्ति भी उसी समाजके

दूसरे लोगोंकी दृष्टीसे थोडा भी तो दोषी ही कहलाया जाता है। कई समाजहित-चिंतकोंने समाजकी सब संपत्ति समाजमेंही समान हिस्सेमें बांट देनेका खयाल किया। उन्हें यश नहीं मिला। और भी एकाध व्यक्ति समाजहितके लिये अपने खुदके कुटुंबका खयाल नहीं करता है तब रिश्तेदार उसे मूर्ख कहते ही हैं। अच्छा और जब वही आदमी समाजकी चिंता छोडकर कुटुंबकी ही फिकिर करते रहेगा तो समाज उसे दोष देता है। इससे मालूम होगा कि **सामाजिक** दोषदृष्टि बहुत कठीन बात है और उससे गोलमाल ही जादह होता है। आदमी न यह कर सकता है न वह कर सकता है। तो भी इस दृष्टिसे देखनेवाले लोगोंको 'समाज–हितवादी' नाम लेकर कीर्ति बढानेका मौका मिल जाता है।

तीसरा प्रकार शास्त्रीय या **धार्मिक दोषदृष्टि** है। यह सबसे ठीक है। और यह मनुष्यको पारमार्थिक बातोंमें कल्याण होनेकी संधि देता है। इसमें जो कुछ शास्त्रके विरुद्ध है वह खराब माननेकी प्रवृत्ति रहती है। जिसको यह दृष्टि मिल गयी है वह ढोंगी साधूके जालमें कभी नहीं फँसेगा। खुद अपना मानवी जीवितका ध्येय संपादन करके वही आदमी अपने समाजकी भी उन्नति कर देगा। लेकिन यह दृष्टि भी सद्गुरुप्रसादसे ही प्राप्त कर लेनी पडती है। क्योंकि खाली ग्रंथ पढकर या चर्चा करके कोई भी बातका निश्चय बराबर नहीं कर सकता है। पढते वक्त अपने ही मतसे मेलखानेवाले शास्त्र–वाक्य वह बराबर मानेगा और बाकी सब झूट मानेगा।

कोई वारांगना भागवत पढेगी और गोपियोंका विभाग देखकर बोलेगी:—मेरा धंदा तो शास्त्र प्रमाण युक्त है। फिर उसके सुधारकी आशा नहीं रहती है। पढनेसे अपने विचारोंमें कुछ उन्नति होनी चाहिये। जबतक पढना उन्नतिप्रद नहीं होता है तबतक मेहमानको बासी भोजनसे तृप्त करने लायक उसमें त्रुटि है।

इससे समझेगा कि शास्त्र पढनेसे भी सद्गुरुकी पहचानत नहीं होती है। बहुतसे विद्वान् इसी कारणसे ढोंगी गुरुओंके पीछे पडते हैं। परिस्थितिके अनुसार सच्चे साधुओंके वर्तनके प्रकारभी भिन्न भिन्नही रहते हैं। इसी लिये ऊपरी दृष्टीसे देखनेवालोंको सच्चे साधूकी पहचानत कर लेना कठिन मालूम होता है। अपनेको 'साधु' कहलाने वाले बहुत लोग वेदांत चर्चामें

प्रवीण होते हैं। लेकिन उसीकी सहाय्यतासे, सुनने वालोंको अपने जालमें फँसानेकी ही चेष्टा करते रहते हैं। सच्चे 'साधक' ऐसे 'साधू' के संसर्गमें आकर अखीरमें बिलकुल निराश हो जाते हैं। उन्हें वेदांतानुभव के बदलेमें शब्द चर्चाही मिलती है। जलके बदलेमें मृगजलका तालाब मिलता है।

इसी लिये योगवासिष्ठमें कहा है कि ईश्वरीकृपाबिना सद्गुरु नहीं मिलता है। कृपामय माँ बापके घरमे जन्म लेना वह बात मनुष्यके हाथकी नहीं हैं दैवी संस्कारोंपर निर्भर हैं। मद्यपानके लिये बच्चा बेच देनेवाले माँबाप पृथ्वीतलपर हैं। सद्गुरुनें योग पढाना वह शाब्दिक न होकर स्वानुभवयुक्त होना चाहिये। शिष्यको भी मालूम रहना चाहिये कि सद्गुरुको कौन सी बातें पूछना और कौनसी बातें प्रयत्नसे ही समझ लेना। क्या माँगना और क्या नहीं माँगना।

श्री गुलाबराव महाराजने जो कुछ कहा उसमेंसे थोडासा मैंने कहा है। और वह मैं मानता हूँ। महंतोंका मत पहचानना बडा कठिन है। कभी वह वज्रसे कठिण होता है कभी मोमसे नरम! मेरी तो समझ है कि प्रथम मनुष्यने साकार ईश्वरका ही अर्चन करते करते बादमें निराकारकी तरफ चल पडना अच्छा होगा।

अब **श्री गुलाबराव महाराजने** राजयोग, चमत्कार और प्रेम-समाधि इनके बारेमें जो कुछ कहा है वह सारांशमें मैं बताऊँगा। तुम शायद बोलोगे कि मैं तो दूसरोंका ही ज्ञान बता रहा हूं। अपना खुदका तो कुछ कहता ही नहीं हूं। बात सच है। मेरे गुरुने मुझे वेदांतकी चर्चा और उस चर्चाकी सहाय्यता करनेवाली लंबीचौडी बातें बतायीं ही नहीं हैं। सिर्फ खाली मुझे 'सोहम्' मंत्र बताया। सब शास्त्रचर्चाके पैलीवर रहनेवाले 'ब्रह्म' का दर्शन करवाया। और 'तत्त्वमसि' में क्या सत्य है उसका प्रत्यय दिया। और दूसरा कुछ कहनेका रहा ही नहीं ऐसा भी बोल दिया। इस लिये मुझे दूसरे संतोंका ही दृष्टान्त देना पडता है। मैं और भी कह सकता हूँ कि मेरे गुरु ही मेरे मुखसे बोलते हैं। अब इस मेरे कहनेकी तरफ दूसरे दृष्टिकोणसे ही आप देख सकते हैं। बोलते हैं कि दुनियामें जो कुछ ज्ञान है वह सब 'व्यासोच्छिष्ट' है। जब सारी बात तो ऐसीही है तब मेरे जैसे जड बुद्धि और अनाडी आदमीने दूसरे संतोंका

आधार लिया तो क्या हरज है। अध्यात्म विषयके कुछ ग्रंथ मैनें देखे हैं और उनमेंसे मैं कुछ थोडासा कह सकता हूँ। मुझे शब्दोंका ज्ञान ही नही है। सिर्फ शब्दोंमें जो अर्थ है उसीमें मुझें थोडा कुछ गम्य है। **तुकाराम एकनाथ** जैसे संत भी शब्दोंपर निर्भर नहीं थे। तो भी शब्दोंका अर्थ ग्रहण करनेकी उनकी ताकद अजब थी।

प्रेमसमाधीके बारेमें श्रीगुलाबराव महाराज कहते हैं:—अपनी सब भक्ति जब ईश्वरके जगह सर्वथैव एकत्रित (केंद्रीभूत) होगी तो अपना मन बाकी सब निरर्थक विषयोंसे परावृत्त होता है। लेकिन एक बात ख्यालमें रखना चाहिये कि जब आदमी खानेपीनेके और शारीरिक शौकके ही ख्यालमें रहेगा और बाकी जीवनमें बेफिकिर रहेगा तब उसका चित्त ईश्वरमें केंद्रित हुआ है ऐसा नहीं माना जाएगा। हमने ऐसे कई लोग देखे हैं। जो खानापीना और शरीरके बारेमें खयाल ठीक रख कर बाकी कौटुंबिक वा सामाजिक व्यवहारोंमें बेफिकर रहते हैं। वे सच्चे ईश्वरभक्त नहीं होते हैं। सच्चा ईश्वर–भक्त खाता पीता रहेगा और देहपर रहता है तब बाकी सब व्यावहारिक बातोंमें भी कडी कोशीश करता रहेगा। और जब वह प्रेम-समाधीमें मग्न हो जाता है तब व्यवहारकाही ख्याल छोड देगा इतनाही नहीं बल्कि फिर शरीर और खानेपीनेकी भी फिकर छोड देता है। प्रेमसमाधीमें चढते चढते वे सब बातें छोड देते हैं। सच्चे ईश्वरभक्त चमत्कारभी करते नहीं हैं। क्यों कि अपने प्यारे परमात्माको वे इससे तकलीफ देते हैं, उसकी शांतिमय अवस्था विचलित करतें हैं, ऐसा समझतें हैं। भक्त ईश्वरपर जो प्रेम करता है उससे इसके मनकी ऐसी अवस्था होती है। सचमुच सर्वशक्तिमान् ईश्वरको तकलीफ होनेकी बात यहां नहीं है। ज्ञानमार्गी मनुष्य ईश्वरसेवाके लिये तन, मन, धन, आत्मा सब कुछ फेक देनेकोही तय्यार होता है। बदलेमें वह कुछ चाहताही नहीं है। संकटसमयें भी ईश्वरको बुलानेका उसके मनमें आताही नहीं है। उसे मनही रहता नहीं है। फिर उसे संकट क्या चीज है वह कैसा मालूम होगा?

श्रीतुकाराम प्रेम समाधीकी स्थिति वर्णन करते हैं:—हमेशा मेरी आंखोंमें तेरी मूर्ति भरी रहने दे। तेरे मधुर नामरूपपरही मेरी प्रेमसर्वस्वकी

कुर्बानी करने दे। मेरे हृदयके राज्यका तूही पूरा कब्जा ले। मैं और कुछ नहीं चाहता हूं। सब सुख तुझमेंही है। मेरा चित्त जहां पकडा गया है उससे दूसरा कुछ मेरे लिये रहाही नहीं है। ध्यानमें ईश्वर, मनमें ईश्वर, जागृतीमें ईश्वर, स्वप्नमें ईश्वर, इंद्रियोंमेभी ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर! दूसरा ख्यालही नहीं है। मैं कहताहूं तुझे आंखोसे देख लिया। अब सामनेसे तूं हटही नहीं सकता है! ॥ २ ॥

प्रेम समाधीमें प्रेमकी क्या बहार आती है। अंतर्बाह्य जीवन में क्यां संतोषमय शांति है। इसका **तुकाराम महाराजने** यह वर्णन किया है। शास्त्रमें इसके बारेमें लिखा है कि साधु शांत और प्रसन्नचित्त होता है। तुकाराम महाराजभी बोलते हैं कि उसीकी दूसरी अवस्थाही नहीं रहती है।

अब साधु जब समाधीमें नहीं है तब उसके जीवनका वर्णन **श्री संत तुकाराम** करते हैः—" हम परमात्माके दास मोमसे नरम और वज्रसेभी कठिन होते हैं! " लोंगोंसे व्यवहार करते समय वे कडी कोशीशसे आचरण करते हैं। और प्रेमभी मनमें रखते हैं। जो मनुष्य अपना मन ईश्वरकी तरफ लगानेके बारेमे ऐहिक सुखोंकी खोज करता रहता है और संतकी सेवाकाभी साथ साथ बहाना करता है उसे **तुकाराम महाराज** गालियां देकर कहते हैंः—" ऊठ साले! मेरे सामने मत बैठ! साधारण लोग ऐसी गालियां देनेका काम खराब समझते हैं। लेकिन जब तुम संत समाजमें रहना चाहते हो तब तुमने कैसा रहना चाहिये इसीका ज्ञान इससे मिलता है। संतही प्रेम समाधीमेंसे जब व्यवहारमें आता है तब इतना कडा मनवाला बन जाता है।

कविश्रेष्ठ–**भवभूति** श्रीरामचंद्रका भी ऐसा ही वर्णन करता हैः—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति ॥

राजयोगके बारेमें **श्री गुलाबराव महाराज** बोलते हैंः—सब योगाभ्यासमें राजयोग उत्तम है। **श्री गोरखनाथ** जैसे महान योगी कहते हैं कि राजयोगका आचरण सीधा है तो भी हठयोगकी थोडीबहुत मदद लिये बिन राजयोगमें सिद्धि प्राप्त होना कठिन है। हठयोगसे, शरीरपर असर करनेवाली तमोगुणात्मक द्रव्यशक्ति, और प्राणेंद्रियोंपर काबू करनेवाली

रजोगुणात्मक क्रियाशक्ति, हमारे काबूमें आ सकती है। राजयोगके अभ्याससे खाली ज्ञानशक्तिसे उत्पन्न होनेवाले संस्कार काबूमें आसकते हैं और उन संस्कारोंको नष्ट करना भी साध्य होता है। यह सब प्रकारकी दमनशक्ति अभ्यास और वैराग्यसे प्राप्त होती है। **वैराग्यविहीन अभ्याससे** मनुष्य अखीरतक नहीं पहुंच सकता है। उसे अभ्यास बीचमें ही छोड देना पडता है। क्योंकि विषयवासनाएँ उसे खींच लेतीं हैं। फिर फिरसे उनसे झगडते झगडते आदमी हैरान होता है और अभ्यास ही छोड देता है। **अभ्यास-विहीन वैराग्य** भी साधारणतः वैसाही होता है। क्योंकि मनोवृत्तिओंको कैसा खींच लेना पडता है वह तो अभ्यास न होनेसे उसे समझता ही नहीं है। अतः अंततक मनुष्य समाधान नहीं पाता है। " अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः "।

वेदांतके तत्त्व ध्यानसे पढकर उनपें गहराईसे ध्यान देकरही तमोगुणपर कब्जा हो सकता है। इसे ' श्रवण ' नाम है। और यम'नियमोंका' वह एक विभाग है। ' यम ' और ' नियमों'से रजोगुण अर्थात् इंद्रियोंके व्यापार काबूमें लाये जा सकतें हैं। ' आसन 'के अभ्याससे शरीर स्थैर्य उत्पन्न होता है ! और ' प्राणायाम ' के अभ्याससे क्रियाशक्ति काबूमें आती है। साधक इन सब बातोंको आचरणमें लानेके बाद मनकी मूढावस्थाका विनाश कर सकता है। ' ध्यान ' और ' धारणा 'से मनकी व्यग्रता का विनाश करके मनुष्य एकाग्र चित्तताके सहाय्यसे ' सविकल्प ' समाधि प्राप्त कर सकता है। यही अवस्था परिपक्व होनेके बादमें साधकको ' निर्विकल्प ' समाधि प्राप्त होती है। योगशास्त्रमे वर्णन किये हुए **साधनमार्गका यह संक्षिप्त वर्णन है।** तोभी इसके लिये मनकी कडी तैयारी करनी पडती है। विषयोंके पीछे दौडनेकी आदत जिसकी छूट जाती है, वेही इस ज्ञानके अधिकारी है। मनकी विषयवासना जिसने पूर्णतया जीत ली होगी वही इसका महत्त्व समझता है। वेही लोग शास्त्र-मर्यादानुसार विषयोंका उपभोग लेते रहते भी मन निर्विकार रखतें हैं। और अंतमें सुखोपभोगोंकी सब वासनाएँ छोड कर योग शिखरपर पहुंचतें हैं। जो आदमी आपना आसन किंचित् भी न छोडकर अपने मनकी विचारपरंपरा कैसी नष्ट करना यह बात

जानता है, मनमें उत्पन्न होनेवाले विचारोंकी शृंखला तोड सकता है एक, विचार खतम होकर दूसरा शुरू होनेके बीचमें रहनेवाले संधिकालमें ही ब्रह्मचिंतन कर सकता है, वही योगमार्गके अंतिम ध्येयतक जाकर परिपूर्ण हो सकता है। बहुत लोग योगसे भक्ति सहजसाध्य है ऐसा मानते हैं क्यों कि योगमें देहपर काबू रखना पडता है। लेकिन **श्री ज्ञानेश्वर महाराज** तो पूछते हैं:--योगसे और सीधी बात ही कौन सी है ? मैं भी समझता हूँ कि भक्ति बाह्यविषयोंपर अवलंबित रहती है। और योग तो अपने खुदपरही निर्भर है। अतः भक्तियोगसे सहज-सरल नहीं है। आदमी जब ठीक विचार करके अपने साथ ही इस विषयका विवेचन करेगा, और बाह्य-बंधनोंका विचार छोडकर स्वतंत्र आत्माकाही विचार करेगा तब वह सब दुःखोंका निरास कर सकेगा, और सर्व श्रेष्ठ सौख्य प्राप्त कर लेगा। सांख्य-शास्त्रके सब तत्त्वोंका प्रथमतः पूरा आकलन कर लेना। सब दृश्यादृश्य वस्तुओंसे स्वतंत्र रहनेवाले आत्मापें ध्यान जमा लेना। और योगकी सहायतासे उसमें मिलन कर लेना। यहाँ भी गुरुकी आवश्यकता है। उसकी सहायता लेने बिना स्वतंत्र मार्गसे मनुष्य इन बातोंका सत्य रहस्य समझ नहीं सकता है।

साधारणतः दुःख कोई चाहता ही नहीं है। हरेक आदमी दुःख नष्ट करना चाहता है। सबसे अधिक चाहता है खुदको ही। अपने सुखके बीचमें आनेवाली चीजोंको नहीं चाहता है। तो भी खुद अपनेको कभी अप्रिय होता नहीं है। इसीसे स्पष्ट होता है कि सच्चा सुख बाहर न होकर अंदर खुदमेंही हैं।

मनको जीतकर उसे अखीरमें कैसा नष्ट करना इस विषयके बारेमेंभी **श्रीगुलाबराव महाराज** बोलते हैं:--**वसिष्ठ महामुनी** मनोविनाशके दो उपाय बताते हैं। एक योग साधनसे मनके विचारोंपर काबू करना। और अपनी जांच खुदहीं करनेका अभ्यास। दूसरा उपाय जरासा कठिन है। मनके विचारोंपर वैराग्य और योगसाधनसे काबू हो सकता है। वैराग्यभी ऐहिक चोजोंको दूषित समझनेसे प्राप्त हो सकता है। ईश्वरपे ध्यान जमाते चलते योगभी साध्य होता है ! ध्यानके सगुण और निर्गुण ऐसे दो प्रकार हैं श्रीकृष्णको सबसे सुंदर मानकर हमने उसकी भक्तिभावसे सेवा करना ठीक होगा। वैषयिक सुखोपभोगोंके जन्मांतरके संस्कार उससे नष्ट हो जाएँगे।

ध्यानके दृढ अभ्याससे ध्याता–ध्येयसे एकरूप होता है। बादमें 'निर्वाण' स्थिति प्राप्त होती है। लेकिन ध्यान छूटतेही मनुष्य ऐहिक बन जाता है। और संसार सत्य समझने लगता है। अंधेरेमें रस्सीको सर्प समझकर आदमी दूर भाग जाएगा तो उसके मनपे 'सर्प' काही संस्कार पक्का बैठेगा। लेकिन वहाँही रहकर जब वह खोज करेगा तो उसके मनपे 'सर्प' का संस्कार नहीं रहेगा। और डरभी नही रहेगी।

इससे समझता है कि 'जगत्' के संस्कार 'ज्ञान'सेही नष्ट होगे। ज्ञानकेलिये ग्रंथोंकी जरूरत है। गुरुके किये हुए स्पष्टीकरणोंकी भी जरूरत है। बादमें खुद विचार और मनन करना पडता है। और उपयुक्त तत्त्वोंपर फिरफिरसे चिंतन करना पडता है। **ब्रह्मानुभव** केवल **स्वात्मानुभव** के मार्गसेही प्राप्त कर लेना पडता है। लोग बोलते हैं, ये तो सबको मालूम है। लेकिन सद्गुरु बोलता है " भाई! जानकर भी तुम भूल जाते हो। भूलो मत!"

वसिष्ठ महामुनि श्रीरामचंद्रजीसे कहते हैः—हरेक बात शिष्यके समझमें स्पष्टतया आएगी इस प्रकार सीधी करके बताना गुरुका काम है, बादमें उस ज्ञानका आकलन कर लेना शिष्यका काम है।

बहुतसे वेदांती कहतें हैं कि सद्गुरु शिष्योंकी खोजमें रहते हैं। **श्रीगुलाबराव** महाराज बोलते हैः–वेदश्रुतिओमें जो भिन्न भिन्न मार्ग कहें हैं इनमें स्पष्टतया बताया है कि मनुष्यको तीर्थयात्रा करते करते सत्संगसाधनका यत्न करना चाहिये। इससे मालूम होता है कि मनुष्यको गुरुकी खोजमें रहना चाहिये और इसलिये काम पडा तो तीर्थाटन करना चाहिये। सद्गुरु तो सच्छिष्यकी खोजके लिये घूमता नही रहेगा। साधनचतुष्टयसंपन्न होकर मनुष्यने सद्गुरुके पास जानेकी तैय्यारी करना चाहिये। सद्गुरुने शिष्यकी खोज करते घूमना चाहिये ऐसा शास्त्रोंमें कहीं लिखा हुआ नहीं है।

कोई लोग बोलते हैंः–ईश्वरी कृपासेही सद्गुरु मिलता है। शास्त्र कहता हैः–ईश्वरी कृपा सद्गुरुकी सहाय्यता बिना कभी नही होती है। और सद्गुरुकृपाके लिये पहले ईश्वरी कृपाकी जरूरत होगी तो वह ईश्वरी कृपा भी मिलाना कैसी? इसके लिये भी यत्न होना। और जब यत्न होना ही है तो सद्गुरुकी खोज यह भी एक साधकका यत्न ही है। ढोंगी साधू बढने पर

समाजनियम टूट पडतें हैं और परमात्माको अवतार लेना पडता है। अवतार मानवजातिके बूरे मार्गोंको नष्ट करके पुराणमार्ग नवरूपमें प्रस्थापित करता है। योगके नियमोंपर जिनका विश्वास नहीं है वे नीतिके नियमोंपर विश्वास क्यों रखते हैं। नीतिनियमोंका भी फल इसी जन्ममें पूर्णतया नहीं मिलता है।

चंचल स्वभावी साधकोंके तीन प्रकार हैं:—(१) पात्रता और मनकी तैय्यारी न होकर भी वे गुरुपदेश लेते हैं। लेकिन वैराग्यका अभाव होनेसे विपत्तियोंमें फंसकर अभ्यास छोड देते हैं (२) थोडी कुछ पात्रता और मनकी तैय्यारी होकर भी गुरु सच्चा न मिलनेसे फंसकर पीछे हटते हैं। और अभ्यास छोड देते हैं। (३) साधनचतुष्टयसंपन्न रहकर भी नकली गुरुओंका उदाहरण सुनकर साशंक रहते हैं और गुरुके पास जाना ही टालते हैं। योगमार्ग पर पहलोंका कुछ काम ही नहीं हैं। दूसरोंकी मनस्थिति ऐसी बन जाती है कि वे बादमें सच्चे संतोंकी भी संभावना रहती है। तीसरोंके लिये **पतंजलि महामुनि** योगशास्त्रमें तृतीय पादके ३४ वें सूत्रमें कहते हैः—"मूर्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्।" **श्री व्यासजी भी** इनके लिये एक उपाय बताते हैं। "ध्यान करते समय साधक भ्रुमध्यमें प्रकाश देखता है। उसी स्थानपर उसे त्रैलोक्यमें वस्ती करने वाले कई साधुओंका दर्शन होता है। उसी स्थानपे उसे अपना नियम सद्गुरुभी दिख पडता है जो उसे मार्गदर्शक हो जाता है।" **सद्गुरु संशोधनका यह तो अति उत्कृष्ट मार्ग है।** और सरल सीधा है। किसी साधक को बिना यत्नसेही सद्गुरु मिलता है। यह अपवाद नियमोंको सिद्ध करता है। सद्गुरु संशोधनका यत्न ऐसे उदाहरणोंसे छोड देना हित परिणामी नहीं है।

किसी किसानको घरमेंही गढा हुआ धन मिलता है। तो भी सब किसानोंनें खेतीके श्रम करनेका काम छोड देना ठीक नहीं होता है। हाँ! जब ढोंगी साधूसे फँसनेकीही संभावना हो तो उसके पीछेभी दौडना ठीक नहीं है। तोभी मैं समझता हूँ कि सच्चा साधक तो ढोंगी साधूसे फंसावाही नहीं जा सकता है। **श्री गुलाबराव महाराजने** यह साधुसंशोधन का यत्न करनेकेलिये बार बार कहा है और मुझें भी वह मार्ग बराबर मालूम होता है। श्री तुकाराम महाराजभी बोलते हैः—अग्नि किसीको निमंत्रण नहीं

करता है। जिसे काम हो वह पास जाता है। जल किसीको निमंत्रण नहीं करता है। जिसे प्यास हो वह वहां जाता है। कपडा मनुष्यको पहननेके लिये नहीं बुलाता है। गुरु तुम्हें नहीं कहेगा कि, "आओ! उध्दार करलेओ!"॥ १॥ उपनिषदों में भी कहा है कि समर्थ साधूके पास जाकर विनम्रभावसे उससे ज्ञानग्रहण करलेना चाहिये।

अच्छा अब मेरी बात तो ऐसी है कि मैं तो अनपढ हूँ और अकलमें तो कमही हूँ। अतः मैं दूसरे ऐसे संतोंके वचनोंका उपयोग कर रहा हूँ। जो मुझसे तो ज्ञान और विद्वत्तामें श्रेष्ठ हैं। जब मैं अपनी ही अकलसे बातें करूंगा तब लोग तो मुझपें विश्वासही नहीं रखेंगे। इसलिये दूसरोंका आसरा लेकर ही मैं बातें करता हूँ। ऐसा गुरुका कहना है। श्रवण मनन करनेका काम लोगोंका है। **श्री गुलाबराव महाराजने** जो कहा है और मुझें भी जो पसंद है, वही मैंने कहा है। अधिक अभ्यास करने की इच्छा हो तो **श्रीगुलाबराव महाराजके** ग्रंथ जो अभी प्रसिद्ध हुए हैं वे लेकर अध्ययन करना ठीक होगा। मैं कूटप्रश्नोंका उत्तर देनेके लीये असमर्थ हूँ। अज्ञ और मूढ हूँ।

चमत्कारोंके बारेमें श्रीगुलाबराव महाराज कहते है। साधारण जनसमाजके समझके विरुद्ध कोई बातकी घटना होती है तो लोग उसे चमत्कार कहते हैं। एकाधे व्यक्तीके बारेमें तो पूर्वकर्मानुसार ऐसी बहुतसी घटनाएँ बनकर उसके जीवनमें असंख्य चमत्कार होते हैं। बहुतोंको चमत्कारसी मालूम होनेवाली घटना क्वचित् ही होती है और वह भी एकाधको चमत्कार सी मालूम नहीं भी होती है। श्रीकृष्णनें दावाग्निभक्षण किया होगा तो वही श्रीकृष्ण कालयवनके डरसे भाग क्यों गया ऐसा संशय किसीको आता है। रासक्रीडाके चमत्कारके बारेमें कोई बोलेगा कि श्रीकृष्णने अपने दोस्तोंको अपने माफिक पोषाख पहनाकर सबोंने गोपियोंके साथ नाच किया होगा। और लडके लडकियोंमें बनाया हुवा यह रासक्रीडाका खेल नीतिनियमोंके बाहरी बात है ऐसा भी कोई लोग बोलेंगे।

ऐसी शंकाओंका समाधान मैं तो क्या लेकिन मेरा पिता भी न दे सकता है। और खुद व्यासजी भी नहीं दे सकते हैं। वसिष्ठ मुनीसे वैराग्यका पाठ लेकर श्री रामजी सीताजीकी खोजमें रहते बखत वृक्षोंको ही अपनी स्त्री

समझ कर आलिंगन देते क्यों चले ? अपनी 'माता' समझकर उन्हें क्यों नहीं लपटें ? सीता निष्कलंक है इतना मालूम होकर भी लोकवार्ता सुनके उसे छोड क्यों दिया ? उसे वनमें क्यों भेज दिया ? खुद श्रीकृष्णने गोपियोंके संगमें आनंद लूट लिया और नारदने एक स्त्री मांगी तो खुद उसे ही स्त्री बनाकर तकलीफ क्यों दी ? शंकराचार्य जब सर्वज्ञ था तब कामशास्त्रमेंके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये पहले उसे परकाया प्रवेश क्यों करना पडा ? शिव और विष्णु मित्र होकर भी बार बार झगडे क्यों करते रहे ? काशीखंडमें लिखा है कि व्यासजीको गर्दभ जन्म लेना पडा । तो फिर उसके ज्ञानमें और गधेके ज्ञानमें फरक क्या है ? दूध-मख्खनके खुराकसे नववर्षकी उमरमेंही श्रीकृष्णकी कामवासना प्रबल हो सकती थी और उसने सब व्यभिचार किया भी होगा ! धर्म के लिये उसने अवतार लिया तो इंद्रपूजा बंद क्यों कर दी ? गोवर्धन उठानेके पहलेही नीचे कुछ यांत्रिक भेद उसने करके रख्खा होगा ! कुमारी गोपियां कृष्णके साथ प्रेम करके, बादमें उसके साथ मथुरा क्यों नहीं गयीं ? दूसरोंके साथही शादियां करके समाज भ्रष्ट क्यों किया ? कोई बम्मनोंनें श्रीकृष्ण और उसके दोस्तोंको भोजन नहीं दिया और उनके स्त्रियोंने छुपाकर दिया । जिससे बम्मनोंको दुष्ट और उनके औरतोंको वंदनीय कहना शास्त्रसंमत कैसा होता है ? और ये सब बातें जबतक मौजूद हैं तबतक इन लोगोंकी स्तुति करनेसे फायदाही क्या है ? ऐसी बातें नकली साधुओंको परस्त्री गमनका मौका देतीं हैं । श्रीकृष्णके समान उनकीभी वे आध्यात्मिक गूढ चेष्टा है ऐसा कहलाया जाता है । फिर कुत्ताकुत्तीके संगमेंभी गूढ आध्यात्मिक भाव क्यों नहीं देखना ? और फिर समक्रीडाकोही इतना महत्व क्यों देना ? ऐसे प्रश्नोंके लिये तर्कशास्त्रयुक्त खंडनात्मक उत्तर मेरे पास नहीं हैं ।

श्रीवासुदेवानंद सरस्वतीके माफिक तुमभी क्यों चमत्कार नहीं बताते हो ? ऐसा प्रश्न एकदफे एक वकीलनें श्रीगुलाबराव महाराज को किया था । और मेरे भी कितने मित्र मुझसेंसे भी वही कहते रहते हैं । इनके लिये मैं श्रीगुलाबराव महाराजका दिया हुआ जवाब देता हूँ । वह इस प्रकार है—

चमत्कारोंके बारेमें बोलने वाले लोग बहुतसी विचित्र बातें कहते हैं । वैदिकधर्मके कट्टर अनुयायी श्रीवासुदेवानंदसरस्वतीके किये हुए बहुतसे

चमत्कारोंका वर्णन आपके शिष्योंनें किया है। वे सब मुसलमानी फकीरोंके दीखे हुए चमत्कारोंके माफिक दीखते हैं। मुसलमानी फकीरोंके धर्मका मत हमारे धर्म मतोंसे बहुत कुछ विरोधी ही हैं। वे चमत्कार सब जगहमें सब समयोंमे सब देखनवालोंके लिये हुए नहीं है। वे सबको मना होंगे ऐसा भी नहीं है। मुझसे किये गये हुए छोटे बडे चमत्कार भी ऐसे ही हैं। उनका बिलकुल उपयोग नहीं है ऐसा मेरे कहनेका मतलब नहीं है। मेरा कहना इतना ही है कि शिष्यने गुरुसे किये गये चमत्कारोंका गर्व नहीं मानना चाहिये। और दूसरेके गुरुने ऐसे चमत्कार नहीं किये होंगे तो भी उसे कम-दर्जेके नहीं मानना चाहिये। मुसलमान अपने रोगनिवारणके लिये हिंदुओंके देवताओंकी पूजा कभी नहीं करते हैं। वे अपने तुरबत्तीपर ही निर्भर रहते हैं। लेकिन बहुतसे हिंदु लोग मुसलमान खाटिकके पास भी जाते हैं। जिसकी हम घरमें पूजा करतें है वह शाळिग्राम हमें कभी चमत्कार नहीं बताता है। चमत्कारके लिये हमें मुसलमानोंके तरफ दौडना पडता है। इससे अधिक आश्चर्यकी बात कौनसी है ?

कभी कभी महान साधुओंसे चमत्कार किये जाते हैं। कभी मेरे हाथसेभी होतें हैं। शायद कभी तुम्हारे भी हाथसे एकदिन होंगे। श्रीवासुदेवानंद सरस्वतीके शिष्य मेरेलिये आदर कम रखते हैं और शिरडीके साईबाबाकेलिये बहुत कुछ आदर बतातें हैं। मैं तो आपके बारेमें बहुत कुछ आदर रखताहूँ। फिर ऐसी बात क्यों ? "

अब खुद मेरी (**गजानन महाराज**) बात। मेरे हाथसे बहुतसे चमत्कार सहजमें 'ही हो जातें' हैं। तोभी मैं गालियां देताहूं इसलिये बहुतसे स्त्रीपुरुष नाराज हैं। मेरेपास अघोरी विद्या है ऐसा बोलकर मुझपें टीका करतें हैं। जब मैं शराबका दूध कर सकताहूं तब संसारकी सब शराब मै गंगाजलमय क्यों नहीं बना देता हूं ? मेरा मुँह धोना भी मैं नहीं जानता हूं ? मैं शास्त्र नहीं जानता हूं। दूसरे साधुओंके मैं दोष बताता हूं। इत्यादि आरोप मुझपे किये जातें हैं। मेरा उत्तर तो यही है कि ऐसे आरोप मुझपे किये गये हैं, जातें हैं, और जाएंगेभी। मेरा बर्तावही ऐसा है। जिससे ऐसी टीकाएं होना बिलकुल संभाव्य है। सचमुच यह बात कहनेलायक

नहीं है। लेकिन मैंने क्यों कहदी वह मैं नहीं जानताहूँ। तोभी मेरे कोई मित्रके सामने मुझे कोई दोष देगा तो मित्रको वह ठीक नहीं मालूम होगा यह बात भी सत्य है। उसे दुःख होगा यह बात भी बिलकुल संभाव्य है। पिताको दोष देनेसे पुत्रको और पुत्रको दोष देनेसे पिताको दुःख होता है। मैं अपने मित्रोंसे कहता ही रहता हूँ कि उसमें दुःख करनेकी बात बिलकुल नहीं है। " अमानित्वं अदंभित्वं " ऐसा गीता वचन है ! (अ०१३–७)। इसके अनुसार आत्मस्तुति या दूसरोंने की हुई स्तुति मैं नहीं चाहता हूं। लोगोनें मुझें दोष देनाहि चाहिये ऐसा बर्ताव मैं तो जान बूझकर करताहुं। इस विषयमें गीता वचन (१२–१९) सुवर्णाक्षरोंमें लिख रखनेलायक है:—

॥ तुल्य निंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्में प्रियोनरः ॥

इसका तात्पर्य है:—शत्रुमित्र और मानापमानके बारेमे जिसकी बुद्धि समान है, शीतोष्ण और सुखदुःखोंमें जो शांत रहता है, निंदा और स्तुति दोनोंभी समान उपेक्षणीय मानता है, सुविचारसे रहकर जो पास है उसीपर संतुष्ट रहताहै, प्राप्त परिस्थितीके बारेमें जो तकलीफ की तकरार नहीं करता है, दूसरोंपर अवलंबित नहीं रहता है, ऐसा स्थितप्रज्ञ और भक्तिमान् मनुष्य प्रिय है।

कभी कभी प्रापंचिक लोकों की सहायताके लिये चमत्कार किये जाते हैं। उनसे अध्यात्मिक प्रगतीके बारेमें उपयोग नहीं होता है। हस लिये **तुकाराम महाराज** कहते हैं:—पहनासे सुवर्ण पर्वत बनाये जाते हैं। जंगलमें पेडभी कल्पतरू बनाये जाते है। मंत्रतंत्रोका अनुष्ठान किया जाता है। प्राणोंको ब्रह्मांडमें खींचनेकाभी चमत्कार हो सकता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवोंको नौकर बना सकते हैं। इंद्र चंद्र तुम्हारे सदाके लिये दास बनाये जा सकतें हैं। लेकिन भगवच्चरणोंका आधार ऐसे उपायोंसे कभी नहीं मिलता है। और मुझे तो हे भगवान् ! तेरे चरणोंसे नहीं दूर होनेका है। निश्चयसे !

निंदाके बारेमें **तुकाराम महाराज** कहते हैं। :—निंदकका रहना पडोसमें होना ठीक है। उसे गुणदोष दीख पडतें हैं। निंदक मुझे कंठमणीके समान प्यार है। वही तो मेरा सब कुछ फायदा कर देता है। (उसकी सहायतासे मैं अपने दोष देखकर दूर कर सकता हूँ।)

" ब्रह्मनिष्ठोंकी स्तुति करनेवाला ब्रह्मनिष्ठके पुण्यका हिस्सा कमा सकता है। द्वेष करनेवाला पापसंचय करता है। ब्रह्मनिष्ठके वंशज भी उसकी संपत्ति पातें हैं। खुद वह तो पापपुण्योंका निरसन करके निरंजन शाश्वतपदमें पहुंचता है। " ऐसा उपनिषदोंका कहना है :- —

" तस्य ते गृह्णन्ति सुहृदः साधु कृत्यान्।
द्विषतः पाप कृत्यान्। पुत्रादयो धनान्।
स वै पाप पुण्ये विधूय निरंजनं शाश्वतमुपैति दिव्यम्। "

अब कहिये कि मेरा आचरण कैसा होना चाहिये ? संतोंके समान गुरुके आज्ञानुसार रहना ? या लोगोंको खुष करना ? उन्हें चमत्कार ही बताते रहना ? **कबीर संतश्रेष्ठ** बोलते हैः—

निंदक हमारे इष्ट हैं। वे मा-बापसे प्यार ॥
आप डुबें मंझारमें। हमें उतरत पार ॥ १ ॥

महान साधुओंके वचन देखकर मैं तो समझता हूँ कि चमत्कार करके अपनेको साधु कहला लेनेका मुझें तो कुछ कारण नहीं है। इसी लिये मैं मित्रोंसे कहता हूँ कि भाइयो ! तुम्हारे सामने मेरी किसीन निंदा की तो दुःख करनेका कारण नहीं है। संत तुकाराम के बारेमें तो ऐसा भी हुआ था, बोलते हैं कि एक ग्राममें एक विधवा गर्भवती हुई और लोगोंने तुकाराम पर ही उसका दोष लगा दिया। इतना ही नहीं तो तुकारामके गलेमें जूतोंकी माला डालकर उसे गधेपर बैठाया और घुमाया। उसकी निंदा की, गालियां देदीं। ईश्वर कृपा होगी तो मेरी भी वैसी परीक्षा की जाएगी। मैं चाहता हूँ कि ऐसा मौका मुझे भी मिले। कब मिलेगा मैं नहीं जानता हूँ।

गृहस्थः—लोक बोलते हैं कि संतोंको इच्छा नहीं रहती है। और इधर तो साधूके हाथसे व्यभिचार भी होनेके उदाहरण मुझे मालूम हैं। आप इस बारेमें क्या कहेंगे ?

महाराजः—सुवर्णकी एक दफे ठीक ठीक जांच कर लेनीं चाहिये। बादमें बार बार संशय रखनेकी जरूरत पडती ही नहीं। सुवर्णका भी व्यावहारिक उपयोग करते वक्त उसमें हीन धातु मिलायी जाती है। इससे सुवर्ण बेकाम नहीं होता है। पूर्व जन्मोंके संस्कारोंके अनुसार सच्चे साधूके

हाथसे भी कुछ बुरा काम होनेकी संभावना है। तो भी इससे उसकी अवस्था हीन नहीं हो जाती है। साक्षात्कार कम दर्जेका नहीं बनता है। "ब्रह्मसिद्धांत माला" पढनेसे आपकी यह बात ठीक समझमें आजाएगी। ढोंगी साधु इस बातसे लाभ उठानेकी कोशिश करते हैं। और अपने नीतिहीन आचरणका समर्थन करते हैं। लेकिन संसार यही है। ऐसी बातें चलतीं ही हैं।

गृहस्थः—साधक के शरीरमें कुछ रोगोंका बीज होगा और उसे तो उस बातका पता न होगा तब क्या साधक योगमार्गमें प्रगति कर सकता है?

महाराजः—ऐसे मनुष्य की स्थिति गुरु अंतर्दृष्टीसे देख लेकर जो चक्र बिलकुल शुद्ध और निर्विकार रहता है उसीपर ध्यान जमानेको कहता है। बादमें साधक प्रगति करके अधिकारी बनता है। ऐसी फिक्र गुरु न करेगा तो रोग गुरुको लेना पडता है ऐसा मेरा अनुभव है। और मैं समझता हूँ कि दूसरे योंगियोंको भी वैसा ही अनुभव होगा। अब इससे ढोंगी साधु फायदा उठा सकते हैं। और जब कुकर्मसे बीमार पडते हैं तब बोलते भी हैं कि शिष्यका पाप हमने लिया!

[३]

नासिकमें रहनेवाले श्री० अंबादास गोपाल पैठणकरने अनुग्रह होनेके पहले और बादमें महाराजसे किये हुए संभाषणोंका सार यहां दिया जाता है:—

किसी एक विशेष घटनासे मुझे **श्री गजानन महाराज**के बारेमें आदर उत्पन्न हुआ। और बादमें आपसे मेरा दृढ परिचय हुआ। उस घटनाका वर्णन पहले देता हूं। १९४० ई० के एप्रिलका आखीरी सप्ताह था। मैं अपने मित्र श्री० डी. के. भटके घर बैठा था। आप मुझसे श्रीगजानन महाराजकी और अपने अनुभवोंकी बातें कह रहे थे। मैं भी सुनते समय बिलकुल एकचित्त बन गया था। बादमें मेरे मित्र मुझे वेदांतोंके तत्त्व बताने लगे। जिससे मुझे कुछ विचार करनेका मौका मिले। लेकिन वे तत्त्व मेरी बुद्धीकी मर्यादासे जरा कठिन थे। मेरा मन एक ही विचार करता था। और वह श्रीगजानन महाराजका। श्री० भटजीके शब्द मैं खाली सुनता रहा था।

इस घटनाके पूर्वकालमें, पांच छः साल पहले, मैंने श्रीगजानन महाराजको देखा था। और बादमें आपके बारेमें बहुत कुछ अच्छी बुरीं बातें सुनीं भी थीं। महाराजके बारेमें मेरा ग्रह बिलकुल ही खराब हो गया था। और मैं आपका विचार तिरस्कारसे ही करता था। तो भी श्री० भटका किया हुआ महाराजका वर्णन और अनुभव सुननेमें मेरा ध्यान ठीक ठीक जम गया। आपहीसे मेरा मन बदलते बदलते उसी समय बिलकुल सीधा हो गया। बादमें जो घटना हो गयी उसे मैं तो चमत्कार ही कहुँगा।

श्री० भट आत्मप्रचीतीकी बातें करते थे। लेकिन मेरा मन अलग ही लगा रहा था। कोठीमें जैसा पूरा अंधेरा सा छा गया था। मुझे डर उत्पन्न हुई। श्री० भटको भी मैं देख नहीं सका। तो भी वहां एकदम लक्ष चंद्रोंका सा प्रकाश उत्पन्न हुआ और मुझे उसी प्रकाशमें एक लंबगोल चेहरा दीख पडा। बादमें वह अदृश्य होकर वहीं एक तेजःपुंज वृद्ध मूर्तिकी आकृति दिखने लगी। और उस वक्त लोकोत्तर आनंद प्राप्त हुआ। लेकिन उसमें थोडी डर भी मालूम होती थी। इस आश्चर्यजनक वृत्तीका वर्णन मैं शब्दोंसे कभी नहीं कर सकूँगा।

बादमें झट सब अदृश्य होगया। मैं इसके बारेमें श्री० भटको कोई प्रश्न पूच्छता था, इतनेमें खुद श्री. भट ही बोले, "क्यों अंबादास! तुम तो बिलकुल गुंगेही बन गयसे दिखते हो। मैं महाराजके बारेमें बातें करता रहा जब तुम तो कहीं दूसरीही जगह ध्यान देते रहे! क्या सोच रहे हो?" मैंने उत्तर किया, "सोचता तो कुछभी नहीं। खाली जिस महापुरुषका आप वर्णन कर रहे हैं उसीका चिंतन करता था।" बादमें मेरा दृश्यका वर्णन कर दिया। आपने मुझे खुद गजानन महाराजसे ही मिलनेकी सलाह दी। क्योंकि इस घटनाका अर्थ उनके सिवाय दूसरा कोई नही कह सकेगा।

तो भी खुद नास्तिक होनेसे अच्छी जांच किये बिना महाराजका दर्शन लेनेका मेरा इरादा नहीं हुआ। और उस दिन तो श्रीगजानन महाराजकी मूर्ति मेरे आंखोसे हट नहीं गयी। और मेरे जीवनमें कभी न मिली हुई शांतिभी मुझे मिलती रही थी। बादमें मेरे दूसरे मित्र श्री० सायगांवकर जिन्होंने महाराजका उपदेश लिया है यह बात मुझे मालूम थी, उनसे मिलने गया। मैं

उनसे बोला, " गये बारह तेरह सालतक श्रीगजानन महाराज और तुम नजदीक ही रहतें हो। और बहुतसे हो ब्राह्मण, पेन्शनर, और विद्वान आपका दर्शन लेने आतें हैं। महाराज आत्मसाक्षात्कारी योगी हैं यह बात भी मैंने बहुतोंके मुँहसे सुनी है। तो तुम्हारा मत उनके बारेमें क्या है ? " श्री० सायगांवकरने उलटा प्रश्न किया, " क्या आपने कभी महाराज का दर्शन किया है ? " मैंने उत्तर किया, " जी हां ! महाराजके घर पांच छः साल पहले कोई कीर्तन सुनने गया था। जब दर्शन हुआ है। "

सायगांवकरः—आप तो महाराजसे मिलनेके लिये बहुत उत्सुक दीखते हैं। तो पिछले समय कोई ऐसी विलक्षण घटना होगयी है जिससे आपको यह इच्छा हुई ? कोई विशेष अनुभव आपको मिला है ? महाराजसे मिलनेके लिये तो किसीको भी कभी मज्जाव नहीं है।

मैं इसपर कुछभी जवाब न देकर वहांसे वापस आया। और सोचते रहा कि साधूके पास जानेके लिये बीचमें दूसरे किसीको लेनेकी जरूरतही क्या है ? खुद हमही जा कर मिले तो क्या हर्ज है ? इस प्रकार विचार करके दूसरे दिन प्रातःकाल नऊ बजेके अंदाजमें मैं महाराजसे मिलने गया। महाराज उस वक्त बीमार रहनेसे लेटेही हुए थे। महाराजने मेरी तरफ देख कर पूछा कि किससे मिलना है ? मैंने बोला आपहीसे।

महाराजः—आपका शुभ नाम ? आपकी तारीफ ?

मैः—मेरा नाम अंबादास गोपाल पैठणकर। मेरे पिताजी शास्त्र पढे हुए हैं। और कीर्तनका धंदा करते हैं। आपकी चरणसेवामें रहनेवाले श्री० भट और मैं एक ही क्लासमें पढता था। वे मॅट्रिक पास होगये और मैं नहीं हुआ। मैं उनसे हमेशा मिलता रहता हूं।

महाराजः—क्या आपने कभी किसी साधूकी मुलाकात की है ?

मैंः—जी हां ! मैंने साकोरीके उपासनी महाराज और केडगांवके नारायण महाराजका दर्शन किया है।

महाराजः—क्या आप कोई विशिष्ट देवताकी ध्यानपूजा करते हैं ?

मैंः—जी नहीं। मैं किसी विशिष्ट दैवत की पूजा नहीं करता हूँ। ध्यान

भी नहीं करता हूं। तीन सालतक मैनें गणपतिकी पूजा की है। और देवीकी भी दो साल तक की है। एक बिंदूका ध्यानभी करनेका यत्न कुछ कालतक करता रहा। लेकिन इन सब बातोंमें मेरी कुछ विशिष्ट इच्छा न होनेसे बादमें सब छोड भी दिया।

महाराजः—आपको आपके पिताजीका ही सत्संग है। इससे आप भक्ति-पर गायनभी करतें हैं। इसीसे आपकी परमार्थके लिये तैयारी हो गयी है। तो भी आज एक देवता और कल दूसरी, ऐसा क्यों होता है? अंत कालतक ऐसाही करना है? और अगले जन्म में भी यही प्रकार चलानेका इरादा है?

मैं:—मेरा चित्त कहीं भी स्थिर नहीं होता है। मुझे कुटुंबकी तरफ ख्याल रखना पडता है। और पंडेगिरीकी वृत्ती भी चलानी पडती है। और मेरा मन किसी एकही मार्गपर ठहरता नहीं है। इसी लिये मैं आप जैसे संतके पास आया हूं। महाराज मेरी अब पक्की धारणा हो चुकी है कि शास्त्र पढनेमें हम खाली शाब्दिक वाद करनाही जानते हैं। और अनंत शंकाएं उत्पन्न होतीं हैं। सच्चा शस्त्रा 'आत्मसाक्षात्कार'काही है। और वह तो गुरुकृपोंके बिना नहीं प्राप्त होगा ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। महाराज! क्या आप मुझे ईश्वरदर्शन करा दोगे?

महाराजः—देखिये! ख्याल कीजिये कि आपके घरमें बत्ती जल रही है। उसका प्रकाश यहां लाकर मेरे घरमे बतानेकी मैनें आपसे बिनती की तो क्या आप यह कार्य कर सकेंगे?

मैं:—जी नहीं। प्रकाश यहां तक नहीं लाया जाएगा।

महाराजः—फिर तुम मुझे कहोगे कि "मैं खाली प्रकाश उत्पन्न करनेके साधन और कृति बता सकूँगा। तुम्हें बत्ती मोल लेनी चाहिये, तेल लाना चाहिये उसमें डालना चाहिये, और सलाई लेकर जलाना चाहिये।" इसी प्रकार ईश्वर के बारेमें हो सकता है। मैं खालीं तुम्हें अपना जीवनक्रम किस प्रकार रखना चाहिये यह बात बता सकता हूँ। और जब तुम साधन चतुष्टयसंपन्न होगे, जब तुम्हारा वासनाक्षय होगा, जब तुम सच्चे ईश्वर भक्त होगे, वैराग्यशाली होगे, अध्यात्मज्ञान प्राप्त कर लोगे, तब ईश्वर देखनेमें आप समर्थ होंगे। इन

बातोंके बारेमें मैं आपसे कुछ कह सकता हूँ। बादमें आप ईश्वर या आत्म-प्रकाश देख सकेंगे। और सच्चिदानंद परमात्माके साथ एक रूप हो सकेंगे। यही सच्चा ईश्वर दर्शन होगा। ईश्वर कोई ऐसी बाह्य चीज नहीं है जो उंगलीसे बतायी जा सकती है। मनुष्यको गुरुकृपा संपादन करके गुरूका अनुग्रह लेना पडता है। फिर उसे अंतर्दृष्टि प्राप्त होने पर अंतःचक्षूसे वह ईश्वर देख सकता हैं। मनुष्यका अहंकार निकल जाना चाहिये। वासनाओंका क्षय होना चाहिये। वैराग्यशील बनना चाहिये। ईश्वरके साथ एकरूप होने की भावना उसमें उत्पन्न होनी चाहिये। बादमें आपहीसे उसे अक्षय सुख—शांतीका लाभ होता है। फिर उसका ऐहिक जीवन ब्रह्मरूप होकर वह सुखदुःखातीत होता है। दूसरी बात रहती ही नहीं है। मैं आपको एक हमेशा दिखनेवाली बात कहता हूँ। जब तुम गहिरी नींद पाते हो, तब दूसरे दिन मित्रोंसे कहते होः—पिछले महिनाभर मुझे अच्छी नींद ही नहीं मिली थी। लेकिन कल ऐसी गहरी नींद प्राप्त हुई जिससे मुझे बहुत कुछ आनंद प्राप्त हो गया है।" अब कहिये कि जब आप तो गहिरी नींद पाते थे तब बादमें वह मिली ऐसा कैसे कहते हैं? उसका उस वक्त अनुभव इकट्ठा करनेका काम किसने किया? उस बखत जागता कौन था? जो जागता था उसे आपने देखा? नींदके सुखका अनुभव किसने लिया? और उस सुखका अनुभव वर्णन कौन कर रहा है? कहिये!

मैंः—मैं खुद।

महाराजः—यही 'मैं' हरेक चीजमें, सूक्ष्मसे सूक्ष्म धूलिकणमें भी मौजूद है। ख्याल कीजिये कि वही तुम्हारा 'आत्मन्' है। 'सोऽहम्' के सतत ध्यानसे तुमने उसे मिलान कर लेना पडता है। वही खुद परमात्मा है। इससे और कुछ मैं आपको नहीं कह सकता हूँ। यही ईश्वर मेरे हृदयमें है। तुम्हारे हृदयमें भी है। गुरुकृपा और सोऽहम् जपकी सहायतासे जब आप अंतर्दृष्टि कर लोगे तब सब कुछ समझ लेनेका आपको सामर्थ्य आएगा।

महाराजके ठहर जाने पर मैंने दो तीन दिन पूर्व श्री० भटके घर देखा हुआ प्रकार बता दिया और बोलाः—"महाराज आजतक मुझे आपके बारेमें जो कुछ नहीं दीख पडता था वह आज दीखने लगा है।"

महाराजः—आपका सब कहना ठीकही है। डर, शंका और अविश्वास सब छोड दीजिये। विद्वान सुशिक्षितोंकी बातही अलग है। कोटिक्रमका झगडा मन में हमेशा चलता ही रहनेसे उनका 'शिव'से मिलान होनेमें बाधा आती है। सच बात यह है या वह है इसीका संशय आता रहता है। इससे मन अस्थिर रहता है। सब संशय विच्छेद करके गुरुका कहना मानना और अभ्यास करते रहनां जिसे बिना कष्टसेही अक्षय सुख पाया जाता है। फिर शिक्षित और अशिक्षित का भेद नहीं रहता है। शंकाएँ और कोटिक्रम है तबतक भेदका गोलमाल भी है।

मैं:—महाराज ! मेरी उत्कट इच्छा है कि कृपया मुझे अनुग्रह दीजियेगा। मुझे आपने कृपाछत्रकी छायामें लीजियेगा।

महाराजः—सद्गुरुकृपासे मुझे 'सोऽहम्' मंत्र मिला है। मैं अबतक तो 'साधक' केही अवस्था में हूं। लेकिन मेरे गुरु मेरे मुँहसे बोलते हैं। मुझसे जिन शब्दोंका उच्चारण होता है वे सचमुचही मेरे नहीं है, मेरे गुरुने मुझें अंदरही 'सोऽहम्' मंत्रका जप करनेकी आज्ञा की। और सोऽहम् की कल्पना परमात्म स्वरूपमें विलीन कर लेकर शाश्वत सुख और शांतिका अनुभव लेनेको कहा है। कोई भी किसी बखत पास आएगा तो उसे खुल्लमखुल्ला उपदेश देनेकी मुझे गुरुकी आज्ञा है। जो कुछ मैं जानता हूं वही मैं मेरे पास आनेवालोंको कह देता हूं। और यह भी मैं सद्गुरुकी आज्ञानुसार कर रहा हूँ। जब साधक ध्यानयोगका अभ्यास ठीक ठीक करेगा, परिश्रम लेकर करेगा, तब वह 'सोऽहम' मंत्रके सामर्थ्यसे इसी जन्ममें पूर्णत्व प्राप्त कर लेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

बादमें दो दिन बीत जानेपर महाराजसे मुझे 'सोऽहम्' मंत्रका उपदेश मिला। उस दिनसे साधारणतः हररोज मैं महाराजका दर्शन लेने जाता रहा हूं। ज्ञानप्राप्तीके लिये बहुतसे प्रश्न मैं महाराजसे पूछता हूँ। और महाराज सुबोध शब्दोंसे मुझे स्पष्टीकरण करके अर्थ बता देते हैं। इस संभाषणके बोधप्रद विभागका उद्धरण देता हूँ।

मैं:—संसारमें शास्त्रीय और धार्मिक किताबें बहुत हैं। उनमेंसे हरेक घरमें लाभप्रद होंगीं ऐसी किताबें बताइये।

महाराजः—महेंद्र कृत '**श्रीरामकृष्ण परमहंसका** चरित्र,' **श्रीगुलाबराव महाराजका** 'सांप्रदाय सुरतरु', सोहिरोबानाथकी 'सिद्धांत संहिता', इस्लामपूरकर डॉ. वैद्यका 'देवयान पंथ', 'षट्चक्रभेदन' और 'प्रणवोपासना' और बाबा गर्देकी 'ब्रह्मसिद्धांतमाला' पढनेके लिये मैं शिफारिश करता हूँ। शास्त्रीय ग्रंथ तो आपके पिताजीके सत्संगमें आपने पढे ही होंगे। अब इन ग्रंथोंकी शिफारिश आपके सामने करनेका कारण यही है कि इन ग्रंथोंको पढकर अज्ञानी, सज्ञानी, सुशिक्षित, परमार्थमार्गी, अधिकारी और भक्त इन सबोंने अपनी आध्यात्मिक प्रगति कर लेना। इन किताबोंके अभ्यासके बाद मनुष्य भोंदू साधूके पास भी गया तो उसके जालमें नहीं फँसेगा। क्यों कि अनुभव होनेसे ये लोग सत्यासत्य समझ सकेंगे।

मैं:—'प्रणवोपासना' नामक ग्रंथकी दूसरी आवृत्ति मैंने भी पढी है। उसमें ध्यानयोग के लिये बहुत कुछ सूचनाएं दी हैं। वे अच्छी हैं। तो भी मुझे इसी बारेमें एक शंका है। महाराज, समझ लीजिये कि किसी ढोंगी साधूने यह ग्रंथ पढलिया और इसीके माफक शिष्योंको सूचनाएं देते चला। और शिष्योंको अनुभव भी आया। तो क्या ऐसा साधु साधकोंको फंसानेके लिये समर्थ नहीं होगा? और ऐसा ही साधू वेदांत ठीक पढकर वह लोगोंको अच्छी तरहसे समझा देने लगा तो हम साधारण लोगोंने कैसा समझना कि वह साधु 'आत्मानुभवी' है या नहीं? और नहीं होगा तो हमारे मित्रोंको दूरसे कैसा बचाना?

महाराजः—पैठणकर! आपने प्रश्न अच्छा किया। जिसे आत्म-साक्षात्कार हुआ है वही उसका उत्तर दे सकता है। मैंने संतचरित्र पढे हैं। और उसी हिसाबसे निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि, "देवयान पंथ और प्रणवोपासना पढना लाभदायक होगा। सच्चे साधुओंके अनुभवोंका वर्णन इन ग्रंथोंमें है। सद्गुरुसे उपदेश लेनेके बाद साधकको जो जो अनुभव आते हैं वे आत्मसाक्षात्कारके मार्ग परकी पटरियाँहि हैं। जब वह आगे बढती है तब वह इन मार्गदर्शक पटरियोंके भी आगे जाता है। और इनके मूलग्राही ब्रह्म तक पहुंचता है। भोंदू साधूके भी कहनेसे साधक जब अनुभव लेगा तब इन किताबोंके अनुभवोंके साथ तुलना कर सकेगा।

मैं समझताहूं कि कोई भी साधु सच्चा है या नहीं यह समझनेकी अडचन आनेका कुछ कारण नहीं है। इन किताबोंमें ध्यानकोंको आनेवाले सभी अनुभव नहीं लिखे रहतें हैं। सर्वसाधारण ध्यानाभ्यास और मुख्य मुख्य अनुभव ही दिये जाते हैं। अब साधकको जब किताबमें न लिखे हुए अनुभव आयेंगे और वह इसी साधूसे स्पष्टीकरण पूछेगा तो साधकका समाधान कोई साधु नहीं कर सकेगा। जिससे उसकी अवस्था साधकके भी ख्यालमें आयेंगी।

और भोंदु गुरुओंके मठमे रहनेवाले शिष्योंके बर्तावमें भी आक्षेपार्हता मालूम पडेगी। ढोंगी महंत इस्टेट जमा करके कोरटके कज्जे भी लढते रहतें हैं। तुकाराम, रामदास, ज्ञानेश्वर इत्यादिकोनें कभी ऐसा किया था? वे तो द्रव्य और दारा नरकवत् तुच्छ समझते थे। इसीसे मैं कहता हूँ कि लोगोंका संतचरित्रोंका पठण करना चाहिये। पंडितोंको संतचरित्र पढनेकी बात जरा कुछ कम दर्जेकी मालूम होगी। तो भी कोई मनुष्य बच्चेके किताब भी पढ लेगा और उसमे क्या चीजें उपयुक्त है इसकी खोज करेगा, तो उसका दर्जा कुछ कम नहीं होगा ऐसा मैं नहीं समझता हूँ।

मैं:—हम बहुत दफे अपनेको 'राज योगी' कहलानेवाले लोग देखतें हैं। मेरी समझमें 'राजयोगी' तो अंतर्निष्ठ रहकर हमेशा आनंदमग्न होता है। फिर वह बाहरी दृष्टीसे देखनेवालों को व्यावहारिक शारीरिक कर्म करता होगा या ध्यानमग्न स्थितीमें होगा।

महाराजः—आपकी बात सत्य है। तो भी 'रंगनाथ' स्वामीके माफिक कोई संत बाहरी दृष्टिवाले लोगोंको सुखवैभवोपभोगी दीखते हैं। राजाके माफिक ऐसे संत रहते हैं। तो भी अंदरसे उनका मन ब्रह्मानंद लूटता रहता है। उनकी इच्छा न होते ही पूर्वजन्मके संस्कारोंके अनुसार उनके तरफ चले आता रहता है। और वे तो उसके बारेमें बिलकुल बेफिक्र रहते हैं।

मैं:—महाराज मेरा समाधान हो गया। अब ध्यानयोगके अभ्यासके बारेमें एक प्रश्न पूछता हूँ। आदमी गुरुकी या देवताकी मूर्ति मनःचक्षूसे देखकर नैसर्गिक दृश्य भी देख सकेगा। लेकिन ऐसे अनुभवोंसे लाभ क्या कर ले सकेगा? किताबोंमें कहा हुआ है कि साधकको मनःचक्षूके सामने

ॐ, श्रीकृष्ण, या तो बिंदूकी आकृति लाकर उसीकी मनोमन पूजा करना। अब यही करनेका है तो फिर गुरुकी आवश्यकता क्यों होती है ?

महाराजः—आपका कहना ठीक है। महान् साधुओंने जो लिखा है वह नये साधकोंके प्रारंभके लिये है। अबतक बहुतोंको मैंने यह विषय स्पष्टतया वर्णन करके मित्रोंको बताया है। इस प्रश्नका ठीक उत्तर यही है कि मनःकल्पित आकृतियां नाशिवंत तो हैं ही। कुछ कालसे वे मिट जाएंगी। लेकिन मनुष्यकी अंतर्दृष्टि खुल जाने पर वही आकृतियां तेजोमय बन जातीं हैं। इस अंतर्दृष्टि के खुलनेके लिये सद्गुरूकी जरूरत पडती है। सद्गुरु जब साधकके आंखोमें कृपांजन डालेगा तभी यह अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। और अंतर्दृष्टिसे देखकर भी दृश्य बोले तो कल्पनामय खेलही हैं। तो भी आकृतियां नष्ट होकर सिर्फ ब्रह्मका दिव्य प्रकाश पीछे रहता है। और मुमुक्षुका निर्विकल्प समाधीमें प्रवेश होता है। जिसमें कल्पनाएं बद्ध हो जातीं हैं। योगका मुख्य उद्देश यही है कि ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेना। कल्पनाएं बंद पडनेपरही ब्रह्मका अनुभव आता है। फिर जानबूझकर यत्न करनेका काम मिट जाता है। आपहीसे मनुष्य इस अवस्था में जाता रहता ह।

कल्पना स्पष्ट करनेके लिये मैं एक उदाहरण देता हूं। कस्तूरी मृग जबतक जानता नहीं कि कस्तुरी अपनीही नाभिके कमानमें है तबतक वह इधर उधर घूमता रहता है। 'उगम तुझमेंही है' ऐसा कहनेवाला गुरु जब उसे मिलेगा तब क्या वह इधर उधर घूमता रहेगा ? उसी प्रकार संत साधकको पहलेही इस बातका ज्ञान देते हैं। बादमें अंतर्दृष्टि देते हैं। बादमें जब ये दृश्य बंद होते हैं तब साधकको "खुदही ब्रह्म है" इस बातका अनुभव आता है। और स्वात्मसुख में वह तन्मय हो जाता है। अज्ञानयुक्त मानवी जीवात्मा जन्म लेकर पूछता है "मैं कौन ?" लेकिन यही 'मैं' तो परमात्मासे एकरूप सदाही रहताही है। और पूर्ण ज्ञानी भी रहता है। जीवात्माके प्रश्न को शिवात्मा सद्गुरु उसे उत्तर देता है। "तूं वही है" (तत्त्वमसि) और रटनेको कहता है "सोऽहम्" याने "मैं वही हूं।" बादमें जीवात्माका निश्चय भी कर देता है। वोह बात सत्य है। जिससे साधक सच्चिदानंद स्वरूपमें मिल जाता है।

मैं:--महाराज ! मेरी सब शंकाओंका अब निरसन होगया ।

महाराजः--पैठणकर, फिर अब मेरे कहने माफिक ध्यानका अभ्यास करते रहो । जो तुझमेंही है वह ढूंढनेके लिये बाहर मत घूमना । प्रश्नभी मत पूछना । शांत वृत्तीसे अभ्यास करके स्वात्मानुभव कमानेका अब काम तुम्हारा है । बादमें मेरे कहने माफिक अनुभव नहीं मिलेंगे तो दूसरे गुरूके पास जाना । शायद वह तुम्हे योग्य मार्ग बताकर मानवी जीवनका ध्येय कमाने देनेके लिये समर्थ होगा । मेरा कहना अब इतनाही है कि सब शंकाएँ दूर करके ध्यानका अभ्यास शुरू करो ।

मैं:--महाराज ! जिस दिन मैं आपके पास आया उसी दिन मैंने आपको गुरू करनेका निश्चय किया । अब भी यही निश्चय कायम है । और वह बदलना अशक्य है ।

महाराजः--पैठणकर, मेरे गुरुपर मेरा विश्वास दृढ है । और सोऽहम् शक्तीका पूर्ण परिचय मुझे इसी देहमें मिला है । अतः मैं अपने मित्रोंमेंसे किसीकोभी किसी देवताको अपने मनःचक्षूके सामने लानेके लिये कभी नहीं कहता हूँ । लेकिन उन सबको सोऽहम् मंत्र देता हूँ और उनका मन अंतर्मुख कर देता हूँ । सहस्त्र दल कमलकी तरफ जाते समय प्रकाशरूपमें कोई दृश्य बिना प्रयत्न और बिना इच्छासे दीख पडतें हैं । और उस वखत की हुई मानसपूजा कल्पनामय न होकर प्रत्यक्ष होती है यही अंतःदृष्टीसे अनुभव आता है । ये सब दृश्य कुछ भी यत्न किये बिना दीख पडतें हैं और पूर्ण प्रकाशमय होतें हैं । कुछ कालसे यह सब दृश्य कुछ भी यत्न किये बिना दिख पडते है, और पूर्ण प्रकाशमय होतें हैं । कुछ कालसे यह सब दृश्य आत्मरूपमें विलीन होतें हैं । और साधक कुछ कालतक समाधि अवस्थामें जाकर परमानंदका अनुभव लेता है । ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ जैसे पुरानें और रामकृष्ण विवेकानंद जैसे नये संत, ऐहिक व्यवहार करते हुए भी 'सहज समाधि' अवस्थाका अनुभव लेते रहते थें । मेरे मित्र उस सहज समाधिस्थिति का थोडी देरतक--क्षणभरतक तोभी अनुभव लेते हैं । ध्यानका अभ्यास बिलकुल दृढतासे करने बाद यही अवस्था जादह देरतक ठहरते चलती है । और अखीर में दिक्कालके परे होकर अखंड बन जाती है ।

मैं :—महाराज ध्यानाभ्यास करनेके कालमें साधक बीमार होगया तो अभ्यास बिगडता है ?

महाराज :—बिलकुल नहीं ! जब वह बीमार होता है तब आपहीसे वह खाना पिना कम करता है। और उसे कुछ नियमोंका पालन करनाही पडता है। उसीसे उसके अंतरिंद्रिय शुद्ध होकर ध्यानके दृश्योंमे सहज रीतीसे मग्न होकर स्थिरभी होता है। खाली देहका ख्याल आनेपर देहकोही व्यथा होती है और दवाई लेनी पडती है।

मै :—जिन जिनको आपने सोऽहम् मंत्र दिया है उन सबको प्रकाश–दृश्य दिखतें हैं ?

महाराज :—कोई देखतें हैं। और कोई नहीं देखतें हैं। सोऽहम् मंत्र जो लोग अति तीव्र भाव रखकर जपते हैं वे एकदम ध्वनिमग्न हो जातें है और इससे प्रकाश–दृश्य नहीं देखते हैं। अतः मेरे जो मित्र ध्वनीमें मग्न होतें हैं वे प्रकाश नहीं देखते हैं। तुम्हें जब कुछ भी दृश्य नहीं दिखेगा तो सोऽहंके ताकदके बारेमें शंका उत्पन्न होनेका कुछ भी कारण नहीं है। इसी लिये इस प्रश्नका विवरण मैंने इतने स्पष्ट रूपसे किया है।

मैं:—समझ लीजिये कि किसी साधकको देवता दीख पडी तो उसे कुछ लाभ है ?

महाराजः—सचमुच तो कुछ लाभ नहीं है। बाह्यदर्शनोंसे तब तक तो कुछ भी लाभ नहीं होता है जब तक वृत्तियां अंतर्मुख और वासनाएं नष्ट नहीं हुई हैं। दृश्य बोले तो सब मृगजलवत् है सद्गुरुसे अनुग्रह लिये विना दृश्योंसे काम नहीं चलता है। श्री पांडुरंग **नामदेव** के पास प्रत्यक्ष बोलता था और उसीके हाथसे खाता था तो भी **विसोबा खेचर**के हातसे जब उसे अनुग्रह मिला तबही उसे सच्चा आनंद प्राप्त हुआ। तब तक प्रत्यक्ष देवताके संभाषणका भी कुछ असर नहीं होता था। इसी प्रकार किसीको कोई भी देवता दिखनेसे विशेष लाभ नहीं होता है।

मैं:—शब्द ब्रह्म क्या चीज है ?

महाराजः—शब्द ही ब्रह्मके तरफ खींचनेवाला हैं इससे शब्दकोही ब्रह्म कहते हैं। शब्दको ब्रह्मके ही समान समझनेसे लाभ है। यह एक भावनाका

या मनोवृत्तीका प्रकार है। श्री **विद्यारण्य** स्वामी भी यही कहते हैः— "ॐ का सर्वव्यापकत्व वर्णन किया है वह उसका ध्यानके लिये उपयोग होनेके वास्ते किया है। इसमें इस 'चिन्ह' कोही 'सत्य' मानना नहीं चाहिये। 'ब्रह्म' की बात ऐसी नहीं है। 'ब्रह्म' 'सत्य' भी है, और उसकी ध्यानके लिये उपयुक्तता भी है। **श्रीशंकरा**चार्य भी अपने शंकर भाष्यमें यही स्पष्टीकरण देतें है। अक्षर नष्ट होता है तो भी बुद्धीके साथ 'स्फोट' नामक एक शक्ति है। जो अक्षरोंका सत्यार्थज्ञान बुद्धीसे करवा देता है। भूमितीमें 'बिंदु' गृहीत है। 'स्फोट' बोले तो 'आवाज' नहीं है। खाली वह ऐसी शक्ति मानी जाती है जिससे शब्दका अंत्याक्षर सुनते ही अर्थ प्रकाशित होता है। तुम खाली सोहम् जप करते रहो! वही तुम्हारे लिये बस है।

मैंः—महाराज! मैंने सत्‌चित् और आनंदके बारेमें कुछ पढा है। और उसका अर्थ आप जैसे संतोंके मुखसे सुननेकी प्रबल इच्छा है।

महाराजः—'सत्' ऐसी चीज है जिसका कभी नाश होता नहीं है, जिसका अस्तित्व निरंतरके लिये है, और वह खुद 'ब्रह्म' ही है। 'चित्' ऐसी चीज है जो जागृति, स्वप्न और गहरी नींदमें भी स्वयंसिद्ध प्रकाशित रूपसे मौजूद है। और 'आनंद' बोल तो 'प्रसन्नतामय सुख' है। कुछ भी बात हमें प्रिय होती है वह 'वस्तू' के लिये प्रिय न होकर हमारे 'आत्मा' के लिये प्रिय होती है। 'आत्मा' सबोंकी प्रीतिकी बात है। इसलिए उसीका 'अस्तित्व' हमें प्रिय है। अतः 'आत्मा' ही सुख और आनंद है। 'तूं ही' 'आत्मा' है और आत्मा ही 'ब्रह्म' है। यह तत्त्व वेदोंके आधारसे समझ लेना चाहिये और आत्मानुभव लेकर वैसी स्थिति प्राप्त कर लेनी चाहिये।

कोई वेदान्ती बोलते हैं कि जब मनोवृत्तियां काम करतीं हैं तब तो "मैं" मौजूद है ही लेकिन जब मनोवृत्तियां नहीं रहतीं हैं तब भी "मैं" कहीं जाता नहीं है। इसलिए यह मूल तत्त्व "मैं" मनोवृत्तियोंसे स्वतंत्र है। बद्ध नहीं है मुक्त है। जैन और बौद्ध ईश्वर नहीं मानतें है। तो भी इस तत्त्वोको मानतें हैं। दोनों को मैं कहता हूं कि उनके पंथ के लिये चाहे उन्हें इसका प्रसार करना ठीक है। लेकिन खुद वेदोंका तत्त्व तो ऐसा है कि सब मानसिक वासनाएं खाली गहरी नींदके समयमें और मृत्युकेही समयमें आत्मामें विलीन होती हैं।

खुदके निरोधनके यत्नसे यह कल्पना विलीनता साध्य नहीं होती है। और मनोवृत्तियोंकी हलचल चलती है तब यह आत्मा स्वतंत्र नहीं रहता है। " वृत्तियोंके भावकालमें और अभावकालमें भी 'मैं' मौजूद है " इसही सिद्धांतसे मुझें 'आत्मशोधता' कैसी प्राप्त होगी? विवेक कालमें तो इदंताभासही दृढ होगा। लेकिन जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति इनमें और इनके परे रहनेवाला सच्चिदानंद परमात्मा या परमात्मतत्व योगमार्गसे आकलन होने लायक है। शोध मार्गका या तो मध्यसंधीका अभ्यास करते समय साधक जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंका द्रष्टा हो सकता है। क्यों कि जागृतावस्था के सब व्यापार, आत्मा द्रष्टा रूपसें देखता है। जागृतीमें दशेंद्रियोंके व्यापार बंद करनेपर 'मनोराज्य' सुरू होता है। वह मनोराज्य हमें समझ पडता है। यही जागृतीमें स्वप्न समान अवस्था है। मनोराज्य ठहर जानेपर जागृतीकी जो अवस्था होती है वही जागृतीमें की 'सुतावस्था है। इसप्रकार जागृतीमेंही तीनों अवस्थाएं या जैसा अनुभव लिया जाता है उसीप्रकार जागृतीमें रहकर 'आत्मानुभव' आनेके लिये योगमार्गकाही अनुभव लेना पडता है। जबही 'आत्मा'का आकलन हो सकता है। 'लघुवाक्यवृत्ती'नामक श्रीशंकराचार्यका बनाया हुआ शोधमार्गका शास्त्र ग्रंथ है उसका सार यही है कि एक विचार खतम होकर दूसरा शुरू होनेके पहले, या ऐसे दोनोंके बीचमें जो संधिकाल रहता है वह समझ लेकर तद्रूप होना। लेकिन इस मध्यसंधीमेंभी 'मुझे मध्यसंधि मिला' यह भावना नहीं होना चाहिये। क्योंकि इसी भावनासे द्वैत उत्पन्न होता है। अद्वैत वेदांतका तत्त्व इतना सूक्ष्म है। और वह शब्दोसे कहनेकी बातही नहीं है। सद्गुरुकृपासे आत्मानुभव मिलेगा तभीहि साधक उस अवस्थाको स्वात्मानुभवसे प्राप्त कर लेता है।

अब इसमें भी आकलन होनेके लिये सबसे कठीण जो बात है वह शब्दोंकी सहायतासे समझ देनेपर उपरिनिर्दिष्ट वाक्पटु और जैनादि लोगोंके मत कैसे आभासात्मक हैं वह समझमें आजाएगा। 'मैं' (आत्मा) वृत्तियोंके रहनेके और न रहनेके ऐसे दोनोंभी कालमें मौजूद नहीं रहता है। उसका अस्तित्व रहता है तोभी उसकी उपस्थिति उसमें नहीं है। उपस्थिति होतेही अवस्थाओंका ज्ञानही नष्ट होगा। और अस्तित्व होकरभी आदमीके समझमें

उस वक्त वह नहीं आसकता है। लेकिन वाक्पंडित वेदशास्त्री उसकी परिस्थिति मानते है, वही हम हैं ऐसा समझता हैं, और चाहे वैसा बर्ताव करते चलतें हैं। और कहते हैं कि इंद्रियोंका काम इंद्रिय करतें हैं। हमें उससे वास्ता नहीं है ! और लोग उन्हें 'साधु' कहलाते हैं। उसी प्रकार जैन भी मानतें हैं कि सब व्यापार और विचार ठहराकर जो बात पीछे रहती है वही 'मैं' हूं और वही मोक्ष है। ऐसा समझकर सबका त्याग करके शून्यमें जाकर पडतें हैं। श्री शंकराचार्य ऐसे लोगोंको कहते है।:—भाईयों! आगे कुछ भी नहीं है, ऐसा मानकर 'शून्य' में जाकर मत पडो! आगे कुछ नहीं है यह बात जिसे मालूम होती है वही 'तू' है यह समझ लोगे। 'सबका द्रष्टा वही मैं' यह जान लो। गुरुकृपासे उस अवस्थाका अनुभव लेओ। फिर सब मतमतांतर और वाद बंद होगे!"

मैं :—क्या भूत योनि है? वह मनुष्यको सताती है? झपटलेती है?

महाराज :—कोई देवताओंके भूतयोनिमें अनुचर रहते हैं। देवताएं मनुष्यको सताती नहीं है। लेकिन ये अनुचर झपटते हैं, इनके अठारह प्रकार हैं। जिन देवताओके वे अनुचर रहते है उनके नामसे वे पहचाने जातें है। उनके व्यापार साधारणतः रातको चलतें है। वे भयंकर होते हैं और रक्तमांस खातें हैं। मानसिक दोष रहनेवाले और पाप करनेवाले मनुष्योंको वे झपटतें हैं। भीष्मके माफिक श्रेष्ठ मनुष्यके देहमें भी इनका संचार होता ह, ऐसा महाभारतमें वर्णन है। क्योंकि द्रौपदी वस्त्रहरण निवारण करने की ताकद होकरभी भीष्मादिकोंने वह नहीं किया। चुप बैठे। रोगग्रस्तोंको भूत पछाडते हैं। पापके दुष्परिणाम भुगते बखत मनुष्य देहमें भूत संचार होता है, ऐसा कोई लोग समझतें हैं। लेकिन यह बात बराबर नहीं। अपवित्र कार्य करते बखतही भूतसंचार होता है। वृद्ध वाग्भटने इनके बारेमे कहा है:—भूत-संचारके प्रसंग पांच है:—(१) मनुष्य जब अकेलाही रहता है। (२) जब वह निर्जन पडे हुए घरमें रहता है। (३) मनुष्य जब चौरस्तेपरसे चलता हैं। (४) शामकी बत्ती लगानेकी समयमें और (५) अमावास्था और पौर्णिमाके दिन जब मनुष्यका शरीर अमंगल रहेगा तब.

अब भूत मानवशरीरमें किस प्रकार प्रवेश करते हैं यह बताता हूँ। देवासुर पिशाच खाली मनुष्यके देहकी तरफ देखकर ही प्रवेश कर सकते हैं।

या तो उसके मनमें कुछ विकार उत्पन्न करके प्रवेश करते हैं। गंधर्वपिशाच्च मानवदेहको स्पर्श करके घुस जाता है। यक्षपिशाच्च कुछ सुगंध उत्पन्न करके उसके साथ मानवदेहमें प्रवेश करता है। राक्षसपिशाच्च कंधेपर बैठकर जडता उत्पन्न करता है और उसीके साथ अंदर जाता है। कोई पिशाच्च मानवदेहको चिपक कर उसे बेहोश करता है और बादमें शरीरमें घुस पडता है। देवभूतसे झपटा हुआ मनुष्यका बर्ताव ठीक रह कर कभी कभी संस्कृत भाष्य करता है। गांधर्वभूतोंसे झपटा हुआ मनुष्य गायनप्रिय होकर परस्त्रियोंकी संगतीकी इच्छा करता है। श्रीगुलाबराव महाराजने बहुत कुछ इस बारेमें कहा है। मैंने खाली फुटकर बातें बतायीं हैं।

मैं:—मानसिक एकाग्रता आध्यात्मिक प्रगतीके लिये अत्यंत जरूरी है। तब साधकने खुदको एकाग्रता कमानेके लिये क्या करना चाहिये ?

महाराजः—ध्यानका विषय छोडकर अन्य विषयोंके पीछे दौडनेका मनका स्वाभाविक धर्म है। तो भी उसे पीछे खींचकर ध्यानविषयपर लगाना यही एकही उपाय है। वृक्षकी शाखाको हम जब सीधी करनेके लिये खींचते हैं तब छोडते ही वह फिरसे जैसी की वैसी हो जाती है। तो भी रस्सीसे बांधकर हमारा प्रयत्न यशस्वी हो सकता है। इसी प्रकार जप करते समय नौकरी-धंदेके कामोंका विचार आएगा तो मनको वहाँसे खींचकर जप शुरू करना चाहिये। कोई दिनोंके लिये ऐसा अभ्यास करना पडेगा। और खाली अभ्यासकी ही नहीं तो थोडी वैराग्यकी भी जरूरत यहाँ है। मनको प्रिय रहनेवाले विषयकी तरफ वह खींचा जाता ही रहता है। अभ्याससे मनकी चंचलता शायद कम होगी। तो भी विषय-प्रियताका जडसे विनाश नहीं होगा। इस लिये ही अमेरिकामें मेस्मेरिझम के विशिष्ट प्रयोग करनेवाले को दंड देनेका कानून करना पडा। मेस्मेरिझमका शास्त्रभी मानसिक एकाग्रतापरही निर्धारित हुआ है। प्राणायामसे एकाग्रताके लिये मदद होती है। लेकिन उसीपर जोर देनेकी जरूरत नहीं है। वह भी खाली चंचलताही नष्ट करता है। वह विषय-प्रेम नष्ट नहीं कर सकता है। 'श्वासोछ्वास अस्थिर या मौजूद हैं तब तक मनभी अस्थिर ही रहेगा" यह विचार बराबर नहीं है। इससे उलटी स्थिति भी होती है। मनकी चंचलतासे क्रोध दुःखोंके समय श्वास भी अस्थिर हो जाता है। अतः श्वासोंके नियमनसे

मनोनिग्रह निश्चित रूपसे होगाही ऐसा समझना ठीक नहीं है। मनोजय और प्राणजपका यत्न साथही साथ करना चाहिये। अतः भगवान् गीतामें कहते है।:—"चंचल और अस्थिरमन जहां जहां दौडेगा। वहांसे निग्रहसे खींच कर उसे आत्मवशही करना।" (गीता ६–२६)।

मैं:—आपके यहां मैं आया हूँ वह केवल अंधविश्वाससे नहीं। आपमें जो गुप्त शक्तियां निवास करतीं हैं। उनके बारेमें निश्चय होकर ही आया हूँ। महाराज मैं आपको एक प्रश्न पूछता हूँ। शास्त्रोंमें लिखा है कि सब जातिओं में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। तो क्या मनुष्यका गुरू ब्राह्मण ही रहना चाहिये? आपका इस बारेमें क्या कहना है? आप आत्मसाक्षात्कारी संत है। इस लिये मेरे जैसे अनवजान आदमीका विश्वास जम जाएगा ऐसी रीतिसे आप ही अधिकारयुक्त वाणीसे कह सकेंगे।

महाराजः—मेरे जैसाअनपढ आदमी ऐसे विषयमें अधिकारयुक्त वाणीसे बोल सकता है यह बात तुम कैसे कह सकोगे? एक बात निःसंशय सत्य है कि मेरे मुखसे जो शब्द बाहर आते हैं वे मेरे सद्गुरुके ही उच्चार है। वही मुझे बोलने लगाते हैं। ऐसी मेरी समझ है।

अब मैं आपके प्रश्नका जवाब देनेका यत्न करूंगा। रामेश्वर भट (ब्राह्मण) ने जब गुरु किया तब रामदास (ब्राह्मण) नदीक ही थे तो भी उसने तुकाराम (वाणी–वैश्य) को गुरु क्यों किया? बहुतसे सनातनी ब्राह्मण आचारधर्मका अनुसरण करते होते भी उन्होंने दादू पिंजारीको ही गुरु क्यों किया? काका पुराणिकका उदाहरण बिलकुल आजकलका है। वे सात्विक वृत्तिवाले थे। उन्होंने पीरवाडी–सातारेमें जो एक मरहाटा संत था, जिसका नाम संभाजी था उसीको गुरु किया। आदमी जब आत्मसाक्षात्कारके श्रेष्ठतम स्थानपर पहुँचता है तब वह जातपातोंके परे होता है। मेरी समझमें तो ऐसा गुरु करनेमें कुछ भी भूल नहीं हो सकती है। और भी मैं कह सकता हूं कि जब आपको प्रगतीकी इच्छा हो तो आगे दिये हुए बातोंको विषवत् त्याज्य समझना चाहियेः—(१) आत्मसाक्षात्कारी साधुओंकी निंदा, (२) सद्गुरु मित्रों पर उसे छोडकर दूसरे देवताओंकी भक्ति (३) अपने गुरुके दोषोंकी जांच, (४) वेद, कुराण, बायबल जैसे धर्मग्रंथोंको दोष लगाना, (५)

नामजप और ईश्वर भजनको तुच्छ समझना, (६) ईश्वर स्तुतिको खुशामत समझना, (७) वासना तृप्तीकेलिये, पापकरके ईश्वर नामसे पाप धो देनेकी चेष्टा (यत्न) करना, (८) ऐहिकलाभोंके लिये ईश्वर सेवा करना, (९) ऐहिक बातोंमें गढे हुए आदमीको ईश्वर भक्तीके लिये सताना, (१०) ईश्वर भजनमें गढने वालों को नीचे दर्जेके और अपनेको ऊंचे दर्जेवाले कहलाना,

इन सब नियमों का पालन करनेवालोंको आत्मानंदका अप्रतिम अनुभव जरूर मिलेगा। और परमेश्वर कृपासे वह आदमी संसार–सागर तैर जाएगा। ये शब्द मेरे व्यक्तिमय जीवके नहीं हैं। मेरे 'आत्मा'के हैं।

मैः— साधु, पंडित और शास्त्रप्रवीण लोग कहते हैं, कि 'द्रव्य' और 'स्त्री' अध्यात्म प्रगतिपथकी बडी अडचने हैं। वे साधकका नाश करते हैं। मै भी ऐसा ही मानता हूं। तो भी आपका उपदेश इस बातमें क्या है यह समझना चाहता हूं।

महाराजः–– वैसा मानना ठीक नहीं हैं। इन दोनोंसे नाश नहीं होगा। वे मदद भी दे सकते हैं। लेकिन तुम इन बातोंका जिस प्रकार उपयोग करोगे और तुम इन चीजोंको जिस दृष्टीसे देखोगे उसपर इनका परिणाम निर्भर है। हरेक अदमी को 'विचार' और 'विकार' रहतें हैं। आदमी विचार की सहाय्यता लेगा तो इन्हीं बातोंसे लाभ उठा सकता हैं और 'विकारों' की सहायता लेगा तो विनाशभी कर ले सकता है। साधुओंके वचनोंका अर्थ खुद साधुओंकेही मुहंसे समझा लेने बिना नहीं समझेगा। या तो खुद साधु बने बिगर नहीं समझेगा। मै गर्व नहीं करता हूं कि मुझे ही सत्य अर्थ का ज्ञान हुआ है। तो भी मैं अपनी 'अंतरात्मा' के कहनेके समान बोलता हूँ। और साधुओंका मतलब मेरे जैसा ही होगा यह मैं समझता हूं। साधक अपनी स्त्री छोड कर सब स्त्रियोंको माबहिने मानेगा और ध्यानका अभ्यास करके अंतर्दृष्टि प्राप्त कर लेगा तो उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा यह मेरा तो निश्चय है। स्थूल दृष्टीसे भी वह मानेगा कि सब स्त्रियाँ देवताएं हैं। लेकिन यह मनःप्रवृत्ति ध्यानयोगके दृढ अभ्याससे ही होगी। जिस मनको यह वृत्ति प्राप्त होती है उसीको 'विचारी' मन बोल सकतें हैं। उसी प्रकार संपत्तीका उपयोग दूसरोंके हितके

लिये किया जाएगा तो साधकका हित जरूर होगा। दुःखित और आपद्ग्रस्त जीवोंकी तकलीफ कम करनेके लिये जब उसका व्यय होगा तब आत्माको उसीसे सच्चा आनंद जरुर प्राप्त होगा। देखिये कि अग्नीका उपयोग ठीक किया तो उससे खाना तयार किया जाएगा और हमें उससे तृप्ति होगी। और वही घरके छपरमें ही रखा जाएगा तो घर जल भी जाएगा। जिससे नाश और दुःखही बढेगा। अतः समझना चाहिये कि 'कनक' और 'कांता' याने 'द्रव्य' और 'दारा', 'पैसा' और 'पत्नी' ये दो बातें मूलतः खराब नहीं हो सकतीं हैं। मनुष्यकी कर्तृत्वशक्ति और स्वभाव पर इनका परिणाम निर्भर है। 'ब्रह्मचर्य' का पालन हमें साध्य नहीं हैं तो साधकको जरूर शादी कर लेना या किसी एक औरतके साथ प्रेम रखते दूसरी स्त्रियोको मा-बहिने मानना चाहिये। फिर दूसरीं स्त्रियोंके बारेमें खराब विचार मनमें नहीं आने देना चाहिये।

मैं:—पूर्व जन्मके संस्कारोंके अनुसार इस जन्ममें साधकके हाथसे पापाचरण हुआ तो साधकके जीवनमें क्या परिणाम होगा ?

महाराजः—एक दफे ऐसा कुछ अनिच्छासे हो गया तो बात अलग है। लेकिन बहुत दफे वैसा ही जो करेगा और बोलेगा कि 'पीछेसे आयी' है तो वह बदमाश है ऐसा जरूर समझ लेना चाहिये। देखो ! सामने अंगार है और मित्र तुम्हें कह रहा है कि पाँव मत रखो। तो भी तुम रखोगे तो दुःख भोगना ही पडेगा। इसी प्रकार मनुष्यको पश्चात्ताप होनेके बाद वह पापकर्म नहीं करता है। और पापकर्मके समर्थनके लिये शास्त्राधार नहीं ढूँढेगा।

साधकका काम यही है कि तर्कशक्ति और विवेकशक्तीके साथ चलना और गुरुके कहनेके माफिक करते रहना। ध्यानाभ्यासके प्रगतीके साथ साथ उसके बंधन छूटते चलेंगे। अब इस विषयमें **गुलाबराव महाराजका** कहना मैं तुम्हें बताता हूँ :—

"अपने आजकलके साधु देखो ! अपने चरितार्थके लिये कुछ भी न करने में ही उनकी 'मुक्ति' है। अतः कुछ तो भी हिकमतसे पेट भरनेका इलाज ढूंढते रहते हैं। श्रम करके रहनेवाले साधारण लोगोंके मनमें कभी नहीं आएगी ऐसी बातें करके लोगोंको ठगाकर पेट भरनेका निंद्य कार्य ये

लोग करते रहते हैं। ऐसे नीच साधुबैरागी सब सामाजिक नियम फेंक देते हैं। कोई एक साधूका मानमरातब ठीक रहता होगा तो दूसरा साधु उसकी निंदा करने लगता है और उसके बारेमें झूट बातें कहकर उसकी नुकसानी करना चाहता है। जब शास्त्र चर्चा करनेमें अयशस्वी होता है तो बहाना करता है कि मैं ज्ञान चर्चाके परे हूँ! ऐसे साधुओंसे बढकर कभी दुष्ट शठोंका वर्ग दुनियामें कहीं भी नहीं होगा। अपने शिष्यों को ठगा कर ये लोग पेट भरने का व्यवहार करते रहते हैं। पापकर्म लोगोंके सामने आया तो उसाक संबंध पूर्वसंस्कारोंसे लगा देकर वे लोग अपनेको छुडा लेते हैं। और यह पूर्व-संस्कारोंका कारण बहुत दफे उन्हें काम देता है। क्यों कि पापका प्रायश्चित कभी कभी इस जन्ममें मिलता भी नहीं है। बादमें उन्हें जो कुछ दंड होगा वह इनके शिष्योंकी नजरमें कभी नहीं आएगा। इसी प्रकार प्रारब्धका सहाय्य ये लोग वेदांतके भंडारसे लेते रहते हैं। 'साधु तो पापपुण्यसे अलिप्त है' ऐसा कह कर ये लोग मनमाने पाप-कर्म करते चलते हैं। वेद-शास्त्र पढ कर या जानकर भी ये लोग इससे सच्चा शाश्वत लाभ लेते नहीं यही आश्चर्यकी बात है। इससे वेद–ज्ञानको हम या दूसरा कोई भी दोष नहीं दे सकता है। समाजमें आज जो कुछ दुःखकारक और अनिष्ट रूढियां हैं वे वेदांतमेंसेही निकालीं गयीं हैं ऐसा कहकर कोई समाज सुधारक लोग वेदांतकोही दोष देकर वेदग्रंथ जला देना चाहते है। इस प्रकारका मेरा उपदेश नहीं है।

" मैं जो कुछ कहना चाहता हूं कि प्रत्यक्ष वर्णाश्रम धर्म, भक्ति और साधनचतुष्टय संपन्नता इनका उपयोग जीवनमें न करके आदमी खाली वेदमंत्रोंका अध्ययन और बच्चेंके माफिक उच्चारण करते रहेगा तो वह तोतेके समानही है। मैं भूलभी करता होगा। साधन चतुष्टय संपन्न आदमी वेदमेंका एकाध वाक्य लेकर उसकी सहाय्यतासे भी अपने मनमें प्रकाशकी उत्पत्ति कर सकेगा। इसे बाकी घटपटोंकी जरूरत भी न पडेगी। लेकिन इस बातसे यह भी नहीं समझना कि केवल आधाही वेदवाक्य लेकर मनुष्य पूरा ज्ञानी होगा। साधारण लोगोंकी बात ऐसी ही है। थोडासा ज्ञानका अंश पकड कर इसकी सहाय्यतासे वे पूर्ण साधु बन गये ऐसा कहतें चलतें हैं।

" अब समताकी बात लेंगे। गधा भी कहीं वहीं लेट लौटकर समता पालन करता हैं और हम उसे 'साधु' कह सकतें हैं! कुत्ता मा-बहेनोंसे

संग करता है अतः उसीके जीवनमें 'समता' है ऐसा समझकर उसे 'साधु' माना जाता है। 'मख्खी' भी गोबर और आवाज समान भावसे खाकर समता बताती है। ये सब जीव वेदांतकाही पालन तो करते हैं। जीवनमें इसीप्रकार वेदांतका कुछ भी तत्व अपने पीछे चिपका लेकर 'साधु' कहलाये जानेवाले लोग ऐसे ही जीवोंके समान हैं। पुरानोंमें के किन्ही ऋषियोंके हाथसे पापकर्म हुए हैं। लेकिन 'मैंने' पापकर्म किया है। मैं फिरसे तपश्चर्या करूंगा" इस प्रकार वे लोग प्रामाणिक रीतीसे कहते भी थे। उनपर किसीने श्रद्धा रख्खी तो बात अलग है। लेकिन आजकलके हमारे साधु-बैरागी कामवासना छुपाकर विवाह तो करते नहीं है। और शिष्योंके मा-बहनोंके साथ संग करनेकी बातें उजेलेमें जब आती हैं तब पूर्वसंस्कारोंमें वह पाप लगा देकर रिहा होना मांगते हैं। वेदशास्त्रोंके सच्चे अनुयायी ऐसा न करके, पापाचरण प्रारब्धसे हुआ भी तो पश्चात्ताप ही करते हैं। और "पापकर्म होनेके पहले ही, हे भगवन् मुझे परावृत्त करो!" ऐसी प्रार्थना करते हैं। ऐसे लोग दूसरोंके दोषोंपर नजर नहीं रखते हैं। वे उन्हें क्षमा ही करते हैं। दोष देने लायक बात दूसरोंमें देखेंगे तो खुदमें भी दिखी तो खुदको भी क्षमा नहीं करेंगे। 'साधु' की व्याख्या करना कठिन है। तो भी जो साधु होगा उसको सामान्य नीतिनियमोंका पालन तो करना ही चाहिये।

साधूमें जब ऐसे भेद हैं तब लोग भी साधुओंके साथ जो बर्ताव करेंगे उसमें भेद जरूर होगा। नीतिभ्रष्ट साधूकी लोग निंदा करेंगे तो इसमें खराब क्या है? आजकलके साधूका दुराचरण बाहर नहीं आता है जबतक वह बोलता है मैं शुकाचार्य जैसा ब्रह्मचारी हूँ! और बाहर आता है तब बोलता है मैं श्रीकृष्ण हूँ!

मैं:—महाराज अब मैं जो प्रकाश देखता हूँ उसके बारेमें पूछना चाहता हूँ। अभी मैं आपके सामने एक प्रकाशवलय देखता हूँ। पहले वह मैंने मेरे मित्र श्री० भटके घर देखा था। वहां भी मुझे आपकी मूर्ति प्रकाश-वलयसे वेष्टित दीख पडी। यह प्रकाशवलय क्या चीज है? वह किससे दिखता है? जिसे गुरुकृपा नहीं साध्य है उसे क्या यही वलय दिखेगा?

महाराजः—हरेकके साथ यह वलय जन्मसे ही रहता है। उसे अंग्रेजी में Aura ऑरा कहते हैं। पांवके तरफ चौडाईमें कम और सिरके तरफ जरा अधिकसा रहता है। इसमें रंग भी दीखते हैं। रंगोंकी स्पष्टता प्रकृतिके और मनके दुरुस्तीपर निर्भर रहती है। बिजली और चुंबक मणिसे उसपर असर नहीं होता है। इससे मालूम होगा कि वह तेजोवलय जड द्रव्योंसे बना हुआ नहीं रहता है। व्यक्तीके आध्यात्मिक, नैतिक और बौद्धिक बलमें जैसी ताकद होगी उस प्रकार इस तेजोवलय में कमजादह फरक होते रहतें हैं। एक ही व्यक्तीमें मनोविचार और विकारोंके अनुसार इसमें बदलभी होता रहता है।

डॉ. किलनरका शिष्य बागनल, उस तेजोवलयके अस्तित्वके बारेमें पहले साशंक था। बहुतसे प्रयोग करनेके बाद उसे इसके अस्तित्वके बारेमें विश्वास प्राप्त होगया। उसका विश्वास हुआ कि इस वलयके रंग कोई साधारण रंगोंके परावर्तनसे बने हुए नहीं हैं। फास्फरस समान कुछ द्रव्यसे बने हुए भी नहीं है। तो भी यह तेजोवलय स्वयंप्रकाश है और उसमें कुछ गूढ आध्यात्म है, ऐसा उसने माना नहीं और उसने ऐसा स्पष्टीकरण किया कि वे आल्ट्रा-व्हायोलेट किरणोंसे बनें हैं जिससे साधारणों कों नहीं दिखतें हैं। नेत्रोंके कोई विशिष्ट स्नायुओंपर औषधि प्रयोग करनेपर नेत्रोंमें ऐसी ताकद आती है जिसे यह वलय दिखता है ऐसा उसने सिद्धांत बनाया। और यह प्रयोग कैसा करना यह भी उसने लिखके रखा है। प्रयोगोंके बाद उसके निश्चय मालूम हुआ कि अपने गुरु डॉ. किलनेर को स्वभाव सिद्धही ऐसी ताकद है कि जिससे औषधि प्रयोग आंखोंपर न करतेंही वे तेजोवलय देख सकते हैं। ये प्रकाशवलय स्वाभाविक हैं और जड-द्रव्योंकीं बनीं हुई नहीं हैं। कोई स्त्रीपुरुष, जिन्हें यह ताकद है, वे दूसरोंको भी यह ताकद दे सकतें हैं। और शारीरिक और मानसिक कमताकद हो तो नष्ट कर सकते हैं। ताकद बढा भी सकते हैं।

तुम्हें यह वलय दीखता है जिसे मालूम होता है कि तुम्हें यह ताकद आती है। तो भी इस बातका और एक प्रकार है।

ध्यानयोगके अभ्याससे भी यह प्रकाशवलय दीखता है। अंदरमें भी उसे प्रकाशही प्रकाश दिख पडता है। वही 'ब्रह्म' 'आत्मन्' का प्रकाश है। सद्गुरुने अंतर्दृष्टि प्रदान किये बिना यह प्रकाश नहीं दिख सकता है।

मैं:—देहकी अपवित्र या अस्वच्छ अवस्थामें मंत्रजप करना उचित नहीं हैं ऐसा कोई लोग कहते हैं। क्या यह बात सच है?

महाराजः—ईश्वर का नामजप किसी भी अवस्थामें कहीं भी लेनेमें कभी उज्र नहीं हो सकती है। सद्गुरुके दिये हुए मंत्रका जप तो साधककी इच्छा न होते ही साधकके हृदयोंमें शुरू होता है। उसे साधक बंद भी नहीं कर सकता है। फिर वह तुम्हारे बंधन का कैसा पालन कर सकेगा. जानबूझकर अपवित्रही रहकर मंत्र कहना ठीक नहीं है। कोई भी ईश्वरभक्त ऐसा बर्ताव नहीं करेगा तो भी मैं कहतां हूं कि ईश्वरनाम लेनेके लिये स्थान और कालोंका बंधन कभीभी नहीं हो सकता है।

[४]

[श्री गजानन महाराज को लोग सर्वसाधारणतः ऐसे प्रश्न हमेशा पूछते हैं कि (१) गुरुकृपा क्या चीज है? (२) अपनी प्रगति होती है ऐसा साधक ने समझने के लिये क्या उपाय है (३) दृश्य दीखनेसे प्रगति होती है? इन प्रश्नोंका महाराजने खुलासा किया है। आपके शब्दोंमें उसका स्पष्टीकरण यहां दिया है:—

मेरे प्रिय बंधुभगिनियों!

बहुत लोग गुरुसे कहते हैं महाराज मुझपर कृपा कीजिये जिससे मेरे सब कामोंमें यश मिले! बिना आयास से मेरे काम होजाय! ये लोग गुरुकृपा क्या चीज है, आत्मप्रतीति या आत्मकृपा कैसी होती है, इनमें फरक क्या है, यह नहीं समझते हैं। बहुत लोग इसका चाहे सो अर्थ करते हैं, ऐसा मैनें देखा है।

मैं स्वानुभवसे कहता हूँ कि जब स्वानुभवी साक्षात्कारी गुरु साधकों पर अनुग्रह करतें हैं जबही उनकी कृपा होती है। बादमें गुरुने दिये हुए मंत्रका निष्ठापूर्वक विकल्परहित अभ्यास करते करते संसारका कर्तव्य करते हुए भी

मनःशांति बढती चलती है। गुरुकृपाके बाद जो कुछ रहता है वह खाली 'साक्षाकार' रहता है। अभ्यासकी दृढता, मनकी प्रशांतता, और चित्तकी समाधान वृत्ति बढकर "वसुधैव कुटुंबकम्" वृत्ति बढती रहेगी तो गुरुकृपा या आत्मकृपा बढती है ऐसा मानना। गुरुकृपाके बाद 'अहंब्रह्मास्मि' अवस्था प्राप्त होकर साधक अखंड शांति पाता है। यही आत्मकृपा है। और यही संसारसागर पार करनेमें सहाय्य देती है। जिसे आत्मसाक्षात्कार होता है वही 'सिद्ध' कह लाया जाता है। ऐसा 'सिद्ध' पुरुष कर्माकर्मके परे होकर संकल्पविकल्प रहित होता है, और अखंड शांतिलाभ प्राप्त कर लेता है। उसके हाथसे सहजहीसे क्रियाएँ होती हैं। फिर वह संसारके कामधंदे करता हो या न करता हो, दोनोंसे अलिप्तही रहता है। दूसरोंको तो ऐसा भी शायद मालूम होगा कि वह ऐहिक कर्मोंमें ही गढा हुआ है।

व्यवहार चलाकर भी 'सिद्ध' अवस्थामें रहने वाले ऐसे कई एक मार्ग-दर्शक संतोंके नाम और चरित्र 'भक्ति विजय' ग्रंथमें मिलेंगे। **श्री एकनाथ नामदेवादि** संत और योगिश्रेष्ठ **श्री मच्छिंद्रनाथजी** और आजकलके संत-श्री गुलाबराव महाराज जैसे सत्पुरुष संसारमें गढे हुए दीखते हैं। और खुद तो हमेशा आत्मानंदमें ही लीन रहनेवाले हैं। **रामदास** स्वामीने तो संसार न करके भी सांसारिकोंके लिये उत्कृष्ट उपदेश लिखकर रखा है। गृहस्थाश्रम किये बिना मनुष्य इस प्रकार उपदेश कैसा कर सकेगा? यह भी प्रश्न अनेकोंसे पूछा जाता है। अनेक लोग अनेक प्रकारके उत्तर भी देते हैं। कोई बोलते हैं रामदासके पूर्वजन्ममें उसने संसार किया होगा। कोई बोलते हैं रामदास जैसे अंतर्दृष्टीवाले संतोंको सब कुछ मालूम हो सकता है। इस लिये पूर्वजन्मके संसार चलानेके अनुभवोंकी भी जरूरत नहीं है। मेरे जैसा सहज स्फूर्तीसे कहेगा कि रामदासने पूर्वजन्मोंमें संसार और परमार्थ ठीक रीतिसे किया होगा ही। और सद्गुरुके आशिर्वादसे उसे याद भी होती होगी। क्योंकि मुझे भी कभी कभी 'सोऽहम्' चिंतन करते समय ऐसा अनुभव आता है कि पीछले तीन चार जन्मोंके भी दृश्य दीखते हैं। मैं यहां स्वयंस्फूर्तीसे बोल रहा हूँ। जनताजनार्दन पहचान लेगा ही। लेकिन यह प्रश्न भी वैय्यक्तिक है। सबको एक ही प्रकारके अनुभव नहीं आते हैं।

पहले चले हुए विषयके बारेमें मुझे यही कहनेका है कि प्रथमतः गुरु-कृपा (स्वानुभवी गुरुने मंत्रका अनुग्रह करना) और बादमें आत्मकृपा (स्वप्रयत्नसे दृढाभ्यास करके स्वयंप्रकाश देखना) होनेपर आत्मानंदका लाभ होता है। यह सब मिलनेका उपाय एकही है कि साक्षात्कारी गुरूपर श्रद्धा रखना। भावनासे श्रद्धा तैयार होती है। श्रद्धापूर्ण संकल्प विकल्पविरहित होनेसे निष्ठा उत्पन्न होती है और वही अक्षय्य होती है। जिससे अखंड आत्मकृपा मिलती है।

इससे समझेगा कि इस विषयमें 'निष्ठा' का महत्त्व बहुत है। क्यों कि निष्ठाकी सहाय्यतासेही आत्मकृपा और आत्मप्रतीति होती है। पूर्व-संस्कारोंके अनुसार यह आत्मप्रतीतीके लिये कमजादह समय लगता है। 'वालिया' डाकूको 'राम राम' मंत्र दिया गया। उसने श्रद्धापूर्वक उसका जप किया। और मंत्रके अक्षर तो उलटपालटही होगये थे। तौभी उसे आत्मप्रतीति हो गयी। जिससे वही वाल्मिकी मुनी बन गया। इसका कारण है उसकी निष्ठा। तीव्र अभ्याससे हमभी 'शांतिब्रह्म' साध्य करके, संसारमें रह कर सुखदुःखोंके परे हो सकते हैं। मेरे बंधु-भगिनियोंको निश्चयसे मालूम होगा कि "संसार सुखमय है", "हम संसारको सुखमय कर सकते हैं।" "सब विश्व मेरा घर," ऐसी ज्ञानेश्वरके समान वृत्ति होगी।

ख्याल रखिये कि 'प्रयत्न' यही हमारा सर्वश्रेष्ठ शस्त्र है। निष्ठा उत्पन्न होनेके लिये प्रयत्नही काम आते हैं। अखंड यत्न करते रहना, यशापयशका ख्याल नहीं करना, यही हमारा कर्तव्य है। अभ्यास ऐसा होना चाहिये कि नींदमें और स्वप्नमेंभी अभ्यासही अभ्यास चलना चाहिये। मनोमय जपके समान मनोमय यत्नभी होना चाहिये। जिससे तुम्हारा कार्य होजाता है तीव्र भावनासे कोईभी बात स्वप्नमें भी आकर सुलझाई जाती है। और उसीका साक्षात्कार दूसरे दिन जागृतीमें होजाता है। भावनाका महत्व बतानेके लिये मैं अपना एक अनुभव कहता हूं:—

एक दिन मैंने अपने एक मित्रसे पूछा, "क्यों भाई! तूझे ऐसे खराब और गंदे रोग कैसे होते हैं?" वह बोला, "कुछ खराब मित्रोंके संगसे। अभी तो मुझे बहुत पश्चात्ताप होता है। मैंने वनस्पतियोंकी दवाई भी

बहुत कुछ ली। एक आदमीने चिलममेंसे खींचनेके लिये भी कुछ दवाई दी। जिससे कुछ आराम भी पडा। अब सात आठ सालके बाद उन्हीं रोगोंका फिरसे उद्भव हुआ। शायद तुम वे लेलोगे तो मुझपर बडा उपकार होगा। जन्मजन्म तक तेरे उपकार स्मरण करता रहुँगा। और तू लेगा तो ही मैं तेरे किये हुए चमत्कारोंको सत्यस्वरूप मान लुंगा। तेरे हाथसे मेरे देहका सार्थक होने दे!—लेकिन ख्याल रख कि तुझे लोग दोष देंगे। तेरी निंदा-कुचेष्टा करेंगे।" उस वखत कुछ अंतःस्फूर्तिसे ही मैं बोलाः—'लोगोंको चाहे सो कहने दे। जब मैं अंतःकरणसे शुद्ध हूं तब लोगोंकी क्या परवाह है? मेरे अंतःकरणमें तो मैं शुद्ध हूं? अनजानोंसे पहला ही गुनाह हुआ तो सरकार भी उसे माफी देती है। तो दयामय सद्गुरु मुझे भी माफी देगा। फिर मैं सौ भी अपराध परोपकारके लिये क्यों न करूं?" बादमें मैंने वह बीमारी मुझपर खींच ली। पेटके नीचले जगहमें भयंकर खुजलीसी हो गयी। कडी अंगार होने लगी। एकने मुझे कुछ रसायन पिलाया। जिससे बीमारी और भी बढ गयी। लेकिन किसीको बताया नहीं खाली कटुतम अनुभवोंसे समझने लगा कि भावनाओंसे बिमारी कैसी हो सकती है, वेदनाएं कैसी और किससे होती हैं, और संसर्गजन्य रोग क्या चीज है। चारोंने चार रोगोंके नाम बताये? एक दिन रातको एकांतमें अंतःकरणपूर्वक गुरुका आवाहन किया। गुरु प्रकट होकर बोले, "पंधरह दिनोंमें बीमारी खतम होगी।" बादमें मैं सुधर गया। शरीरमें गरमी तो रह ही गयी। और वह बडी तकलीफ देती रही। मेरे अनुभवसे मैं कहता हूं कि किसीकी बीमारी खींच लेनेकी बात भी बुद्धि-कर्मानुसार ही होती है। गुरुमुखसे फिर उस मित्रको 'सोऽहम्' मंत्र दिलवाया बातमें चार–छः सालमें वह मरनेका वख्त आया। उस समयमें उसने दुनियाके किसी भी आदमीको पास नहीं बुलाया। सहजहीसे मैं वहां जा पहुँचा। मुझे बोला 'महाराज' मैं चला, कृपा रखिये!" और 'सोऽहम्'का तीन दफें उच्चार करके पलंग के नीचे उतर कर प्राण छोड दिये।

परमार्थमें ईश्वर प्राप्तीके लिये जनलज्जा नहीं रखना चाहिये। कोई बोलते हैं महाराज! लोगोंकी बीमारियाँ तुम लेते हो फिर तुम्हारी बीमारी तुम क्यों नहीं हटा देते?" उससे उत्तर है कि लोगों पर उपकार करनेके लिये बीमारी लेना अलग बात है और अपनी बीमारी हटा कर उससे भाग

जानेका यत्न करना अलग बात है। भाग जाएंगे तो भी वे हमें छोडतीं नहीं हैं। इससे फिर जन्म लेकर भोगानाहि पडेगा। फिर इसी जन्ममें क्यों नहीं उनका कार्य होने देता? फिर वह ज्ञानी हो या अज्ञानी। गुरुकी कृपासे मुझे यह ज्ञान हो गया है! और गुरुकी कृपासेहि मेरे सब कार्य होतें चलते हैं।

इसी लिये मैं कहता हुं की गुरूकी कृपा होगी तो 'नर का नारायण' क्यों नहीं होगा? एकनाथजीके भागवतमें यही लिखा है। भावनासे सब होता है। सांपके न काटतेही जिसे काटनेकी भावना होगयी ऐसा एक आदमी मर भी गया। ऐहिक बातोंमें जब ऐसी घटनाए हों सकती हैं तब उसी उत्कट भावनासे मनःशांति और परमेश्वर प्राप्ती क्यों नहीं होगी? होनीही चाहिये! अतःके भाई यों! हमेशा परमतीव्र भावना रखकर 'सोऽहम्' पर श्रद्धा रखो। जिससे तुम्हारा कार्यभाग होनाही चाहिये।

कोई साधक अपनी प्रगतीके बारेमें साशंक होकर पूछते हैं। महाराज दूसरोंको दृश्य दीखतें हैं। मुझे भी दीखते थी। लेकिन अब तो सब मिटगये अब मेरी प्रगति होती है या नहीं यह बात मैं कैसे समझूं?

उत्तर यह है कि गुरूने साधक के प्राणोमें मंत्रकी योजना करनेसेही यह दृश्य दीखतें हैं। गये ५२ सालमें मेरी तरफ थोडेहि लोग आये हैं और कोई एक ध्यान जमानें की कृति हमनें उन्हें बताई हैं। २।४ लोग दूसरे गुरुके पाससेभी आये हैं। स्त्रियोंमेंभी वैसीही बात है। जो कोई आयीं वह इतने सालमे खाली ४।५ ही आयीं थी। लोगोंके या उनके आग्रहसे उनकेही पतीके सामनें बिठाकर इसी प्रकारसे ध्यानकी शुरुवात करवायी। जिससे वे आगे बढ गयी। अब प्रगति किसे बोलते हैं यह बताता हूं:—

कामक्रोधादि वासनाएं मनुष्यमें पहलेसे ही हैं। फिर वासनाएं अच्छी हों या बुरीं हों। सबकों काबू रखनेका कार्य साध्य कर लेना चाहिये। सर्वभूतात्म वृत्ति बन जानी चाहिये। जिससे वासनाएं कम होकर अखीरमें बिलकुल मिट जाती हैं। यही हैं प्रगति। वासनाएं कम होनेकी अवस्था खुदको ही समझती है। इस लिये गुरुको या दूसरे किसीको पूछनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती है। यही प्रगति है।

दृश्योंको महत्व नहीं देना चाहिये। किसी भी संतने नहीं दिया है। और मैं भी नहीं देता हूँ। मेरा तो अभ्यास ऐसा है कि "गुरु हमारा जप करे। हम बैठे आराम!" मैं शास्त्र और योगाभ्यास तो जानता ही नहीं हूँ। बचपनमें दोही किताब पढें हैं। और जब भी गांवमें भटकता ही रहता था। गुरुने कृपा करके मंत्र दिया और वही मतवाले माफिक दूसरोंको बाँट दे रहा हूँ। यही मेरा काम! किसीको अनुभव आये तो उन्हें मैं तो अपने गुरुके तरफ लगा देता हूँ।

सो'ऽहम्'के मंत्रसे किन्हीं लोगोंको तो कुछ भी दृश्य न दिखते पर जीवनमें समाधान वृत्ति प्राप्त होती है। शांति बढनेसे भी प्रगतिका चिन्ह मालूम होता होता है। फिर व्यवहार करते रहो। ब्रह्म तो दृश्य और नादोंके परे है यह ख्याल रखते चलना। दृश्य दीखना बंद हुए तो भी गुरुका कहा हुआ मार्ग निश्चयसे रहते चलना। जिससे तुम कृतार्थ होगे। संशय लेकर पीछेही मत रहना। दृश्य देखकर भी जड वासनाएं बढतीं होगी या कमती नहीं होती होंगी तो तुमने क्या कमाया? वासनादाहको दृश्योंसे अधिक किंमत है। नरजन्म मिलना बात कठिन है। यही संत कहते आये हैं और मैं भी कहता रहा हूँ। मेरा अधिकार नहीं है वह गुरुका और परमात्माका है।

मनुष्य मूलतः ज्ञानी होकर अज्ञानसे ठगा जाता है। उसे दूर करनेका काम है। इस लिये ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ साईमहाराज, गुलाबराव महाराज, रामकृष्ण परमहंस, श्रीनारायण सरस्वति, इत्यादि संत जगदुद्धारके लिये आये और भी आयेंगे और अब भी मौजूद हैं। अब खुद मेरी प्रगतीकी बात कहता हूँ।

जिन संतोंसे मेरी बचपनमें भेंट हुई उनका मुझपर बडा प्रेम था। (१) श्रीगजानन महाराज–शेगांव (२) श्रीनारायण सरस्वतीजी (अंचीं) (३) गुलाबराव महाराज, (४) नंगे महाराज वाशिम, (५) श्री साइबाबा मुझें बहुत प्यार करते थे और वे कबीरके अवतार हैं ऐसी भावना मुझे होती थी। (६) श्री राममारुती महाराज भी मुझे बहुत प्यार करते थे। इन्हें तो कल्याण में मिलतेही स्लेट पाटीपर अपनी बचपनकी सब बातें लिखकर बतायींथीं। (७) श्री हरिहर महाराज मौनी थे और स्लेट पाटीपर लिखते थे। मे पाठशाला जाता था तब वे आकर करुणेश्वरके देवालयमें

रहे थे। मुकाम चार-आठ दिनही था। आपने मुझे लिखकर बताया था कि "वाशीममें जबतक नंगे महाराज हैं तब तक प्लेग नहीं होगा। तुझपर दोनों कृपाएं हैं। मुमुक्षु और भाविक लोग तेरे हाथसे लौट जाएँगे।" इसका पूरा अर्थ मुझे तब तो समझा नही। लेकिन आजभी पूरा नहीं समझा है। खाली मैं इतनाही समझता हूँ कि मेरी निष्ठा तीव्र है और मेरा अभ्यास आपहीसे चलता है।

एक शामको एकांतमें जागृतीमेंही जप चला था और मुझे आवाज आयाः—"साधक दशामेंसे तूं सिद्ध बन गया। करना न करना अब समान है।" मैनें ऊठकर हंस दिया! तो भी आजतक मैं कौन हूं यही ढूंढ रहा हूं। सिद्धका घर मिला है इतनाही मालूम हुवा है। सरोवरके तीरपर खडा हूं। डुबकी तो अबतक मारीही नहीं। "दिल्लीपर पहुंचे पर दिल्ली तो बहुत दूर है।" तो भी "राम हमारा जप करे हम बैठे आराम" यही अवस्था हैं। इसी जन्ममें विश्वसंसार हमाराही है ऐसा अनुभव लेते हुए भी कभी अज्ञानसे ख्यालमें नहीं आता है। मैं तो अनपढही हूं। सहजहीसे बोलता हूं। सत्य बोल गुरुकेही है। भूलके हो तो मेरे है। जनता जनार्दन मुझें क्षमा करें।

बादमें यही कहतां हूं कि निष्ठावंत साधकको स्वानुभवी साक्षात्कारी गुरुके पास अनन्य भावसे शरण जाना चाहिये। फिर गुरु उसपर अनुग्रह करता है और साधकको आसक्तीसे परावृत्त कर देता है। 'दासबोध' ग्रंथमें गुरुके बहुत लक्षण बतायें हैं। मेरी समझमें गुरु दो प्रकारके होते हैं। एक मार्ग बतानेवाला या मौंजीबंधन कर देनेवाला। और दूसरा जीव शिवोंका ऐक्य करनेवाला या शादी कर देनेवाला। **श्रीरामकृष्ण परमहंस** इसी बारेमें तीन हकीमोंकी बात कहतें हैं:—हकीम तीन प्रकारके हैं। एक दूरीपरसेही मरीजोंको देखता और पूछताछ करता है। दूसरा नाडी देखकर औषध कौनसी और कैसी लेना यह बातोंसेही बताता है। और तीसरा मरीजोंकी पूरी जांच करके जरूर सो दवाई बताके उसके मुँहमें डालनेवाला। स्वानुभवी गुरु तीसरी किसमका होता है। मार्ग बताकर, अनुभवोंके पटरियोंकी सहायता देकर, मुकाममें मदद देते हुए अखीरमें जीवशिवोंका ऐक्य कर देगा वही 'सद्गुरु' है। ऐसे स्वानुभवी गुरुकी शरण लेकर, निष्ठापूर्वक यत्न करेगा उसे आत्मप्रतीति आयेबिना नहीं रहेगी।

पूज्यपाद श्री गजाननजी महाराजकी समाधि

स्थान :
रान–अंत्रि, ता. चिखली,
जि. बुलढाणा (वऱ्हाड)

स्थापना :
महाशिवरात्र,
शके १८६८

ॐ

पंचम खंड

शिष्योंके परमार्थानुभव

(१) श्री. एम्. एम्. गडकरी, क्लार्क, जी. पी. ओ. बंबईः— कुछ साल के पहले बहुत बिकट परिस्थिति प्राप्त होनेसे मैं बिलकुल उदास सा बन बैठा था। मैं श्री दत्तात्रय का उपासक होनेसे गाणगापुर, नरसोबा-वाडी और औदुंबर नामक तीर्थक्षेत्रोंमें गया था। जहां मुझें अंदरसेही प्रेरणा होती थी कि जीवन परमार्थनें बिताना। घर आने पर विचार आया कि परमार्थके लिये गुरुकी आवश्यकता है। अतः मैं साकोरीमें **उपासनी महाराजके** दर्शन के लिये गया। महाराजने बडे प्रेमसे बातें और पूछताछ कीं। वहांकी परिस्थितिका मेरे मनपर बहुत कुछ असर हुआ। छुट्टी वहां ही काट दी। वापस घर आया। जबसे मौका पानेपर मैं साकोरी जाता रहा। वहांका उपासनाका क्रम और भी कुछ जीवनके नियम मैं पालन करता रहा। साथ साथ मन भी संसारसे अलग करने के लिये मैं अपनेको व्यवहारकी बातोंमेंसे छुडाता रहा।

हमारे पिताजीके समयसे हमारें घरमें श्रीदत्तात्रय का एक फोटो है। मेरे बडे भाईके हाथसे उसकी बहुतसी हिफाजत और पूजाआर्चा होती थी। जिससे वह फोटो मुझे तेजःपुंज दिखता था। कभी कभी फोटोके सामने बैठकर मैं सोचता था कि इतना करके भी जब अगला मार्ग दीखताही नही है तो हमारा पूर्वजन्म कर्म बडाही खराब होगा। इससे तीव्र पश्चात्तापके समान दुःख होता था। और उसी समय हरेक दफे फोटोमेंसे एक तेजस्वी हाथ बाहर आकर बताता था कि "जरा ठहर!" इससे कल्पना होती चली कि अपनी की हुई सेवा ईश्वर लेता है और इससे विचारसे प्रसन्नता भी प्राप्त होती चली। इसी प्रकार बहुतसे साल निकल गये। लेकिन आगे तो कुछ दीख पडाही नहीं। इसी

अवस्थामें एक दिन ऐसी एक वृत्तीनें जोर किया कि चलो सब व्यवहार और घरद्वार छोडकर हिमालय चलें। और फिर कभी न लौटें। निश्चय भी हुआ। तो भी पहले साकोरी जाकर उपासनी बाबाका दर्शन लेकर आगे बढेंगे ऐसा विचार आया। मेरा निश्चय मालूम होते पर बहन और दो बडे भाई बोलेः— " चलो हम साकोरीतक साथ आएँगे और बादमें परमात्मा तुम्हें जैसी बुद्धि देगा वैसा करना। " इस प्रकार वेभी साथही निकल पडे और बंधूने मेरा निश्चय उपासनी महाराजसे कह दिया। महाराज एकदम क्रोधित होकर बोलेः—" हमारी बात सुनना चाहते हो तो एकदम यह निश्चय तोड देदो और अपनी नौकरीपर वापस जाओ। " अब मुझें उन्हें माननाही पडा। बादमें कोई दिन वहां रह कर वापस नौकरीपर आया। निश्चय तोडना पडा इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। और हमारा मार्ग इस तरफ क्यों रोका जाता है ? यह भी समझमें न आनेसे सब गोलमालसाही होता रहा ! मेरे भाई तो मुझे कहतेही रहे कि " देखो भाई ऐसे रहनेसे कुछ लाभ नहीं है। इससे आयुष्य, द्रव्य और समयकी खाली हानि हो रही है। " साथ साथ जिस सत्पुरुषके अनुग्रहसे उन्हें शांति प्राप्त होती चलती थी उनका भी वर्णन करते रहते थे। लेकिन मेरा विश्वास नहीं होता था। तो भी मनमें आता ही था कि जब वे लोग इतनी सांसारिक खटखटें सहन करके शांतिसे ही जीवन चलाते थे तो सचमुच ही गुरुकृपासे उन्हें चिरशांति सुखका रास्ता मिला होगा।

एक दिन यही सत्पुरुष श्रीगजानन महाराज नासिकसे दादर आये थे। और बंधूने मुझे पकड लेकर उनके सामने खडा ही किया। महाराज जिनके वहां ठहरे थे वे जनाब भी मेरे मित्र ही थे। उनके घर जाकर देखा तो वहां एक साधारण आदमी बैठा दीख पडा। कपडे भी मामूली थे। मेरे बंधूने उसीके चरणोंपर मस्तक रखा। तब मैंने भी वही महाराज समझकर चरणोंमें मस्तक रखकर एक जगहपे बैठ गया। बंधूने बताया " यह मेरा छोटा भाई आपके दर्शनके लिये आया है। " थोडी देरतक वहां बैठकर मैं वहांसे घर लौटा।

बादमें तीन साल लौट गये। मेरे भाई हमेशा खुदके परमार्थके अनुभव बताते ही रहे। एक दिन चाफेकर नामक **श्रीगजानन महाराजके**

एक शिष्य मेरे भाईकी तलाशी करते हमारे घर आये। भाईने हम दोनोंकी पहचानत कर दी। श्री० चाफेकर मुझे बोलेः—देखो तुम्हें ईश्वर-प्राप्तीकी इच्छा है अतः बोल रहा हूँ कि तुम्हारे ही रिश्तेदारोंमें जब एक संतरत्न पैदा हुआ हैं तब तुम्हें इधर उधर जानेकी जरूरतही क्या हैं ? खुद हमनें आनंद प्राप्ति कर ली है इसलिए तुम्हे बता रहे है। हमनें बहुतसे साधु-ओंका दर्शन लिया है। उनमे कई एक आत्मानंदमें मग्न हुए देखे हैं। जिस सत्पुरुषसे हमने अनुग्रह लिया है वह तो नासिकमें है। और परेलमें कभी कभी आते हैं। जब वे इधर आएँगे तब अनन्यभावसे उन्हें शरण जाना। फिर तुम्हारी बात तुम्हें समझ ही जाएगी!"

मैं भी शोधनें लगा कि जब यह मित्र इतना प्रेमसे कह रहा है तो इसमें कुछ सत्यांश तो जरूर होगा। फिर एक दिन **श्री गजानान महाराज** परेल आतेहि मैं दर्शनके लिये चल पडा। मेरे भाईनें मेरी अवस्था वर्णन करनेपर महाराजने मेरी पूछताछ करके कहा कि "बृहस्पतवार के दिन फिरसे मिलो जब देखा जाएगा!" फिर २७–८–४३ ई० रोज पूजा-नैवेद्य का साहित्य लेकर भाईके साथ हम दर्शन के लिये गये। जानेपर आपकी पूजाकरके मुझपर कृपा करनेके लिये मैने विनयपूर्वक प्रार्थना की। फिर महाराजनें मुझे दो तीन प्रश्न करके सामने बैठनेको कहा। अनुग्रह किया और ॐकारका जप करनेका हुक्म किया। इस मार्ग का नाम क्या है?" ऐसा मैं नें प्रश्न करनेपर बोलें इसे 'सरस्वती' मार्ग कहते हैं। और भी उपदेश किया:—

अंतःकरणमें वृत्ति ऊठनेपर ख्याल रखकर उसकी जांच करते चलना। वृत्तीके चक्कर में मत फसना। इंद्रियजन्य सुखोंके लिये वैरग्य और संत-समागम इन दो बातोंसे संसार सागर तैरा जा सकता है। और नरजन्म का सार्थक होता है, यह समझ लेना। इसके लिये हठ-योग की थोडी जरूरत पडती है। उससे कोईभी साधक को सद्गुरुकृपासे ध्यानयोग की प्राप्ति होती है! इसेही कहते हैं सद्गुरुकृपा। ऊपरवालीं एक-दो बातों के लिये ही राजयोगमें हठयोगकी मदद लेनी पडती है।

पहलेही दिन मुझें ॐकार का दर्शन हुवा। कानोंके दरवाजे जैसे खुले जाकर जप होते चला। आसन जम गया और दृष्टीभी नासिकाग्रमें स्थिर

हो गयी। किसम किसमके रंगवाले बादल आकर मन शांत होते चला। एक दिन गजाननका दर्शन होकर झंडे दीख पडे। फिर एक वीणा दीख पडी। फिर सरस्वतीका दर्शन होकर हाथमें वही वीणा दीख पडी। क्षितिज और सूर्यनारायण दीख पडा। फिर एक देवलका दृश्य ऊपरसे शुरू होकर नीचेतक सामने आया। अंदर देवी की मूर्ति दीख पडी। अंदर से एक हाथ बाहर आया। उसने मुझे चंदन लगाया। और भी एक हाथने आकर मुझे कुंकुम लगाया। माता पिताओंका दर्शन होकर मुझे बडा संतोष हुआ। दूसरे एक दफे किसीने दूरीपरसे मेरे गालेमें एक श्वेतपुष्पहार डाला। छत्र, हाथी, वगैरे का दृश्य दिख पडा। फिर एक ऐसा रास्ता दीखा कि जैसा चांदीसुवर्णद्रवमय होकर बहही रहा है। किस्म किस्मके रंग दीखे। नीले प्रकाशमें सफेद चक्र दीखपडे और श्री विष्णूका दर्शन हुआ।

महाराजनें मुझे मानसपूजा करनेकी रीति बतायी। महाराजकाभी शरीर तेजःपुंज ऐसा दीख पडा। जहां वहां सुवर्णवर्ण प्रकाश होगया। बादमें एक बडा सिंहासन और कई संतोंको बिठाये हुएँ पालकियां जातीं हुई देखीं। एक पालखीमें **श्रीराममारुती** महाराज दीख पडे। और एक जगह कामधेनूका दर्शन हुआ। समुद्र, पेडोंपर वानर और शिवलिंग इनके भी दृश्य दीख पडे।

एक दफें जप करते समय मेरे शरीरमें एकाएक कुछ गडबड शुरू होगयी। पृष्ठवंशमें धक्के बैठने लगे। और वह पूरा खुला होकर जप वहीं होने लगा। नाभि कमलमें भी जप शुरू होकर वहां एक कमल उत्पन्न होगया। और उसपर श्रीविष्णूकी मूर्ति दिखने लगी। बादमें वह मूर्ति अदृश्य होकर वहीं सद्गुरुकी मूर्ति दीख पडी। एक स्त्रीनें आकर मेरे गलेमें हार डाला। महाराज 'चलने दो' ऐसा इशारा भी करते रहे।

दूसरे एक समय नाभि-कमलमेंसे प्रकाशके फवारे उडते देखे। फिर मूलधार और ब्रह्मरंध्रमें जप होते चला। चित्त प्रसन्न करनेवाले किसम किसमके रंगीन, तेजःपुंज प्रकाश दीखते थे। बीचमें **श्रीनारायण सरस्वतीजी** का दर्शन हुआ। आंख बंद करते ही नीलवर्ण बिंदु तो हमेशा दीखताही है। गरुड और विठ्ठल का दर्शन हुआ। चलते, बोलते और पढते समय तेजस्वी मौक्तिक पंक्तिया दीख पडती हैं।

ता. ४–३–३८ इ० रोज शामसमय ऑफिससे आकर थोडी देरके बाद ध्यान करते बैठा था। वह होजानेपर जरा लेटा रहा था। उस वक्त पेटमें नीचेसे कुछ शक्ति जैसी अंदर घुस पडी। और मेरा शरीर जोर जोरसे धक्के खाने लगा। पांव तो बिलकुल टूट जैसे पडे, जबान अंदरसे खींची गयी। मुँहमेंसे शब्द निकालनेकी ताकद चली गयी। अब मैं जैसा मरता ही हूँ ऐसा मालूम होने लगा। कमरेमें इस समय मैं अकेला ही था। कुछ देरसे मेरे तीन भतीजे घर आये। उन्हें मेरी अवस्था देखकर बहुत डर उत्पन्न हुई। मेरे मित्र श्री० संतुराम कर्णिकको बुलवा भेजा। वे भी आकर समझे कि अब मेरे प्राण निकल ही जाएँगे। मैं तो प्रेतवत् पडा था। तो भी अंदरमें आनंदही भरा हुआ मालूम होता था। लोग बोलते हैं कि मेरे मुखपर आनंदही दिखता था। मेरे मित्र श्री० पाटणकर वकील भी आये। साथ डॉक्टरको भी लाया जिसने रातको बारा बजनेके समय नींदकी दवाई दे दी। महाराजको तार करनेके बारेके पूछनेपर "वैसी कुछ जरूरत नहीं है" ऐसा उत्तर भी मैंने दे दिया। मित्रके चलेजानेपर कोई तेजःपुज दिव्य व्यक्ति घोडा दौडाते मेरे पास आयी ऐसा मुझे दिख पडा। आप महाराजही हैं यह भी मैंने जान लिया। बादमें देहमें शांति आते चली और मैं ठीक ठीक सो गया। दूसरे दिन सुबह कमरके नीचला सब भाग एकदम बेकामसा होगया। लकडीकी सहाय्यतासे खडे होनेका यत्न करनेपर चक्कर आके गिर पडूँगा ऐसाही मालूम होने लगा। सायंकालके समय महाराजका फिरसे दर्शन हुआ और आपने मेरे शरीरमें कुछ उष्णता उत्पन्न कर दी। ऐसीही अवस्था दो तीन दिन तक रही। महाराजको चिट्ठी लिखी गयी थी। जबाब आनेपर नासिक जाकर महाराजको सब बातें बतादी। महाराज बोले, "तुरंतही आना ठीक होता था। इतने दिन ठहरनेका कारण नहीं था।" डेढ़ महीनेकी छुट्टी वहांही काट दी और जबतक मेरी पूरी तन्दुरुस्ती महाराजकेही सान्निध्यमें हो गयी। उस मुकाममें पीछले सब दृश्य मिट गये। ॐ के जगह सोऽहम् मंत्र शुरु होने लगा। मैं एक दिन बिलकुल पातालमें गयासा मालूम पडा, और वही जप शुरू होगया! अंधकारमे डर मालूम होकर शरीरमें कंप उत्पन्न हुआ। झट् सब जगह प्रकाश ही प्रकाश होकर शरीर भी प्रकाश मय होंगया। जिससे ऐसा आनंद हुआकि उसका वर्णन नहीं हो सकता है। अब

तो मय मैं कुछ भी करता ही नहीं हूं। सब कार्य चलते रहते हैं और जप और प्रकाश दर्शन भी होता रहता है। जो कोई सामने आता है उसके अंदर भी सोऽहम् जप चलता है व मुझें सुना देता है। एकांतमें भी बाहरी जगत का सोऽहम् का आवाज आकर मेरा ध्यान लग जाता है। सर्वत्र प्रकाश दिखता है। स्वानद होकर जगत् प्रकाशमय दिखता है।

पहली कल्पना ऐसी थी कि हिमालय जानेसेही एकांत मिलेगा। वह सद्गुरुकृपासे नष्ट होकर ज्ञात हुआ कि आनंद कहीं भी हो सकता है। और तीर्थ–तपःश्चर्या की जरूरत होती ही है ऐसा नहीं है। मुमुक्षुने तीन चार बातें ख्यालमें ठीक ठकि जमाकर रखनी चाहिए। उसका सद्गुरुपर अंधविश्वास न होकर विवेकयुक्त विश्वास होना चाहिये। अभ्यास सतत अखंड होना। संत कृपाकी कोशीश करते रहना। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

(२) **श्री० सदाशिव खंडेराव गरुडे, परेल, बंबई**:—मेरे चचेरे भाई स्व० मोरेश्वर रामचंद्र मथुरे और मैं लोअर परेलमें वॉर्डन वकीलके चालमें रहता था। श्री० मथुरेसे मिलनेके लिये महाराज खुदके पैसे खर्चकर मोटरसे आते थे। उस समह हमारी पहचानात हो गयी थी। उनके ऊँचे कपडोंपरसे और साधारण रहन-सहनसे पहचना नहीं जाता था कि आप कोई महाराज हैं। पीछेसे मालूम हुआ कि आप योगिराज हैं। एक दिन मेरे ऑफिससे आनेपर मैंने समझा कि महाराजने मेरी औरतके पास शराबका प्रसाद मांगा, इससे महाराजके बारेमें मेरा जो आदरभाव था वह नष्ट होते चला। मेरेपास पैसे थे। तो भी शराबकी दुकानसे शराब लानेके लिये मुझे कोई मनुष्य नहीं मिलता था। और मैं तो ऐसे दुकानमें जाना हराम समझता था। मेरी औरतनें अडोस-पडोस मैं से, लडकीके बीमारीका बहाना बताकर कुछ थोडीसी ब्रॅंडी पैदा की। और घरके देवोंके पास रख दी। अब यह शराबी आदमी हमें सन्मार्ग किस प्रकार बताएगा ऐसा भी मेरा मन मुझें बोलने लगा, उस रात को मुझें नींद भी नहीं आयी। सुबह जब महाराज श्री. मथुरे से मिलने आये तब पडोस की कोठीमें मैं उनसे मिलने भी नहीं गया। लेकिन साडेनऊ के समय खुद महाराज एक लकडी की सहायतासे चलते हुए मेरीही तलाशी करते मेरी कोठीपर आये। मुँहसे दोहा दुहराते थेः—

"खबरदार रहना। दिलपर नजर सदा रखना।" उस वक्त मेरी देवपूजा होकर मेरे भोजन की थाली तैयार करके रखी गयी थी। उसीमेंसे महाराजने कुछ पदार्थ उठाकर खा लिया। मेरी औरतनें मुझसे कहा कि "वह ब्रँडी का प्रसाद उन्हें दीजिये"। लेकिन महाराज तो वह प्रसाद मुझेही देने लगे। मनमें मैं बोला "क्या यह प्रसाद पीकर ऑफिस में जाना!"। महाराज बोले "लेनाही पडेगा!"। जब हमारे ही सामने एक कटोरी में महाराजने यह शराब डाल दी और वह हाथ से ढांक कर बोले 'ले ओ!'। लेकिन कटोरीमें डालते ही **शराब का दूध बना था**। हम दोनोंने वह प्रेमसे ले लिया और शराब के बारे में महाराज को दोष देने का विचार ही बंद हो गया।

श्री० नारायणराव समर्थ परेलीमें गव्हर्मेंट गेट के पास रहते थे। जब एक महाशिवरात्री के दिन शाम को मैं कोई मित्रों के साथ वहां महाराज से मिलने गया। बत्तियाँ जलती थीं। जब महाराजने मुझे एक ज्योतीके तरफ देखने को कहा। उसी समय मुझे हरेक मनुष्य और वस्तु तेजोगोल के माफिक दिखने लगी। आध घंटा तक यही अवस्था थी। बादमे महाराजने मेरे सिरपे हाथ रखते ही सब पूर्ववत् दिखने लगा। थोडी देरके बाद हम लोग घर लौटे। मेरे भाई जब 'बोरली' रहते थे तब एक दिन महाराज वहां आये। हमारी वृद्ध माता से बोले, "मुझे गोदमें लों" महाराज का शरीर बिलकुल ही कृश हैं। इससे मेरी मातानें तो उन्हें झट उठाया। तो भी नीचे रख कर फिर उठाने को बोले तो शरीर का बोझा इतना बढाया कि कितनी ही ताकद लगाने पर उठाया नहीं गया। ऐसे कई एक चमत्कार चाहे करते हैं। लेकिन चमत्कार करने को बोलने पर बडा घुस्साही करते हैं।

धुलियामें एक शादी के मेजवानी के समय अगरबतियां नहीं थीं। महाराजनें सिगरेट ही सिलगायी और पुरे घरमें सुगंध ही सुगंध फैल गया। एक दिन यात्रार्थ सामानमें साथ बहुतसी शराब कीं बोतलें लीं। हम लोग बोले, "क्या महाराज इतनी भी रास्ते मे ही पिएंगे तो आफत ही होगी" महाराजने झट सब बोतलें बतायीं तो उनमें दूध ही भरा मिला।

महाराज के साथ रहने पर मनुष्य कितने भी दुःखमें हो परन्तु आनंदित ही होता है। आप के सत्संगमे समय कैसा चले जाता है कुछ समझमें भी नहीं आता है। मैं और मेरे स्नेही श्री० बालकृष्ण दिक्षीतने महाराजको शराब पीते

हुए अवस्थामें गाडीमें डालकर दो चार संतोके पास भी ले गये थे। संतोने तो महाराजका खूबही सत्कार किया था। उन्हें शराबका चिन्ह ही मालूम नहीं पडा। मुकामपे महाराज जब रहते हैं तब कभी रोटी-पानीका इलाज करनेका कारण नहीं पडता था। चाय और एकाध समय मुठ्ठीभरसी कोई चीज खाकर ही दिन चले जाते थे। इससे मालूम हुआ कि आपको भोजन की आवश्यकता ही नहीं पडती है।

(३) **विनायक काशिनाथ खळे; दादर, बंबई:**—मैं एक पातकी हूँ। पितरोंके पुण्यप्रतापसे ही मुझे श्री० गजानन महाराजसे भेंट हुई। आपके आज्ञानुसार दिनमें दस बारह घंटों तक जप ही करता रहा। तीसरे ही दिन शिरमें कुछ आवाज होकर शुभ्र ज्योति दीख पडी। उसीका लाल गेंद बन गया। बहुत आनंद भी प्राप्त हुआ। कई दिनोंके बाद नीले और लाल चतुष्कोण दिखने लगे। एक दिन ध्यानके समय खंभेमेंसे श्री० गजाननकी मूर्ति प्रकट हो गयी। जप करते समय बैठे बैठे ही एकाग्र चित्त होकर ऐसे दृश्य दिखते हैं। आँखे कभी बंद रहती हैं कभी खुलीभी रहती है। एक तेजःपुंज चेहरा दिखता है। आँखोंमें बिजलीजैसा तेज दिखता है, और वह सहन न होनेपर मुझे अपनी आँखें खोल देनी पडती है। मुझे इन सब अनुभवोका कुछ अर्थ नहीं ज्ञात होता है और मैं लिखभी नहीं सकता हूँ। खाली यही मानता हूँ कि सद्गुरु सब जगह हैं और मुझमें भी है। मेरा चारो ओर भटकनेवाला चित्त शांत होता चला है।

(४) **श्री पाटणकर. बी. ए., एलएल्. बी, वकील, दादर:**—चालीस सालकी उमरतक मेरा जीवन अनिश्चित रीतीसे चलताथा। ईश्वरका अस्तीत्व भी माननेमें शंकाएं आतीं चलीं। दो सालतक मेरी पत्नी बिमार होगयी। इससे मनपर असर होकर मैंनें **श्रीराम कृष्ण परमहंसका** जीवन चरित्र पढना शुरू किया। और और धर्म-ग्रंथोंके पढनेसे मेरा मन बदलने लगा। भगवद्गीता पढनेपर मेरा मन बहुत कुछ साफ हुआ। पत्नीकी बिमारी तो बढती चली। लोगोने कुछ ग्रह शांतीके उपाय करनेको कहा। लेकिन ईश्वरकी कृपासेही सब कुछ होगा ऐसा मेरा विश्वास होने लगा।

एक मित्रकी सूचनापर मैं रोजाना भगवद्गीताका ग्यारहवा अध्याय पढने लगा और श्रीकृष्णका चित्र सामने रखकर ध्यान शुरू किया। इससे मनकी शांती बढती चली। मनके सामने अस्पष्टसी श्रीकृष्ण मूर्ति भी दिखने लगी। सद्गुरुप्रसादकी यह तो तैयारीही जैसी होगई और १९३१ ई. के सप्टेंबर मैं अपने मित्र श्री. गडकरी वकीलके साथ श्री. गजानन महाराजका दर्शन करने गया और महाराजको सब बातोंका वर्णन कर दिया। महाराजने कृपा की और मुझे ध्यान करनेको कहा। दोही दिनमें श्रीकृष्णमूर्ति या महाराज मेरे सामने स्पष्ट दिख पडने लगे।

बादमें महाराजने उसी श्रीकृष्णमूर्तीकी मानसपूजा करनेको कहा। जिससे श्रीकृष्णजी प्रत्यक्ष सामने बैठे दिख पडे और मुझें तीर्थप्रसाद भी देने लगे। श्रीकृष्णजी का 'ॐ राधाकृष्ण' मंत्र की सहाय्यतासे जप करके मेरी पत्नीके साथ पूजा भी की। मेरी पत्नी उस वक्त ध्यानमें बिलकुल तन्दुरुस्त दिख पडी।

मनमें होता हुआ जप कहींसे कानोंमें आवाज देने लगा। गीताका ग्यारहवा अध्याय भी इसी प्रकार सुननेमें आने लगा। सूक्ष्म शरीरकी सहाय्यतासे तीर्थोंमें जाकर स्नान भी करने लगा। ऐसी जलदीसे प्रगति हुई और हर दिन जाकर महाराजके सामने साष्टांग नमस्कार करने की इच्छा तीव्रतासे उमड आने लगी।

ध्यानमेंहि श्रीकृष्णजीकी पलंगप सुलाकर मैं शालसे ढांक देता था। एक समय शाल उठायी तो श्रीकृष्णजीके जगह महाराज सोये हुए मिले। फिर उन्हीकी जगह में और बादमें मेरीहि जगह मेरी पत्नी भी दिख पडी। बादमें मालूम पडा कि, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का अर्थ यही है।

इन्हीं दिनोंमें मुझे कई एक दफे अगरबत्तियां, अत्तर और केतकीके सुगंध आतें थे। श्रीविष्णु, रामदास, शिवाजी, तुकाराम इत्यादि विभूतिया भी दिखतीं थीं। एक दिन हृदयमेसें एक ज्योति निकलकर कंठमें चढती देखी उसी दिन महाराज श्री गडकरी के घर आये थे। मध्यरात्रिके समय आपने मुझें ॐकार का ध्यान करनेको बोला। तेजस्वी ॐकार का भी दर्शन हुआ.

बादमें श्रीकृष्णके स्थानपर श्रीशंकर और उसकी जगह एक राक्षस दिखनेसे मुझे बहुत कुछ डर उत्पन्न हो गयी। थोडी देरमें डर दूर जाकर मैनें उसी को मेरी गर्दन काट कर सिर उडा देने को कहा। मेरा सिर दसबारह हाथ के अंतरपे जाकर पडा। राक्षस के और मेरे बीचमें एक चतुष्कोण अग्निकुंड दीख पडा। उसीमें मेरा सिर जाकर पडा। फिर मैंने अपना बाकी शरीर भी कुंडमें फेंक दिया। जिससे मैं समझा 'अविद्या' मैंने जला दी। अब विद्या ग्रहण के लिये लायक बन गया।

एक चंद्रग्रहण के दिन मेरी पत्नी श्रीशंकरके सामने बैठी देखी और यमराजने आकर अपने पाश मेरे पत्नीके गले डाले देखे। श्रीशंकरके हुकूम से यमराज पाश छुडवाकर वापस गये देखे। मेरी पत्नी मेरे ग्राममें नहीं थी। बादमें चिठ्ठी आयी कि पत्नी चंद्रग्रहणके दिन बिलकूल मर ही जाती थी। श्री. गजानन पत्नी को अभय देता है। और श्रीकृष्ण मुझे आश्वासन देते है ऐसा भी अनुभव ध्यानमें आते चला।

गणेशचतुर्थीके दिन महाराजने मुझे मूलाधार चक्रके तरफ ध्यान देने का उपदेश किया। वहां श्री गणपतिका दर्शन हुआ।

आश्विन मासमें ध्यान समयमें शरीर को झटकेसे आने लगे। शरीरमें ऐसा कंप होने लगा कि किसी भूता-पिशाच्च की बाधा हुई, वा कुंडलिनी जागृत हुई इसका पता नहीं रहा। महाराज को चिठ्ठी लिखने पर जबाब आया कि, "चलने दो। डरो मत।" कई दिनों के बाद खुद महाराज बंबई आये और मुझे अपने सामने ध्यानके लिये बिठाया। कुंडलिनि काली-नागन के माफिक दिख पडी। वह पृष्ठवंशमें खडी होकर शिरतक आयी और गुप्त हो गयी। फिर मस्तकमें घुसती देखी और वहांसे द्विदलचक्रमें (भ्रूमध्यमें) आया देखी। वहां मुंह ऊंचा कर के थोडी देर चक्राकार होकर बैठी और फिरसे गुप्त हुई। महाराज के हुकुमसे फिर दिख पडी। जब सुवर्णकी ही बनी जैसी दिखी। गुदद्वारसे हृदयतक आयी, तब उसकी आंखोंमें देखने को महाराजने कहा, वहीं मुझे श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। बादमें महाराजने बोल दिया कि अब आपकी अनुपस्थितिमें भी ध्यान करते रहना और मैं दूर होकर भी हमेशा साथ ही हूँ ऐसा आश्वासन दे दिया।

मूलाधार चक्रके तरफ ध्यान रखने को महाराजने बोलने पर पहले मुझे एक सुंदर स्त्री और एक प्रकाश ज्योति दिख पडी। उस स्त्रीने वही ज्योति बतायी। एक दिन एक होमकुंड दिख पडा। उसमेंकीं ज्वालाएँ मेरे हृदयतक आतीं थीं। उसीमें एक सुंदर स्त्री दिख पडी। बादमें उसीका स्वरूप बदलकर सर्पिणी स्वरूप कुंडलिनी का दर्शन हुआ। उसे अनंत मुख थे। जिसमेंसे अनंत जिव्हायें बाहर आकर हलचल करती थी। मेरे शरीरमें कंप होता था, तो भी मन आनंदमय और चेहरा हास्ययुक्त था। एक दफें ध्यानमें गौतमबुद्ध भी दिख पडे। महाराजने रासक्रीडापर ध्यान जमानेको बोलनेपर मुझे हजारों गोपियाँ श्रीकृष्णके साथ खेलती हुई दिख पडी। आत्मज्योतीका ध्यान करनेको महाराजके बोलनेपर वह नीलवर्णमय दीख पडी, जिसे मैंने चारों ओरसे देखा।

एक दफे मुझे ही श्रीकृष्णके मुरलीका ध्वनि श्रवण करनेकी इच्छा हुई। मुझे मुरली ली हुई श्रीकृष्ण मूर्ति हमेशा दिखती ही थी। मैंने बहुत कुछ हठ किया और रो भी दिया। बादमें श्रीकृष्णजीने मेरे शिरपें हाथ रखके कहा कि मुझे वह भी सामर्थ्य आ जाएगा। फिर महाराजको यह बात बताने पर महाराजने ध्यान करनेको कहा। तब श्रीकृष्णमूर्ति बांसरी बजाती हुई दीख पडी। और मुझे मुरलीका नाद भी आया।

मेरी पत्नी 'कराड' ग्राममें बीमारही थी। महाराजके कहनेपर मैंरी वहाँके मुकाममें पत्नीके सिरपें हाथ रखकर उसे ध्यानकी शुरुवात करा देता था। और मैं भी ध्यान साथ ही करता था। उस वक्त मेरी जगह आपही बैठे है ऐसा प्रतीत होता था। बुखार तो पत्नीको वैसा ही आता रहा। लेकिन पत्नीका विश्वास बढता चला कि बीमारी हट जाएगी और तन्दुरुस्ती आजायगी। उसी मुकाममें श्रीकृष्णजीसे ध्यानमें ही मैं बोला कि पतीके बारेंमे आप चाहेसो कीजिये। मुझपर दया कीजिये। मुझे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य दीजिये। भगवान बोले, "डरो मत। वैसाही होगा।" कभी कभी आप, श्रीविष्णूके साथही मेरी पत्नीका रक्षण करते हुए देखा, सुदर्शनचक्र सबोंके चारी और घूमता देखा, एक दफें शेषशायी भगवान् के दर्शन के लिये पत्नीके साथ जाता दिख पडा। श्री लक्ष्मीजी मेरी तरफ देखती मालूम पडी। हम

दोनोने श्रीविष्णूसे प्रार्थना की, हमे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य दीजिवेगा। दोनोके सिरपे भगवान वरदहस्त रखते देखे।

एक दफे अमृतपान करती हुई कुंडलिनी देखी। मुझे भी अमृतपान करनेकी इच्छा होनेसे मैंने यत्न किया। लेकिन आपका हुकुम नहीं लिया था। जिससे मुझे अमृतपान नहीं हुआ। मैंने भी वह ख्याल आनेपर यत्न छोड दिया।

शिवरात्रिके दिन कुंडलिनी भ्रूमध्य के दशम-द्वार-तक आगयी और सहस्त्र वलये चक्राकार होकर बैठ गयी। मुझे आनेद हुआ। इच्छा होनेपर हृदयमें शिवपार्वतीका दर्शन हुआ। और श्रीशिवजीकी जठामेंसे निकलनेवाली गंगामें स्नान करलिया। वहुत दफे नीलवर्ण छागया है ऐसा दृश्य दिखता है।

अगली तरफसे कुंडलिनी को ऊपर चढानेको आपने वतानेपर जो मुझे अनुभव आए वे मैं अब वताता हूं:—मैं पद्मासनमें बैठता हूं। जननेंद्रिय-मेंसे वायु उपर खींचनेपर कुंडलिनी स्वाधिष्ठान चक्रतक आती है। वहां छः दलोंका गहिरे लाल रंगका कमल दीखता है। वहां ब्रह्मदेवजीका दर्शन होता है। मेरे शिरपे हाथ रखकर आप मुझे एक कमल देते हैं। वह लेकर मैं मूलाधारमें गमन करता हूँ। वहां दुसरेही एक रंगका चार दलोंका कमल दिखता है। दलोंपर 'वं' 'रं' 'लं' 'वं' ऐसे अक्षर दिखतें हैं। वहीं एक सुंदर गणपति दीखता है। वहांसे 'मणीपूर' चक्रमें जाता हूँ। वहांपर दस दलोंके कमलमें श्रीविष्णु और पादसंवाहन करती हुई लक्ष्मीजी दीखती हैं। श्रीविष्णु आशिर्वाद देकर अपना चक्र मुझे देते है। और ऊपर 'अनाहत चक्रमें जाने को कहते है। वहां जानेपर द्वादश दलयुक्त कमलमें शिव-पार्वतीका दर्शन लेता हूँ। और ब्रह्माजीका दिया हुआ लाल कमल शिवजीको अर्पण करता हूँ। पार्वती माता मुझे श्वेत-कमल देती है। वह लेकर सुषुम्ना मार्गसे मैं 'भ्रमर' गुंफा तक जाता हूँ। रास्तेमेंही 'विशुद्ध' और 'आज्ञा' चक्र होकर भी हालमें मैं वही प्रवेश नहीं करता हूं। वहीं अग्निकुंड ज्वालामेंसे सुंदर स्त्रीरूपमें कुंडलिनी बाहर आकर दर्शन देती है। बादमें कामधेनु दीखती है। जिसका दूध मैं कमंडलुमें निकालकर पीता हूँ। बादमें वह आवाज करके मेरा अंग

चाटती है। मैं भी उसे आलिंगन देकर आनंद प्राप्त कर लेता हूँ। फिर तीन शिर और छः हाथ वाले श्रीदत्तात्रय का दर्शन करता हूँ। आप कभी कभी मेरे कानमें "सोऽहम्" और कभी कभी "ॐतत्सत्" का मंत्र बोलते हैं। और मैं भी "भ्रमरगुंफा" में बैठकर दोनोंमेंसे एक मंत्र जप करते बैठता हूँ।

इसपर दो मासके बाद कुंडलीनी स्त्री रूपमें प्रकट होकर आशीर्वाद देती दीख पडी। बोलतीहै "मैं तुझे आत्मज्ञानके लिये मदत देदूंगी।" अब उसने शुद्धसत्वगुणमय रूप धारण किया है। थोडे दिनपर श्रीदत्तात्रयनें आकर मेरे शिरप त्रिशूल मारा। जिससे जखम होकर खून झरने लगा। उन्हानें अपने कमंडलूमेंसे जल निकालकर धो दिया। जिससे मुझे डर नहीं रही। फिर मेरे सिरपें हाथ रखके कानमें 'ॐ तत्सत्' मंत्र बोल दिया और प्रेमसे मेरा चुंबन लिया।

इसपर दो महिनोंके बाद भ्रमर-गुंफाम मानसपूजा करते समय नील वर्ण प्रकाश फैलता दिखने लगा। मन उसीसे मिलान पाकर निर्मनस्क स्थिति प्राप्त होती है। इसपर दो सालके अनुभव ऐसे हैः—नासिकाग्र चित्तकरके भ्रूमध्यमें ध्यान जमाने पर दिव्यचक्षु दर्शन हुआ। और वही आप शेषशायी दिख पडे। शक्तिमाता चरण संवाहन करती हुई दीख पडी। बादमें मैं और सद्गुरू भी श्रीविष्णुरुप बनकर शेषशायी दीख पडे। आपकी आज्ञासे दिव्य चक्षुसे ऊपर देखनेपर दिव्य प्रकाश दीखता है। जप बंद होकर निर्मनस्क अवस्था प्राप्त होती है।

इसपर आठ मासके बाद के अनुभवः—भ्रूमध्यसे सर्च लाइट जैसा प्रकाश निकल कर उसी प्रकाशमें मैं मानसपूजा करता हूँ। मैं ही सागरमें आसन जमाकर बैठा ऐसा दिखता है। ऊपरसे चंद्र प्रकाश मेरे आंगपर बरसता हैं। जिसका हिम-स्वरूप आच्छादन मुझपर होकर मुझें कुछ भी दीखता नहीं। यत्न करने पर मेरे जगह श्रीकृष्ण ही दीख पडते है।

(५) **श्री० भवानीचरण सिद्धांत कलकत्ताः**—कलकत्तेमें ज्युडीशिअल कचहरीमें मुझे १४० रुपये महनेकी नौकरी थी। पत्नी और तीन बच्चे हैं। श्री० कालीदेवी का भक्त होनेसे ध्यान-जपमें उसी देवताके नाम का उपयोग करता हूँ। कलकत्तेमें माताके नामसे स्थापन हुए और

भक्तयोगिबोंनें बताये हुए बहुतसे मठ हैं । वहांके मुख्याधिकारिवोंकी संगतीसे कुछ आत्मज्ञान प्राप्त होने की आशा नष्ट होकर मैं गुरुके खोजमें था। जब एक दिन अर्धसुप्त अवस्थामें दस मिनटतक भ्रूमध्यस्थानमें एक प्रकाश किरण दिख पडा। इससे मुझे ऐसा विश्वास उत्पन्न हुआ कि घरदार छोडकर ईश्वर की खोजमें यात्रा करने चल पडा।

प्रथम कमलाक्षीमंदिर जाकर एक गुंफामें एक योगीके सामने तीन दिन तक भूखा प्यासा बैठ गया। योगिराज जबतक धानस्थ थे। नादमे योगिराजने पूछताछ की और बोले, "तुम जो चाहते हो वह मेरे पास नहीं है। पासकी धूनीमेंसे भस्म उठाकर दिया और बोले:–" इसकी सहायतासे रोजाना चरितार्थके लिये सुवर्ण प्राप्त होगा। मैंने वह नहीं लिया। फिर योगीराजने योगसामर्थ्यसे उत्पन्न किये हुए मिष्ठान्न और फल खानेको दिये। बादमें कलकत्ता लौटकर वैजनाथ गया। छः महनेतक जपतपमें वहाँ ही रहा। एक दिन ध्यानमें आवाज आया—" वृंदावन जाओ " मैं वृंदावन नऊ महनेतक रहा। वहाँ उपदेश देनेवाला व्यक्ति नहीं मिला तो भी शिव और विष्णूका दर्शन ध्यानमें होकर मुझे उनसे आदेश मिला। जिससे मैंने ' हरीहर ' जप शुरू किया। कलकत्ता लौट आया और वहाँ जप-ध्यान करते समय एक दिन फिर " वृंदावन जाओ " ऐसी बडी जोरसे आवाज आयी। वहाँ जाकर छः महनोंतक वही जप करते समय नासिक जानेका उसी प्रकार आदेश मिला। पास पैसा न होनेसे मैं पैदल ही नासिक आकर चतुःसंप्रदाय मठमें ठहरा। तलाशी करनेपर एक साधू मुझे **श्रीगजानन महाराज** के पास लाया। देखते ही मुझे महाराज **श्रीरामकृष्ण परमहंस** के माफिक मालूम हुए और गुरुकृपाके लिये यही स्थान है ऐसा विश्वास हुआ।

शनीचर ता० १५।१०।३८ ई० रोज प्रभातके नऊ बजे में फिरसे महाराजके पास जानेपर आपने मेरे सिरपे हाथ रखके सोऽहम् मंत्र देते ही उसी मंत्रका आवाज बडी जोरसे आता हुआ सुन पडा। चित्त एकाग्र होकर निर्मनस्क अवस्था प्राप्त हुई। और अलौकिक आनंदकी एक लहर जैसी उमड आयी। यही अवस्था चौवीस घंटों-तक रही। और अगले दिन मैं फिरसे दर्शन लेने गया। आपके

सामनेही ध्यान करते बैठनेपर सोऽहम् का आवाज जो पहले बडा होता था वहीं सूक्ष्म होते चला। शांत प्रकाशमय सहस्रदल कमल भी मुझे दिख पडा। उसी दिन शामको घर जानेकी महाराजसे अनुज्ञा मिली और ऐहिक व्यवहार चलाते हुए भी सत्य आनंद का अनुभव मिलेगा ऐसा अभिवचन भी मिला। गृहस्थाश्रमको फिरसे शुरुवात करनेका हुकुम हुआ। उस रातको चतुःसांप्रदाय मठमें ध्यान करते समय आनंदका चारों ओरसे पूर ही जैसा बहते आनेका अनुभव मिला। श्रीगजानन महाराजकी मूर्ति भी सामने दिख पडी। तीसरे दिन सोमवारको महाराजकी अनुज्ञा लेकर मैं नासिक छोडकर कलकत्ता वापिस आया।

(६) **श्रीगणेश रामचंद्र भिडे, धुलियाः**—प्रथम बिंदुदर्शन होता था। वह मिटकर खुद श्रीगजानन महाराजका दर्शन होने लगा। और दिन आनंदमें जाने लगा। पूर्वजन्म सुकृतसे ही आपकी मुलाखात हुई। मैंने गुरुके लिये बहुत सी यात्रा की। वह कुछ काम नहीं आयी। गुरु तो मेरे ग्राममें ही मुझे मिल गये! शाब्दिक सिद्धांत ग्रंथपठणसे मैं खूब ठीक जानता था। सब ही परमेश्वरके अवतार हैं ऐसा मुझे मालूम होता है, यह मैं खाली बोल सकता था। लेकिन ध्यानहीसे जो अद्वैत स्थिति प्राप्त होती है वह कुछ अलगही है। मेरा सब ख्याल अभी सद्गुरुपे है। ध्यानका अभ्यास तीव्रतासे करता हूँ। सद्गुरुकी दैवीशक्ति मुझमें आनेकी कोशीश करता हूँ। आपकी मदद न होगी तो मेरा काम व्यर्थ है। आप खुदको अनपढ कहलाकर भी साधकके ऐसे प्रश्नोंका खुलासा कर देते है कि जिसे साधकको तो बहुतही मदद होती है। साधककी इतनीही इच्छा रहती है कि गुरुके सत्य परीक्षाके लिये हम योग्य बने। ॐ खाली शिवजीकीहि प्रतिमा है ऊपरी बिंदूका महत्त्व निश्चयात्मक रीतीसे पहचान लेनेकी मुझे आज्ञा हुई। मेरा यत्न शुरू है।

(७) **श्रीमाधवराव वैद्य,—धुलियाः**—आपकी चिट्ठी पानेसे मुझे बहुत आनंद होता हैं। आपको चिट्ठी लिखनेके दूसरे ही रातको मुझे दर्शन होने लगा। अंतर्दृष्टि साफ होते चली। अंतरालमें आपकी मूर्ति दिख पडती है। आप घरमें घूमते फिरते भी दिख पडते हैं। आप मेरे ग्राममें हो या

दूसरे स्थानमें। मुझे फरक नहीं मालूम होता है। आपकी बातें और हंसी भी मुझे सुननेमें आतीं हैं। यहां बहुत दिन पहले जिस घरमें पोस्टमास्तर राजेसाहब रहते थे और जिस घरमें खुद आप ही आकर रहते थे और जहां आपकी मेरी प्रथम भेट हुई थी, उसी घरमें अब हमारे मित्र श्री० प्रधान रहते हैं। इनकी भेंट के लिये एक शाम को आया तो आपके प्रथम दर्शनका ख्याल आया। मैंने आंख बंद करनेपर मुझे अंतराल में एक मूर्तीका मुख दिखने लगा। मनसे ही पहचाना गया कि वे श्रीगुलाबराव महाराज है। मैं आनंदमें डूब गया था। जब मित्रोंने बहुत दफे पुकारा तो मेरे मुँहसे जवाब ही नहीं निकला! आनंद बढ रहा है यह आपकी कृपा है। सात महनोंतक नीमकी पत्तियां खाकर मैं रहता था। बादमें आपकी भेंट हुई। और ध्यानाभ्यास शुरू हो गया। रोजाना ऐसा अनुभव होता है कि मूलाधार चक्रसे एक खंभा खडा होता है। जिस पर कुंडलिनी घूम घूमकर फिरती चढती है। उसीके पीछे जाकर भ्रूमध्य तक पहुँचता हूँ। जहां अविनाशी अमृतपान करता हूँ।

(८) **श्री० डी. डी. भावे, नासिकः**—श्रीगजानन महाराजसे मुझे सोऽहम् मंत्र ता. १०-१२-३७ ई० रोज मिला। शामसुबह आध घंटा आसन जमाकर जप करनेका हुकुम हुआ। जप करते समय मेरा मन एकाग्र होते चला। तो भी विचारोंसे मुझे जपका काम ठीक नहीं होता ऐसा मालूम पडता था। चार ही दिनके बाद महाराजने मुझे अपने सामने बिठाकर सिरपे हाथ रखा और मेरे विचारोंका प्रवाह इस प्रकार ठहरा दिया कि मेरे सामने जो चित्र आता था वह भी मिट गया। मैं मनविहीन ही जैसा बन गया। कहने पर महाराज बोले, "तुम्हारा अभ्यास दूसरोंसे अलग है अतः मुझे यह करना पडा। अब खाली सोऽहम् जप करते रहो। बाकी जो कुछ है सो मैं देख लूंगा। बादमें पांच महने तक कई प्रापंचिक और शारीरिक दुःख से मैं साकोरीमें **श्री उपासनी महाराजके** वहां जाकर रहा। जब भी सोऽहम् का जप रोजाना करताही था। १९३८ ई० के मे महिनेमें वापस आनेपर श्री गजानन महाराजने अपने गुरु **श्री नारायण सरस्वतीजी** का ध्यान करने का हुकूम किया। साथ मानसपूजाका भी हुकुम हुआ।

मैं श्री उपासनी महाराज की मानसपूजा करताही था। वैसीही श्रीनारायण सरस्वतीजीकी पूजा करके आपको पूजा करनेपर पलंगपे सुलाना और पाद-संवाहन करते श्रीगुरु सो गये ऐसा देखकर मानसपूजा बंद करते चलना ऐसा भी महाराजनेही कहा। पहलेही दिनी इस प्रकार करनेपर श्रीगुरु सो गये या नहीं यह देखनेपर उनकी जगह श्री गजानन महाराजही दिख पडे। फिर आपको उठाकर आपकी भी वैसीही मानसपूजा कर दी। रोजाना ऐसाही होते चला और वृत्तिशून्यत्व मुझे प्राप्त होते चला। एक दिन महाराज बोले, "मार्ग दो है। एक प्रकाशका और दूसरा अंधेरेमेंका। और ध्येय के लिये दोनों समानही है। दूसरे दिनसे मुझे ध्यानमें अंधेराही दिखने लगा। नाभिकमल में जप होने भी लगा। अभ्यास बढते चला। तीन घंटोतक एकही आसनमें बैठना साध्य हुआ। लेकिन अंधेराही दिखता था। और महाराजसे पूछनेपर आप तो खाली हँसकर आश्वासन देते रहे। 'देवयान पंथ' और 'षट्चक्रभेद ग्रंथोंके' पढनेसे मेरी कल्पना ऐसी हो गयी थी कि प्रकाश तो दिखना चाहिये। पंचतत्त्वोंका अंदर ही अनुभव महाराजके हुकुमसे आने लगा। तो भी प्रकाशकी लालसा कम नहीं हुई। बादमें महाराजने श्रीव्यंकटेश स्तोत्रका पठन करनेका हुकुम किया। रोजाना रातके बारा बजेसे शुरु करके पांच पाठ करता रहा। इससे प्रकाशकी इच्छा कम हुई। सुगंधोंका अनुभव आते चला। मुझे तो आने लगेही लेकिन घरके दूसरे लोगोंको भी सुगंध घरमें चारों ओर भरे हुए मालूम पडने लगे।

एक दफे मेरा बी. कॉम्. पढनेवाला लडका महाराज सिगरेट खींचते समय सुगंध कैसा फैलता है यह देखनेके लिये मेरे साथ महाराजका दर्शन लेने आया। अपना हेतु उसने पहले मुझे भी नहीं बताया था। और महाराजके सन्निध उसे अनुभव भी नहीं आया। घर आकार बोलनेपर मुझे विचार आया कि नवयुवकोंको ऐसे अनुभव जब नहीं आतें हैं तब उनको विश्वास नहीं होता है। यह अवस्था ठीक नहीं है। फिर खुद मैं महाराजका चिंतन करके सिगरेट खींचने लगा। तो चारों ओर सुगंध फैल गया। और मेरे लडकेने कारण पूछनेपर मैंने उत्तर किया कि महाराजनेही तुझें यह प्रचीति दे दी है। एक दिन मानसपूजाके समय मेरी पत्नीको घरमें चारो ओर अत्तरके ही सुगंध मालूम होने लगे। मेरे पास आकर देखा तो पासमें या खुद मुझें सुगंध मालूम होनेका कुछ कारण ही नहीं दिख पडा।

शरीरमें इतना लघुत्व मालूम होते चला कि मैं चलते फिरते बैठते मुझे आधारकी जरूरतही नहीं है ऐसा मालूम होता है। सद्गुरुमूर्तीका हृदयमें प्रवेश होतेही शरीर फैला जैसा जाता है और रोमरोमोंमें सोऽहम् का स्पंदन होता है। दिनरात सोऽहमूही चलता है जिससे नींद भी आयी और गयी वह मालूम नहीं होती है। मानसपूजामें सद्गुरुको दिया हुआ नैवेद्य मुझेही जैसा प्राप्त होता है क्यों कि आप मुझमेंही रहते हैं और उसी मानसिक नैवेद्यके भक्षणसे जडदेहके पेटकी भी ऐसी तृप्ति होती है कि मुझे खाने-पीनेकी इच्छाहि नहीं रहती है।

भ्रूमध्यमें कुंडलिनी चक्राकार बैठी मालूम होती है। स्त्रीभावना होकर श्रीकृष्णके साथ खेलनेके अनुभव आते हैं।

अगले अनुभव श्रीगजानन महाराजकी गोदमें बैठकर अंतरिक्ष संचार करते हुए देखे गये हैं। :—संध्या समयमें सूर्यदेवके पास सूर्यमंडलतक जाकर दीवे जाते हैं। वहां एक दिव्य चतुष्कोणाकृति मंदिर दीख पडता है जिसका उजेला चारों ओर फैलाहुआ दिख पडता है। अंदर सूर्यनारायण देदिप्यमान होकर भी सान्निध्यमें ऊष्णता मालूम नहीं होती है। खाली अंदर बाहर आते-जाते वक्तही तीव्रतासे वह मालूम होती है। एक दफें चन्द्रमंडल जाकर चन्द्रभुवन और रानियोंके लिये बनाये हुए १७ महाल देखे। वहां रात और दिनके भेद नहीं है। वनस्पतियां चन्द्रमाके तेजमेंसेही जीवन पातीं हैं। क्यों कि चंद्रमा का तेज भी सूर्यनारायणसे ही आता है। सब जीवसृष्टि बलवान् है। तेजस्वी है। चारों ओर सरोवर है। और उनमें हमेशा फूलनेवाले कमलोंका सुगंध सर्वदा सर्वत्र फैलता रहता है। एक दिन ऐसा ही फिरते समय रोते हुए लोग देखें। महाराजसे पूछने पर 'वे पापी हैं' ऐसा उत्तर मिला। "फिर उनका उद्धार आप क्यों नहीं करते?" ऐसा पूछने पर उत्तर आया "जगदीश्वरनें उनके लिये दूसरा अधिकारी नियुक्त किया है" और भी बोले,- "तुम ही अगले जन्ममें वहाँ जाकर उनका उद्धार करो।"

ऐसे ही एक दिन वृंदावन गये। जहां श्रीकृष्ण बोले मुरली बजाकर मैं सबको आमंत्रित कर रहा हुं। तुम भी स्त्री बनकर आओ। स्त्री बननेका सब साहित्य पासके एक कुंजमें था। मैं वहां जाने पर मैं आप ही से स्त्री बन

गया। सब स्त्री रूप सजाकर बाहर आया। महाराज भी दूसरी जगहसे एक वृद्धा बनकर आये। चारो ओरसे स्त्रियां और धेनु आती चलीं। झाड-पेडों पर भी कोई स्त्रियां बैठ गयीं। श्रीकृष्णने अपने ऊँचे स्थान परसे उतर कर रास मंडळ बनाया। "गोपाल कृष्ण, राधाकृष्ण" नाचपर टिपरी बजाते नाचे और फेरे दोतीन घंटोंतक होनेपर विश्रांतीके लिये सब इधर उधर चले गयीं। श्रीकृष्ण और दोनोंही रहके श्रीकृष्णजीने आलिंगन देकर कहा, "इस आलिंगनसे तेरी वासनायें नष्ट होगीं" फिर दूध पिलाया और साथ लेकर बाहर आये। तो सामनेसे महाराज और दूसरे श्रीकृष्णजी आते दिख पडे। बादमें महाराज और मैं नासिक आगया।

एक दिन सायंसंध्या करते समय ऐसी कल्पना आयी कि योगमार्गका सब ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सूक्ष्म शरीरसे हमही श्रीगजाननमहाराजके सूक्ष्म शरीरमें प्रवेश करे तो क्या हर्ज है ? झट वैसा करनेका यत्न किया तो महाराज दिख पडे। नासिकमें महाराज बीमार होनेसे लेटे हुए हैं और मित्रोंके साथ बातें भी करतें है ऐसा दिख पडा। लेकिन मुझें "ऐसा प्रवेश अभी मत करो। मैं बीमार हूं।" ऐसा कह कर गालियां देकर हकाल दिया। वहांसे मेरी इच्छा न होतेही मैं कहीं दूरीपर चला गया। जहां आदिनाथ श्रीशंकर और नाथ पंथी, भैरवपंथी योगियोंके समुदायमें बैठकर योग-मार्गका विवरण इतना जल्दीसे चला था कि मैंने तो कुछ समझाही नही। एक ओर श्रीनारायण सरस्वतीजी और श्रीगजाननमहाराज बैठे दिख पडे। जिनके पीछे मैं भी खडा हुआथा जब बातोमेंसे मुझें इतनाही समझ पडा कि, "सोऽहम्पें दृढ विश्वास रखनेपर योगमार्गके सब अनुभव इसी जन्ममें आकर जीव का शिव बन जाता है। इस लिये परकाया प्रवेशकी जरूरत नहीं है।" मेरे लिये इतनीही बात बस थी। क्यों कि मैं इसी लिये महाराजके सूक्ष्म देहमें मेरी सूक्ष्म देहकी करामतसे प्रवेश करना चाहता था।

एक दिन शामके समय महाराज बोलेः-"शक्ति देवीकी उपासना करनेसे सब योग सिद्धियां प्राप्त होतीं हैं। लेकिन उनका उपयोग खुदके लाभके लिये नहीं करना चाहिये। और योगमार्गकी कुछ भी बातका अज्ञान नहीं रहना चाहिये।" दूसरे ही दिन प्रभात समयके ध्यानमें षड्भुजसंपन्न देवी का दर्शन हुआ। उसने कहाः —'नमो देव्यै महा देव्यै शिवाय सततं नमः। नमः प्रकृत्यै

भद्रायै नियताः प्रणताः सताम्।' इस मंत्र का जप करो जिससे विश्वशक्ति तुम्हारे अंगमें प्रवेश करेगी। दस पंधरा दिन वही जप करनेके बाद देवी फिरसे द्विभुजा रूपमें प्रकट होकर बोलीः—पहले तुम्हारे षड्रिपुओंका दमन करनेके लिये 'षड्भुजा रूप लिया था। अब उसका काम नहीं रहा। खाली द्वैतके ज्ञानके लिये अब 'द्विभुजा' बनी हूं। सोऽहम्के अभ्याससे तेरे षड्रिपुओंका दमन हो गया है। अब मुझें अद्वैतमें जाना है।

मेरे एक मित्रकी पत्नीमें देवीका संचार होता था। एक दिन मेरे पुत्रको परीक्षामें यश आनेके बारमें संचारके समय मैंने वहां जाकर पूछा। यश आएगा ऐसा बोलकर देवीनें आसन बदल दिया और अपने गलेमेंका पुष्पहार मेरे गलेमें डालकर बोलीः—ध्यान करतेसमय यह प्रसाद डब्बीमें रखकर पास रखते जाना जिससे देवीके संदेश मिलते चलेंगे। मित्रने देवीसे पूच्छा रोजका आसन दोही दफें बदला जाता है, आज तीसरे दफे क्यों बदला? देवीने उत्तर कियाः—'इस भक्तके लिये। वह शक्तीका ध्यान करता है। उसे प्रसाद देनेके लिये आसन बदलना पडा'। श्रीगजाननमहाराजको यही बात बतानेपर महाराज बोलेः—'मेरे सद्गुरुकी कृपासे तुझमें ऐसी शक्ति आयी जिसे देवीने तुझे बिनामांगतेही प्रसाद दे दिया'। इसलिए समझलेना कि योग शक्तियोंके सब बातोंमें 'सोऽहम्' श्रेष्ठ है।

देवीका ध्यान करतेसमय सोऽहम् जप करता हूं और पास आसनोंपर श्री नारायण सरस्वतीजी और श्रीगजाननमहाराज भी दिख पडते हैं। प्रकाश लाल, सफेद और पीलोंका मिश्रण जैसा दिखता हैं।

मैनें एक दिन सहजही बताया कि जब साकोरीमें मैं **श्री उपासनी-महाराजका** ध्यान करता था तब मुझें उनकी जगहपें **श्री साईबाबा** दिख पडते थे। और यहां भी जब आपका ध्यान करतां हूं तब **श्री नारायण सरस्वतीजी** दिखते है। महाराज बोले "अब कलसे क्या दिखेगा सो देख लो" और जबसे सर्वत्र **गजानन महाराज** ही दिखने लगे! जिससे तन्मयावस्था बढ गयी। कुछ भी मेरा अनुभव महाराजको सूक्ष्म देहसे पहले ही मालूम होता है। मैं बादमें जब वही अनुभवका वर्णन करताहूँ तब कुछ एकाध गाली देते हैं। लेकिन देहमेंके मार्गोमेंसे संचार करनेके अनुभवका मार्ग ठीक समझमें आनेके लिये स्पष्टीकरण भी बार बार कहते हैं।

इतना होकर भी मुझें कुछ स्वतंत्र शक्ति प्राप्त हुई है ऐसा मालूम नहीं होता है। जीवोंका उद्धार करनेकी ताकद मैं चाहता हूं।

एक दफे महाराज बहुत बीमार होनेसे हमें उनसे बातें करनेका मज्जाव हुआ। मैंनें खाली कोठीमें प्रवेश किया तो मंद प्रकाशकी बत्ती कोठीमें होकर भी श्रीराम, सीता और लक्ष्मण कोठीके कोनेमें खडे होकर कोठीमें प्रकाशके झोत चारो ओर फैलाते हुए देखे। प्रकाशसे मेरी आंखी त्रस्त हुई और मैं घर लौटा। दूसरे दिनतक आंखो पर परिणाम रह गया।

उस पर एक मासके बाद एक प्रेत दहनके लिये स्मशानभूमीमें गया था। लोग अपना कार्य करते थे और मुझें चक्करसा आया और मुझे पंचतत्वोंसे देहकी उत्पत्ति कैसी होती है उसका एक चलच्चित्रपट दीख पडाः—

स्त्रीपुरुषसंभोगसे उत्पन्न होनेवाले बिंदूसे त्वचा बन गयी। यही **अन्नमय शरीर**। साथ ही अस्थि, मांस और स्नायु, मज्जा इत्यादिओंका **प्राणमय कोष बना**। वासना, इच्छाएं या मन, जिनके सहारेसे जन्म लिया जाता है उनका संचार उसी स्त्रीके देहमें होकर वह खाने लगी। मुझें मालूम हुआ कि उस स्त्रीकी कुछ खानेकी इच्छा मरते समय तृप्त न होने पर उसने झट जन्म ले लिया। बादमें मालूम भी हुआ कि वह औरत मरनेके पहले अपने लोगोंके पास कुछ खानेको माँगती रही थी। अखीर में आनंदस्वरूप श्रीसच्चिदानंदके उसी देहमें प्रवेश करने पर उसे मानवरूप प्राप्त हुआ।

फिर ये सब क्रियाएं अंतसे प्रारंभतक फिर होतीं दिख पडी। **आनंदमय कोष** का द्वार बंद होकर **वासना देह** दिख पडा। फिरसे वही स्त्री कुछ खाती दिख पडी। फिर अस्थि और स्नायुमय शरीर दिखा। बादमें त्वचामय शरीर दिख पडा। इस प्रकार **अन्नमय कोषसे आनंदमय कोषतक** और पीछे आनंदमयसे अन्नमयतक जीवोंकी स्थिति दिख पडी।

(९) श्री. विष्णुपंत चाफेकर-रिटायर्ड बेलिफ-नासिकः—वैदिक श्रवण-कीर्तन और पुराणोंकी सहायतासे आनेवाली कर्मनिष्ठताके सहारे मेरा जीवन चलता था। तो भी मनको शांति नहीं प्राप्त हुई। पचीस सालतक गायत्री और वासुदेव मंत्रका जप करता रहा। तो भी मनःशांति का उदय नहीं हुआ।

मनको हमेशा मालूम होता था कि कोई संत समागम होनेसेही मनःशांति आएगी। और नर जन्मका सार्थक होगा। 'सिन्नर' ग्राममें जब मेरा मुकाम था तब वहां कोपरगांव के बाबामहाराज 'अमृतनाथ' से भेंट होगयी। आपने मुझे परमार्थज्ञान देकर पहलाही क्रम चालू रखने का उपदेश किया। बारह सालतक वैसाही करने पर भी मन शांत न होनेसे मैं आपका दर्शन लेने हमेशा जाताही रहा। एक समय आपसे बोल भी दिया कि "इतने सालतक आपके कहने माफिक करतां आया हूँ। तो भी मुझे अनुभव तो कुछ आताही नहीं है। तो मुझसें कृपादृष्टि कीजिएगा" आपने शांत चित्तसे सब बातें सुन लेकर मुझेसे बोलेः—"तुम्हारी भूमिका तैयार हो गयी है। इस लिये तुम्हें कोई स्वानुभवी संत मिल कर जन्म सुफल होगा। इतनाही मैं कह सकता हूं। अब तुम्हारे लिये मेरे पास कुछ नहीं है। तुम्हें जो सद्गुरु मिलेगा वह स्वानुभवी, साक्षात्कारी होगा। उसके ऊपरी बर्तावसे भूलकर तुमको अपनी नुकसानी नहीं कर लेना चाहिये। उसका उपदेश अनुग्रह लेने पर लोग कुछ भी निंदा करें तो भी दुःख नहीं करना। वह उपदेश मेरा ही है ऐसा मान लेना।"

यह सुनकर मैनें अपना नित्यक्रम वैसाही आगे बढाया। गुरुकी प्रतीक्षा करते रहा। जिसमें एकतालीस साल चले गये! बादमें नासिकमें बदली हो गयी। तो मैं नासिक आया। जब सुना कि वहां पर कोई **श्रीगजानन महाराज** नामक ध्यान-योगी भी आये हैं। आपके दर्शनका चार-पांच दफे मैनें यत्न किया। लेकिन आपने तो मुझें गालियां देकर धुत्कारा। तो भी 'अमृतनाथ' बाबाका कहना ख्यालमें था, जिससे मुझें विश्वास आते चला कि मेरे गुरु यहीं हैं। १९३३ ई० के दत्तजयंतीके दिन मैंने जाकर एकदम आपके पावही पकडे और मैं बोला, "महाराज अब मैं जीवनके अस्तकालमें पहुंचा हूं। अतः जीवनका सार्थक होनेकी प्रबल इच्छासे आपके पास आया हूं। अब तारण करो या डुबा देओ!" सुनने पर मुझे प्रेमसे उठाकर मेरे समाधानके लिये बहुत प्रेमसे संभाषण किया। जिससे मैं हमेशा आपके पास जाकर रोजाना घंटा दोघंटा तक संभाषण सुनते बैठता चला। पंधरा दिन के बाद एक दिन मुझसे बोले, "रातको अंधेरेमें बैठकर मन शांत करने का यत्न करते चलो।" मैंने चार-पांच दिन बैठनेपर मेरा मन

आपकी कृपासेही शांत होते चला। बादमें चार-आठ दिनपर एक प्रभात समयमें मैं वहांपर जाते ही मुझे नजदीक बिठाकर मेरे कानमें 'सोऽहम्' मंत्र बोले और मेरे शिरपर की टोपी निकालकर मेरे मस्तकपे हाथ रख्खा। सामने ही बिठाकर एक घंटाभर तक सोऽहम् जप मनमेंही कर लिया। मंत्र शुरू करतेही मेरी आंखें मिट गयीं। और सामने स्वच्छ प्रकाश दिखने लगा। जब मैं ख्यालपर आया तब महाराजसे यह बात बोल दी। महाराज बोलेः—"तुम्हारा रोजाना चला हुआ ब्रह्मकर्म चालूही रख्खो। छोडना नहीं। तुम्हारे गुरु कोपरगांवकर को मैं पहचानता हूं। आपने जो मंत्र दिया है वह छोडना नहीं। वे सब बातें करने के बाद 'सोऽहम्' का जप अखंड मनमेंही करते रहो।" सुनकर चरणोंमें मस्तक रखके मैं वहाँसे वापिस आता था। जब फिरसे बिठाया तब बैठतेही एकचित्तता मुझपर छा गयी। एक बडा तेजस्वी गोल दीख पडा और वह फूट कर उसमेंसे बारा दफे तोप जैसे भयंकर वि स्फोटके आवाज आये। देदीप्यमान प्रकाश उसीमेंसे प्रकट होते चला, और 'डरो मत' ऐसा आवाज अंदरसेही आने लगा। थोडी देरसे ख्यालपर आया तो मुझे असीम आनंद हुआ। सब अस्वस्थता चली गयी।

महाराजका अनुग्रह होनेपर 'सोऽहम्'का जप अंदर ही आपहीसे होते चला, मुझे यत्न करने का कारण नहीं पडता था। एक महीनेके बाद दृश्य दिखने लगे। तेजोवलयमें देवोंका दर्शन होने लगा। सिनेमाके माफिक नदियां, समुद्र, श्वेत; देवल, उपवन, उद्यान, ऋषि इत्यादि सुप्रकाशित दिखाई देने लगीं। ऐसा एक साल बीतने पर कोपरगांवकर महाराज एक दिन मेरे घर आये। आपको देखकर मुझे असीम आनंद हुआ और मैंने आपके चरणोंपर मस्तक रख दिया। आपहीकी कृपासे मुझे मेरे मनपसंत सद्गुरुका दर्शन हुआ यह बात मैने आपसे विस्तारसे कह दी। महाराज संतोषसे बोलेः—"अब मुझे भी वह सद्गुरुका दर्शन करवा दो।" जब मैं आपको लेकर महाराजके स्थानपर आ पहुंचा।

दोनोंनें दृढालिंगन किया। फिर कोपरगांवकर महाराज मेरा निर्देश करके बोलेः—"इस बच्चेको आपके सुपुर्द किया हैं।" श्रीगजानन महाराजने उत्तर कियाः—आप सामर्थ्य देंगे तो मैं क्या नहीं कर सकूँगा? मैं आपके चरणों का दास हूँ। आपकी कृपा चाहता हूँ।"

एक शामको मैं सायंसंध्याके लिये नदीपर न जाता हुआ महाराज का दर्शन लेने गया। जब महाराज बोलेः—"सूरजको अर्घ्य देनेका काम छोड कर इधर क्यों आये?" मैंने कहाः—"आपहीकी प्रेरणासे!" आपने हुकुम कियाः—"कुछ ख्याल मत करो। घर जाकर संध्यावंदन करो।" इसपर घर गया। रातका खाना पीना होनेके बाद हमेशा करता था वैसाही ध्यानाभ्यास शुरू किया। तो रातकेही समय अंधेरेमें मुझे सूरज दिखने लगा। दूसरे दिन महाराजसे बोलने पर आप बोलेः—"अब ज्ञानसूर्यका ही उदय हुआ है। सूरज, चंद्रमा और तारे कभी भी देख सकते हैं। इस प्रकार मुझे अनुभव भी आता है।

दूसरे एक समय महाराजने हुकुम किया, "सोऽहम्" का उच्चार एकदफे बिलकुल निचले आवाजमे और दूसरे दफे खूप जोरसे करने का अभ्यास करो!" मैं नदी किनारे बैठ कर वैसा करने पर मुझे अनुभव आया कि मेरे साथ दूसरा भी कोई वैसा ही कर रहा है। इसी समयसे उसी कार्यमें मैं इतना रत हो गया और आनंद होता रहा कि इधर नदीका पानी बढकर मेरे वस्त्र भी भीग गये तो मुझे पता नहीं चला। लोगोंनें जब गिल्ला किया तब मैं ख्याल में आया। ध्यानमें मैं श्रीगजानन महाराजका पोषाख और आनंदमय चेहरा देखते आपकी पूजा ही करता रहा था। लोगोंके उठाने पर मैं सीधा श्रीगजानन महाराजके स्थान पर गया। और देखा तो एक खूंटी पर बिलकुल वैसाही पोषाख रख्खा था। जो मैंने नदी पर ध्यानमें देखा था। महाराजसे सब बातें बोल दीं। और पोषाखके बारेमें पूछा तो महाराज बोले "जरा तेरी जांच की!"

इस प्रकार मुझे हमेशा किस्मकिस्मके दृश्य दिखते हैं। नाद सुने आते हैं। और उसी आनंदमें मेरा घंटोतक समय चला जाता है। उसका परिणाम ऐसा हुआ है कि संसारकी चिंताएं, तकलीफें छूट कर सब व्यवहार प्रसन्न चित्तसे करता हूँ। मुझें जो चाहिये वह यही है। आत्यंतिक सुख और दुःखकी निवृत्ति सद्गुरु बिना मिलना अशक्य है।

(१०) श्री. मधुकर दामोदर चिटणीस-नासिकः—मेरे इस कथनकी शुरुआत मेरे छः-सात सालकी उमरसे की है। जब महाराज

नासिकमेंही थ और मेरे पिताजी आपका दर्शन लेने जाते थे। तोभी महाराजके संतपदका उन्हें विश्वास नहीं उत्पन्न हुआ था। क्योंकि वर्तावमें महाराज साधारण आदमीके माफिकही थे। पोषाख बिलकुल साधारण लोगोंके समान करते थे। चाल-चलनभी साधारण ही थी। दिल्लगी तो हमेशाही करते रहते थे। चाहे गालियां भी देते थे। किसीको अपने पास कभी बैठने नहीं देते थे। और किसीके घर जाते आते भी नहीं थे।

कई दिनोंके बाद एक प्रभात समयमें मेरे पिताजीको दृष्टांत होकर ऐसा स्पष्ट आवाज आया कि "वह तो सत्पुरुष है उसका अनुग्रह लेकर कृतार्थ हो जा। इस संधीका फायदा उठा ले। नुकसानी मत कर ले।" सुनकर मेरे पिताजीको बहुत कुछ आनंद हुआ। स्नान करके वे हम सभी लोगोंको लेकर महाराजके तरफ चल पडे।

महाराज खाटपें लेटे हुए थे। हम सब लोगोनें नमस्कार करतेही जोरसे चिल्ला कर कहेः—"मैं महाराज नहीं हुँ! साधू नहीं हूं। भोंदू नहीं हूं! तुम्हारे समानही एक साधारण मनुष्य हूं! मुझे तुम्हारा यह मूर्खताका वर्ताव कभी नहीं पसंद आएगा।" यह कह कर हम सब लोगोंको वापिस लौटाया।

लेकिन मेरे पिताजी फिरभी जाकर महाराजका मन प्रसन्न करके आये। फिर इतना ठहराया गया कि बृहस्पतवारके रोज हमनें वहाँ जाना। जब सद्गुरु बताये जैसा किया जाएगा। गुरुवार आतेही हम दोनो पूजासाहित्य लेकर पास गये। पिताजीनें महाराजसे उपदेश लिया। महाराजने पूजा दक्षिणादि सब साहित्य वापिस दिया और बोले,— "अपने घरके देवोंकीही इसे पूजा करो! पूजा–दक्षिणाका स्वीकार करनेका अधिकारी अबतक मैं नहीं हुआ हूं। तोभी तुम्हारा हमारा कुछ पिछला संबंध है। इसलिए गुरुकी आज्ञा हुई है। जिसके अनुसार उन्हींने दियाहुआ सोऽहम् मंत्र तुम्हें देता हूं। यही मेरा कर्तव्य है। क्योंकि सद्गुरुके मुखसे सिद्ध हुए मंत्रके सामर्थ्यसे मनुष्य कृतार्थ होनाही चाहिये। मेरी पूजा मनमेंही करना। श्रीकृष्णजीका ध्यान करते रहना। जिससे मुझे सब कुछ पहुँचता है।

हम लोग साहित्य लेकर वापिस आये जबसे पिताजीको बहुतसे आध्यात्मिक अनुभव मिले। जिनका वर्णन अब देता हूंः—दो महीनोंके

अंदरही पिताजीको भ्रूमध्यमें प्रकाशदर्शन होने लगा। उसीमें श्रीगजानन-महाराज है और हम उनकी पूजा करते हैं और संभाषण भी होता है ऐसा अनुभव आया। बादमें महाराजकी जगह अनेक देवताएँ दिखतीं थीं। लेकिन संभाषण खाली महाराजसेही होता था। पिताजीके ध्यानके समय घरमें चारों ओर सुगंध फैला था।

मैं सोलह सालका था। जब अनुभवोंकी मसखरीही उडाता था। पिताजीका रहना नासिकमें न होतेही मेरा शिक्षण नासिकमेंही चला था। और जहां वहां महाराजका नाम निकलतेही मैं महाराजकी निंदाही करता था। १९३२ ई० में मेरे पिताजी 'पेठ' नामक ग्राममें थे। जहां उनको मिलने लिये मैं भी जाकर रहा था। जब एक दिन अर्धसुप्तावस्थामें मुझे एक प्रकाश-गोल दीख पडा। मैं उसके अंदर घुस गया और मुझे जहाँवहाँ प्रकाशही दिखने लगा। आंखें खुलीं हो या बंद। घंटोंतक वही दृश्य दिखता था। यही क्रम वर्षोंतक होते चला। जिससे सिर-दर्द शुरू हुआ। थोडे दिन बंद होकर फिरसे शुरू होता था। प्रखर प्रकाशसे सिर दर्द इतना होने लगा कि घंटोंतक मैं पानीमें सिर डुबाकर रहा था। एक दिन तो इसी तकलीफसे दिवालपर जोरसे सिर ठुकराया। लेकिन प्रकाश न दिखनेसे भी मुझें संतोष कम होता है ऐसा मालूम होता था। जिससे चोवीस सालकी उमरतक न मेरा शिक्षण आगे बढा और न मेरी तकलीफ कम हुई।

एक दिन स्वयंस्फूर्तिसेही पद्मासन जमाकर बैठ गया। और प्राणायाम करते चला। इससे अभ्याससे तेज की प्रखरता और तेज भी चला जाकर ज्योति दिखने लगी। इससे तकलीफ न होते मन शांत होते चला। इसी समय मैनें रामकृष्ण परमहंस, रामतीर्थ और विवेकानंदके किताब पढना शुरू किया। इससे सच्चा ज्ञान होगा और उसका उस तेज से कुछ संबंध होगा ऐसा मेरा मत होने लगा। और भी ख्याल होने लगा कि सद्गुरु के मार्गदर्शन रहने-बिगर सत्य ज्ञान-प्राप्ति अशक्य है। ऐसाही उस ज्योतिका ध्यान घंटोंतक करनेपर मेरा अंग दुखने लगा। ज्योतिमेंसे गोलक निकल कर उनके तोप जैसे आवाज और स्फोट होने लगे। रंगरंगके गोलक निकल पडते थे। फिर एकाधे गोलकको स्पर्श करनेपर वह खुल जाता था। और उसके अंदर दूरीपर जानेका कुछ मार्ग है ऐसा मालूम होने लगा। घुसकर देखनेसे अंधेरा

ही अंधेरा, बीचमें विद्युत् तेज की चमक, उसी चमकमें हिंस्र पशु और प्राणी देख कर मुझे भयंकर डर होती थी। उन्हींके पैलीवर नीलाकाशमें नीलवर्ण ॐ कार दिखलाई पडा था। उसे स्पर्श करने पर अंदर और एक दृश्य दिखलाई पडा था। जहां सरोवरमें दिव्य मानव स्नान करते थे। मैं भी वहां जा कर स्नान करता था। और वापिस आने समय बहुतसे गोलक और उनमें ॐ कार दिखलाई देता था।

इसमेंसे ख्याल पर आनेपर दीख पडता था कि मेरे कपडे गीले हुए हैं। कुछ दिनोंतक यही प्रकार चलने पर गोलकको स्पर्श करतेही अंदर एक दिव्य पुरुष दिखने लगा। वह जोरसे हँस कर हिंदुस्थानी भाषामें कुछ बोलता था। लेकिन मुझे समझ नहीं पडता था। थोडे दिनोंपर यही पुरुष मुझे अंदरके मार्ग बताता था। जिनका वर्णन करता हूँः—(१) एक दिन अंदर जानेपर जहां वहां प्रकाश और बिजलीकी बत्तियांही दीख पडीं। विद्युन्मेघोंका कडा आवाज हो कर एक गोलकमेंसे एक पुरुष आकार मुझे बोलाः—यह दीपोत्सव है। (२) दूसरे समय दिव्य पुरुषनें कोई देवताओंके स्थान बताये। मुझें जहां वहां गोलक और ॐ कार ही दिखे। देवताओंका दर्शन नहीं हुआ। (३) तीसरे समय मुझे कुंडलीनी मार्ग बताया। उपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर आने जाने का रास्ता बताया। नीचेसे उपर जाते समय सिरके पीछले भागतक मार्ग सीधा मालूम हुआ। वहां प्रकाश गोलमें ॐ कार दर्शन हुआ। उस गोलके अंदर टेढा मेढा एक रास्ता दिख पडा। जिसमें जहां वहां कमलपुष्पही फूलें हुए देखे। नीचे आते समय मार्ग सुलभ मालूम हुआ। चारो ओर भिन्न भिन्न रंग दिख पडे। नीचे एक त्रिकोणाकृति कुंड दिख पडा। जिसमेंसे ज्वालाएं ऊपर आतीं थीं। उसमें भी प्रखर प्रकाश और ॐ कार दिख पडा। ॐ कार जिस गोलक पर था वह गोलाकार घूमता था जिससे ॐ कार भी चक्कर खातासा दिख पडा। उस गोलकमेंसे अमृत जैसे तुषार उडते थे। जिनका प्राशन करके मुझें ऐसी तृप्ति आयी जिससे देहभान पर आनेके बाद भी रोटी खानेकी इच्छाही नहीं रही। (४) चौथे समय मैं उसी पुरुषके साथ मूलाधार तक गया। वहां भी गोलकका द्वार खोला। अंदर एक लाल कमल देखा। जो आहिस्ते आहिस्ते खुल गया और अंदरसे गजानन की मूर्ति स्पष्ट होते चली। जरा ऊपर चढा तो पीतवर्ण गोलकमेंसे

नीलवर्ण कमल देखा। ऊपर हृदयके पास और एक प्रकारका गोलक और कमल देखा। और भी ऊपर जानेपर केशरी गोलमें हाथीका शिर दिख पडा। जिसें सूंढ भी थी। और उपर उसी प्रकार मयूर दिख पडा। पूछने पर उस पुरुषने बताया एकका नाम गज छाया और दूसरेका नाम मयूर छाया।

ज्ञानियोंके किताब पढनेपर ऐसे सब अनुभव आनेसे इनमें कुछ तकलीफ होतेही मेरा मन उन्हींके तरफ आकर्षित होते चला। मेरे मातुल श्री. राजे पोस्टमास्तरको मैंनें एक दिन सब कह दिया। उन्हें जाकर सब बातें श्रीगजानन महाराजको बता दी। जब महाराज बोलेः—यह लडका मेरे पास तो छः सात सालमें आया नहीं और आया होगा तो मुझे कुछ बोला भी नहीं। फिर एक दिन श्री. राजे देवळालीमें काम करने लगे थे जब उनकी चिट्ठी लेकर मैं श्रीगजाननमहाराजके पास गया। महाराजने सब सुन लिया। और प्रेमसे मेरे प्रश्नोंका खुलासाभी किया! बोले पूर्व जन्मसे तेरा अभ्यास चला है। अतः तुझे इस जन्ममें बचपनमेंही ऐसे अनुभव आते हैं।" इससे मेरे अनुभवोंपर मेरा विश्वास पूर्णतया बैठ गया। और आपहीको मैंनें बिनती की,—"महाराज अब मुझे रस्ता बताईये।" तो महाराजने उत्तर किया,—"पहले तुम्हें दर्शन देनेवाले महापुरुषकी आज्ञा लेकर आना चाहिए। उसबिगर मेरा अधिकार नहीं होता हैं।"

बादमें ध्यानमें उस महापुरुषसे यह बात बोलने पर आप बोलेः—तू पक्कफल होकर भी आजतक तुझे आपने कुछ भी क्यों नहीं बताया "मुझे कुछ समझता नहीं है।" उसी दिन आप मुझे भ्रमर—गुंफामें ले गये। लेकिन मूझे बाहर आनेका रास्ता नहीं मिला। जब आप बोले "श्रीगजानन महाराज से पूछो।" वैसा करनेपर महाराज बोले "आपसे कह दे कि फल पक्व होकर भी समय नहीं आया था। और आपसे मेरा अधिकार कम होनेसे मुझे कुछ करना नहीं बना। अब फिरसे जब ध्यानमें तू बैठेगा तब भ्रमर-गुंफामें जा। अगला मार्ग मैं बताऊँगा।" वैसा करने पर महाराजने मुझे रास्ता भी बताया और गुप्त हुए। फिर ध्यानमेंके वे महापुरुष प्रकट हुए जिन्हें मैंनें महाराजकी बातें बोल दी। और भी बोला कि, "कल जो रास्ता आप नहीं बतासके वह भी बता दिया।" ये सुन कर वे महापुरुष प्रसन्न होकर हंसकर मुझे बोले, "अब जाकर महाराजसे बोल कि मुझे ध्यानयोगका उपदेश दीजिये।"

इस प्रकार मैं इन दो महापुरुषोंके संदेश पहुँचानेका काम करता था। बादमें मेरे मातुलके कोई लोगों के साथ लेकर महाराजके वहां गया था। महाराज उनको मिलनेके लिये अंदरकी कोठीमें गये और मैं महाराजकी कोठीमें एक 'षट्चक्रभेदन' नामक पुस्तक पडा था वह हाथमें लेकर अकेलाही बैठ गया। उसके एक दो पन्ने पढते समय प्राण ऊपर चढ गये और मेरे हाथकी किताब नीचे गिरपडी। सब ख्याल चले गया। महाराजने आकर मुझे बहुतसा हिला कर ख्यालमें लाया। जब मैं ऊपर कैसा गया वह बात मैंने महाराजसे बोल दी। महाराजने बहुत कुछ गालियां देकर प्राणायाम छोड देनेका हुकुम किया। मुझे सामनेही बिठाकर 'सोऽहम्' मंत्र कहते अंतर्मुख होनेको बताया। मैंने वैसा करतेही वृत्ति अंतरमुख होनेपर पहले प्राणायामकी सहाय्यतासे अंतर्मुख होनेपर जो कष्ट होते थे वे बिलकुल मिट गये। पहलेही आये हुए अनुभव सुखशांतिमय और अधिक दिव्य तेजोमय दिखने लगे। बादमें एक दिन ऐसाही बिठाकर मुझें सहस्र दल कमलका दर्शन करवाया। वह पहले साधारण नीलवर्ण फिर सफेद, शुभ्र, तेजःपुंज प्रकाशमान दिखा। बीचमें एक तेजोबिंदु दिख पडा। बादमें मेघगर्जनाका नाद हुआ। बिजलिओंकी कडकडाहट हुई। और सहस्र दलमें बडा आवाज होकर एकदम प्रकाश फैल गया। जिसमें ध्यानमेंके महापुरुष प्रकट होकर उसी कमलके बीच खडे हुए। खालपे आनेपर फिरसे ध्यान करनेको बोले। सोऽहम् जप करते मूलाधार जानेको बोला। उसपर लाल कमल और श्रीगणपति की मूर्ति स्पष्ट दिख पडी। फिर एक दफे सोऽहम्की सहाय्यतासे ऊपर भ्रूमध्ये चढा। वहां श्वेतवर्ण प्रकाशमय ॐकार दिखा और उसीका पीतवर्ण सफेद कमल बन गया। वहभी बदलकर त्रिकोणाकृति कुंड बन गया। वहांसे भी सहस्र दलमें आया। जिसमें खोलखोल कुछ रास्ता दिख पडा। उसमेंसें ज्वालाएं ऊपर आतीं रहीं। बादमें एक तेजःपुंज स्तंभ ऊपर आया और उसपर श्रीकृष्ण खडे हुए देखे।

दूसरे एक समय महाराजके सामनेही ध्यान करते समय मैं एक भव्य प्रासादमें चला गया। चारों ओरमें वह प्रासाद बत्तियोंसे सुशोभित किया गया था। मध्यस्थलमें एक सिंहासन था। और पूजाका साहित्य पासही तैयार था। थोडी देरसे बिजलीकी कडकडाहट होकर मेरे ध्यानमें दिखनेवाले

महापुरुष आये। आज आपने अपना नाम बताया "**नरसिंह महाराज**" ये महाराज नासिककेही काले राममंदीरमें ठहरे थे। नाम बतानेके बाद आप सिंहासनपर विराजमान होगये और बोलेः—"इसे मानसपूजा कहते हैं। तुम वह करो। मैनें पूजा की और ख्यालपें आया। महाराजसे पूछनेपर वेभी बोलेः—वही मानसपूजा है। बहुत दफें जिन्हें हम 'बडे महाराज' कहते है वे महाराजके गुरु आकरभी पूजा करवा लेते है। एक दफे उन्हींको पेडोंपरसे कूदते भी देखे। महाराजसे पूछने पर वे बोलेः—बुलडाना जिलेमें मेहेकर तालुकेमें अंत्री नामक एक ग्राम है। वहां बडे महाराज ऐसेही पेडपर कूदते थे। ऐसा लोक बोलते हैं। लेकिन मैनें कभी देखा नहीं। एक दफें महाराजके सामनेही सहस्रदलसे कुंडलिनी मार्गसे नीचे उतरता था। जब नीचेसे 'कोऽहम्' और ऊपरसे 'सोऽहम्' ऐसे आवाज जोरजोरसे सुने आये। फिर नरसिंहमहाराज प्रगट हुए जिनसे मैनें इस बातका अर्थ पूछनेपर वे बोलेः— मैंही पूछता था कोऽहम् याने मैं कौन हूं? और उसे जवाब आता था सोऽहम् याने मैं वही परमेश्वर हूं।

दूरसे एक समय महाराजने सुषुम्ननामक कुंडलिनी मार्ग बताया:— सहस्रदलमेंसे उतरते समय सिरके पिछले भागमें नीचे एक प्रचंड प्रकाश उत्पन्न हुआ। उसमें ॐकार दिख पडा। उसीमें नागका मुख दिखा। उसके मुंहमें मैं घुस पडा। रास्ता जहां जहां फिरता था वहां वहां एक कमल दिख पडा। नीचे आनेपर एक त्रिकोणाकृति कुंड दिखा। उसमेंसे ज्वालाएं आतीं थीं। मैं ते ज्वालाके अंदर जाकर देखा कि एक स्तंभ है और उसपर एक सर्प लपेटा हुआ है। उसी मार्गसे फिर मैं वापिस आते समय मुझें रास्तेके पलटनेके जगहोंपर जहां जहां कमल दिखा था वहां वहां अब एक गोल तेयार होकर फूटता था। फूटनेपर हरेकमेंसे अलग अलग नाद सुने आये। कहीं घंटानाद हुआ, कहीं शंख, पैंजण, मुरली ऐसे नाद आये। सहस्र-दलमें मेघनाद हुआ।

आखीरमें एक दिन वैसाही सामने बैठाकर मूलाधार जानेको कहा। वहां दिव्य प्रकाश दिख पडा जिसमें मैं विलीन होगया। डेढ घंटातक देहका भान बिलकूल चले गया था। पास बैठे हुए लोगोनें मुझे बहुत कुछ हिला-

कर जगानेकी कोशीश की। लेकिन कुछ असर नहीं हुआ। ख्यालमें आनेपर महाराजसे पूछनेपर मैने उत्तर दिया कि मैं, "प्रकाशमय शून्यावस्थामें था।"

इस प्रकार श्रीगजाननमहाराजने मुझें सीधे रास्तेपर लाकर रखा। जिससे अब बिलकूल तकलीफ नहीं होती है।

(११) श्री. सौ. आनंदीबाई गुप्ते नासिकः—धुलियामें एक गोकुल अष्टमीके दिन मैनें महाराजसे उपदेश लिया। एक मासमेंही मुझें चंद्रमाका दर्शन होते चला। जप ठीक ठीक चलता था। बादमें कोई महीनोंतक कुछ दृश्य नहीं दिख पडे। उसपर दूरीपर एक तेजोबिंदु दिखने लगा। चैत्र शु॥ १० मी रोज रातको एक दो बजते समय जप करते करते तीन तेजः पुंज आकृतियां दिख पडीं। मेरी आंखें कम ताकद होनेसे मुझें पहचाना नहीं गया कि वे किनकी आकृतियां हैं। ख्यालपे आनेपर मैनें उनको नमस्कार किया। ध्यानमें मानसपूजा करते समय मुझे वही बिंदु समीप दिख पडता है। चलते फिरते सब समय चंद्र और बिंदु दृष्टीके सामनेसे हटतें नहीं हैं।

नासिक आनेपर महाराजने मुझें इस मार्ग पर आगे बढनेका उपाय बताया। अंदरसे सब शरीरको देख सकी फिर वह बिंदु एक कमलमें दिखने लगा। मुरलीके और पैंजणोंके नाद सुननेमें आने लगे। ध्यानमें ही कोई मुझें उपदेश करनेका अनुभव आया। उसमेसें कुछ लिख कर भी रखा है। एकदफे उसी आवाजने पूछाः--हे कल्याणि! पेटभर खानेपर जो अन्न बचेगा उसका तू क्या करोगी?" ऐसे बहुतसे प्रश्न है। बिंदुका आकार छोटा होता चला है।

प्रापंचिक दुःखसे त्रस्त होकर ईश्वरकी करुणाकी प्रार्थना करती हुई मैं एक दिन ध्यान करनेको बैठी। जब मेरा ख्याल पूराही चला गया। नील प्रकाशमें मैं जैसी डूब गयी। और उसी तेजोबिंदूमें सुवर्णवर्ण श्रीकृष्ण-मूर्तीका मुझें दर्शन हुआ। कभी कभी पानीमें आकाशका प्रतिबिंब दिखकर उसीमें वही बिंदु दिखता है। कभी कभी नील नभके नीचे गौ, हिरन इत्यादि दिखते है। बिंदु छोटा होता चला तो भी तेज बढता चला दिखता है। लय जलदी होता है। वृत्ति शांत और समाधानयुक्त बनी है।

एक दफे ध्यानमेंही प्रश्न पूछा गयाः—परमेश्वर सगुण रूपमें क्यों नहीं दिखता है? जवाब आयाः—क्या परमात्मा तुम्हारा दास है? जिससे तुम

पुकारतेंही वह आकर खडा होवे ? उसे अंतःकरणपूर्वक बुलाओ। भक्तीके तीव्रतानुसार उसका दर्शन होगा। फिर सगुण–निर्गुण जैसी भक्ति हो वैसा खडा होगा। कुछ दुःख होनेके बाद हम माताको जिस तीव्रतासे पुकारतें है उसी तीव्र भक्तीसे पुकार करो। वह दिखेगा। यही सच्ची भक्ति है।

(१२) **रावसाहेब गुप्ते,** एल्. सी. ई. पेन्शनर एंजिनियर नासिकः— १९२६ ई० में मुझें धुलियामें महाराजका दर्शन पोस्टमास्तर राजेके घर एक मित्रकी सहाय्यतासे हुआ। बचपनमेंसेही आस्तिक्य भाव मुझमें था। प्रपंचके अनुभवोंसे वह बढताही रहा। सेवानिवृत्तीपर शामके वखत मेरे मित्र श्री. सासवडकर के साथ घूमते-फिरते विचारविनिमय करता था। उन्हींसे महाराजकी बातें सुनकर और महाराजने किये हुए चमत्कार देखकर मैनें आपका अनुग्रह लेनेका विचार किया। उसी साल श्रावणी सोमवारके दिन मै महाराजको मेरे घर लाया और यथोचित सत्कार करके चरणोंपर मस्तक रखके विनती की कि मुझे ईश्वर मार्गपर जानेका उपाय बताइये। आपने मुझे किस नामका प्रेम है ऐसा पूछनेपर मैनें 'श्रीराम'का नाम बताया। जिसपर महाराजने उसी नामका शामसुबह जप करके कहा। कुछ दिन वही करते रहनेपर महाराजने श्रीविष्णूका चित्र सामने रखकर उसपे ध्यान रखनेको कहा। वैसा अभ्यास करनेपर चित्र छोटा होकर मूर्तीके समान दिखने लगा। और हाथ हिलते दिखने लगे। जप भी अंदर होते चला।

जपका अभ्यास बढनेपर मेरे विचारोंमें आहिस्ते आहिस्ते शुद्धता और मनको शांति आने लगी। जप जब अंदरही शुरू होने लगा तब चित्रको सामने रखनेका बंद करनेके लिये महाराजने कहा। और 'राम'के बदले सोऽहम् जपको आज्ञा हुई। वही जप चला है। अजपाजपका अर्थ समझकर अनुभव आया और उसीमें मनोलय होने लगा। कभी कभी सद्गुरु कृपासे बिंदुदर्शन भी होता चला। दूसरोंको दृश्य दिखतें है। वैसे मुझे नहीं दिखते हैं ऐसा कहनेपर महाराजने आदेश किया कि, " दृश्य साधकको आत्मानंद तक पहुंचानेके चिन्ह हैं। दृश्य यही आत्मानंद नहीं हैं। दृश्य मिटे जाकर आत्मानंद प्राप्त होना यही मानवजीवनका ध्येय है।" यही अनुभव

मुझें आता भी है। मेरी पत्नीको भी उमरके ६८ वे सालमें ऐसेही अनुभव और दृश्य-दर्शन जपकी सहाय्यतासे होते हैं।

महाराज किसीभी वस्तूकी सहायता न लेते सुगंध कहींभी भेज देतें है। धुलिया और नासिकमें ऐसा अनुभव मुझें और मेरे घरके लोगोंको हमेशा आता है। धुलियामें तो एक दिन 'बुक्का' सुगंधकी काली बुकणी सबोंपर महाराजके सामने छा गयी। जिसे जमा करके मैनें थोडीसी बहुत दिनतक रख भी दी थी। धुलियामें ब्रँडीका दूध बनतेभी देखा था। एक दफे महाराजकी बीमारीमें एक मुर्गीका अंडा उबालकर आपको देनेका यत्न किया। लेकिन वह फोडने पर अंदर उबाला हुवा 'आलू'ही मिला!

मेरी तबियत परभी महाराजके अनुग्रहके बाद आश्चर्यजनक असर हुआ। मुझें हार्निया था। लेकिन वह आपहीसे सुधरते सुधरते दो साल के बाद मुझे पट्टेका भी काम नहीं रहा। १९२९ ई० में मेरी पत्नी पक्षवायुसे बीमार हुई। दवाइयां चालू ही थी। जब एक शामको महाराज हमारे घर आये और उसे सामने खडीकरके उसे घरके पीछले दरवाजेतक जाकर आनेका हुकुम किया। वह भी बिना कुछ आधारसे जाकर आयी। दो-चार दफे वैसा करनेपर महाराज बोले, "अब ठीक हो जाएगा।" अब बहुत साल हुए उसको बीमारिका चिन्ह नहीं रहा है।

(१३) **श्री० पी. एल. इनामदार, नासिक:**—विद्यार्थि अवस्थासे ही अध्यात्मके विचार मुझे आते थे। और उसी विषयके मननमें मेरा समय जाता था। प्रेतोंको देख कर, बुढोंकी तकलीफें देख कर, व्याधि-ग्रस्तोंको देख कर, व्यक्तिओंकी भिन्नता देख कर मुझे इतने विचार आते थे कि मेरा मन पूरा ही अस्वस्थ हो जाता था। इससे मेरे हाथसे कुछ काम भी ठीक ठीक नहीं हो सकता था। पढनेको अध्यात्मविषयके व्यतिरिक्त और कोई भी विषय ठीक नहीं मालूम होता था।

इन बातोंसे डर भी पैदा हो गयी और इसी डरको हटानेके लिये उपाय देखने लगा। इसी विचारमें सात-आठ साल चले गये। देह 'मैं' नहीं हूं। उससे कुछ अलगही हूँ। ऐसा विचार आता था और इसकी सिद्धताके लिये सिर बहुतसा पकाता था। इसी विचारसे शाब्दिक ज्ञानकी व्यर्थता और अनुभव-

जन्म ज्ञानकी उपयुक्तता मुझे ख्याल आयी। फिर अनुभवोंके लिये खटपट शुरू की। इसके लिये मार्ग तो एक ईश्वरकाही है और जब वही सद्गुरुरूपसे अनुभव देगा तबही सब कुछ होगा ऐसा भी मुझे विश्वास हुआ।

फिर १९३९ ई० में बाबा साहपूरकर नामक एक मित्रसे **श्रीगजानन महाराजका** नाम सुना। मैंने जाकर आपको मेरे सब विचार बता दिये। आप बोले सद्गुरुका हुकुम क्या होता है देखेंगे। थोडी देरसे बोले "कुछ फिकर मत कर। तेरा काम हो जायगा।" साधारणतः अगलेही महीनेमें आपने मुझे सोऽहम् मंत्र देकर अनुग्रह दिया। जबसे अभ्यास शुरू करके जो अनुभव आये वे लिखता हूं:--

अनुग्रहके दिनपरही मेरे घरमें, मैं जिस कोठीमें बैठता था वहां सुगंध भरासा मालूम होते चला। उसी दिन रातको जप करते समय पूरा शरीर बधिर हो गया। दूसरे दिन वैसाही होकर बाद सब शरीर बिलकुल हलकासा मालूम हुआ।

आठ दिनोंके बाद प्रभात-समय मैं अर्ध जागृत अवस्थामें था। जब एक सुंदर चौकटमें मेरीही एक सुन्दर मूर्ति ध्यान करती हुई दिख पडी। मूर्ति पाषाणकी होकर तेजस्वी दिखती थी। आंख ठीक ठीक खोलकर देखा तो भी मूर्ति आंखोंसे हट नहीं गयी। फिर आंखे बंद करके जप शुरू किया तो भी मूर्ति जैसी की वैसा ही दिखती थी। फिर आंखे खोली और तीसरे बार उस मूर्तिका दर्शन हुआ। जब वह हट गयी। महाराजसे यह बात बता दी और समझ गया कि जिसकी खोज मनुष्य करता है वह खुदकी ही खोज है। इस सिद्धांतका मुझे इस दृष्टांतसे अनुभव मिला।

कोई दिनोंके बाद साधारण प्रकाश दिखने लगा। मंत्रके समय सब एकतानता होते चली। शरीरमें जगह जगह में मंत्रका उच्चार होने लगा। कभी कभी विशेष स्फूर्ति होकर अभ्यास और एकाग्रता बिलकुल ठीक होतीं हैं। शरीरका ख्याल नहीं रहता है। आनंद दिनभर रहते चला है।

एक दिन अभ्यासके समय शरीर हलका हो गया और चारों ओर आकाश जैसा कुछ निर्माण हुआ जिसका रंग मैं वर्णन नहीं कर सकता हूं। लेकिन थोडी देरतक जो कुछ आनंद हुआ वह कुछ और ही था। अब

ध्यानकेसमय एकाग्रताका साधन झटही होते चला। कुछ तकलीफ और प्रयासका काम नहीं रहा। संकल्पविकल्परहितता उत्पन्न होकर तेज दिखने लगता है उसीपर मंत्र जहांसे उत्पन्न होता है वहां जानेकी इच्छा उत्पन्न होती है। मंत्रका आवाज कुछ अंदरकी ही जगहसे आता है। और जैसा दूर दूर जाते आस्ते आस्ते कम होकर मिट जाता है। जब आनंद बहुतही प्राप्त होता है।

एक दिन रातके आठ बजे निरभ्र आकाशमें सफेद रंगका पट्टा दिख पडा। कभी कभी प्रकाशके फव्वारे भी उडते देखे। एक दिन सोनेके इरादेसे बिस्तरेपर रातके समय पडा रहा था। लेकिन चार घंटोंतक नींद तो नहीं आयी। तो भी तीन दफें आनंदकी ऊर्मि ऐसी उमड आयी कि जिसका अनुभव मैंने कभी नहीं लिया था। और जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता हूं। इसी आनंदमें हंसमुख मैं बिस्तरेमें ही पडा रहा था। शुद्ध सात्विक भावसे मन भरा हुआ था। सद्गुरु साथही है और सब फिक्र करते है। ऐसा भी भाव उत्पन्न होता था। उस प्रेम और निर्भयतासे परमानंद हो गया।

ऐसाही एक रातको पडा हुआ अंधेरेमेही चंद्रमा दिख पडा। उसीके अनेक होकर घरमें चारों और घूमने लगे। जबसे अंधेरेमें हमेशा एक छोटासा चंद्रमय गोलक दिखता है। ध्यानमें बैठते ही स्वच्छ प्रकाश हो जाता है और जप आपहीसे शुरू होता है।

एक दिन दिनकोही स्वच्छ सूर्यप्रकाशमें माध्याह्नसमय मैं गच्चीपर पडा रहा। जब मुझे आकाशमें तारे मछलियोंके समान घूमते फिरते दिख पडे।

(१४) **श्री० वामन केशव माहेगांवकर, रिटायर्ड टीचर, नाशिक:**—जन्म प्रपंचके तकलीफोंमेंही जानेसे मुझे अखीरमें बडी बेचैनी प्राप्त हुई। जब एक दिन मेरे मित्र विश्वनाथ गोपाळ वैद्यने श्रीगजानन महाराजका दर्शन करवाया। महाराजने मेरी अवस्था समझ लेकर पूछा कि, "पहले किसी गुरुका अनुग्रह किया था?" मैनें कह दिया कि "केडगांवके **श्रीनारायण महाराज**का अनुग्रह लेकर पचीस सालतक आपका मंत्र जप करता हूं।" महाराजने इसपर मुझे सीधी साधी बातोमें बताया कि मेरे सद्गुरुनें बताया

हुआ मंत्र मै सबको मित्र भावनासे देता रहा हूं। सद्गुरुकी शक्तीसेही सब कार्य मैं कर रहा हूं। फिर महाराजने मुझे सोऽहम् मंत्र दिया और साधारणतः तीन महिनोंतक सामने ही रोजाना बिठाकर अभ्यास करवाया। इससे मेरा सब जीवनक्रम बदल गया। और मुझे संतोष की प्राप्ति हुई।

पचीस सालतक मैं मंत्र और ध्यानका अभ्यास करता ही था, वही भावना फलद्रूप होकर अब श्रीगजानन महाराजकी सहायतासे प्रकाश-दर्शन होने लगा। महाराजके शिष्योंके परिचयसे ही मेरे मनपर बहुतकुछ असर होते चला। बादमें ध्यानसमयमें श्रीदत्तात्रय, श्रीनारायण महाराज और श्रीगजानन महाराज इन तीनोंका भी दर्शन हुवा। श्रीदत्तका उपदेश हुआ कि, "सर्व-भूत-स्थित परमात्माका ख्याल करके द्वैतभाव छोड दे और श्रीगजानन महाराजकी ही मानस पूजा करते चल। जिससे तेरी प्रगति होकर सत्य-सुख-शांतीका लाभ तुझें होगा। और क्रमशः ज्ञानप्राप्तीका मार्ग दीख पडेगा।"

अभ्यासके समय मुझें पर्वत, समुद्र, रंग, सागरमें शेषशायी भगवान्, लक्ष्मी, संत, सर्प, व्याघ्र, अंधकार, बिजली, ज्योति, इत्यादि दृश्योंसे एकाग्रता होती चली। आनंद होकर वृत्तियोंका लय होते चला। फिर कोई दिनोंके बाद श्वासोंमेंही जप करनेकी पद्धति महाराजने बतायी। सामने जो मूर्ति खडी करते है उसे हृदयके अंदर बिठाकर वहीं मानसपूजा करनेको बोले। वैसा किया। जब ध्यानमें आपसे प्रश्न भी करना मुझे साध्य हुआ।:—

प्रश्न १:—महाराज! मुझें जो दृश्य दिखतें हैं वे आगे नष्ट होगीं तो इनका क्या उपयोग है?

उत्तरः—दृश्य गुरुकृपाही समझना। आगे उन्हींके तेजमें साधक मिल जाता है और आनंदका अनुभव लेता है वासनाएँ नष्ट होकर व्यवहारोंमें अलिप्तता प्राप्त होती है। यानें व्यवहार चलताही है तोभी उनके सुख-दुःखोंके परे मनुष्य जाता है। मन शांत और स्थिर होता है।

प्रश्न २:—साधकको एकाग्रता साध्य न होकर दृश्य नहीं दिख पडे तो क्या उसने खालीं ऐहिक गुरुसेवा और गुरु सत्संग किया तो वैसा करनेसे भी उसका उद्धार होगा?

उत्तरः—गुरुसेवा, सत्याचरण और सदाचारसे भी वासना क्षय होकर वृत्तियां स्वच्छ होतीं हैं, सुखदुःखादिकोंके परे होकर उसे आनंद प्राप्त होता है। उससे भी शांति लाभ होता है। खाली सोऽहम् जपसे, दृश्य न देखते भी मन तदाकार होता है। लेकिन गुरु स्वयंसाक्षात्कारी मिलना चाहिये। और पूर्व संचित पुण्यमय होना चाहिये। जिससे ऐसा भी सुयोग प्राप्त हो सकता है।

प्रश्न ३:—पूर्व संचित अच्छा है यह बात कैसे समझमें आसकती है।

उत्तरः—जिसे खराब बर्तावसे पश्चात्ताप होता है, परमार्थकी तीव्र इच्छासे जो गुरुचरणोंमें लीन होता है, ऐसे साधकोंपर श्रीसद्गुरु-कृपा होती है। अभ्याससेही उसकी वृत्तियोंमें सुधार होता है। शत्रु-मित्रोंके मनमें उसके लिये आदरभाव होता है। वही आगे अंतर्मुख होकर स्वानंद लुटता है।

प्रश्न ४:—दृश्य दर्शन यही आत्मज्ञान है?

उत्तरः—नहीं वे मार्गमेंके चिन्ह हैं जिसकी सहाय्यतासे ठहरनेकी जगह आगे ही है। यह समझते समझते साधक मायाके परे होता है। 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' होकर आत्मा-परमात्माका मीलन होता है। वही सत्यानंद और चिर शांति है। सत्पुरुष कहते हैं "तेरी चीज तेरे पास ही है। तूं जगह भूलता है।" यह जगह वहीं है।

प्रश्न ५:—ऐहिक जगतमें सद्गुरुके साथ किये हुए विचारोंका मनमें असर कम होता है। और ध्यानमें हुए सद्गुरुके साथके विचार विनिमयका असर बिलकुल ठीक होता जाता है। इसका कारण क्या है?

उत्तरः—ऐहिक भेंटमें शब्दपरिभाषाकी सहायतासे, बाह्य उपाधियोंकी अडचनोंमें, ज्ञानग्रहण करना साधकको सुलभ नहीं मालूम होता है। ध्यानके समय साधक और गुरु इन दोनोंके सूक्ष्म देहोंमें विचारविनिमय अधिक स्पष्टतासे होकर साधक अधिक तीव्र भावसे ग्रहण कर सकता है।

प्रश्न ६:—महाराज इसीसे अंतर्मुख होनेका अर्थ स्पष्ट हुआ। अब कहिये कि अंतर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि इन दोनोंमें फरक क्या है?

उत्तरः—सामने कुछ भी दृश्य दिखता है वह मिटकर उसको अंदर ही जमा लेना या उसीमें संम्मिश्रित हो जाना। और अंदरही सद्गुरुके साथ इस प्रकार हिल मिल कर मानसपूजा करना। इससे वहां ही स्थिरता प्राप्त हो

जाती है। वैसी गुरुको सामने बाह्य प्रकाशमें देखकर नहीं होती है। इसेही अंतर्दृष्टि या अंतर्मुख होना बोलतें हैं। श्रीकृष्णजीनें उद्धवको इसी प्रकार अंतर्मुख होनेके लिये उपदेश किया है। और परमात्मा याने सद्गुरुको हृदय कमलमें तेजोमय ज्योतीमें देखकर वहीं मन स्थिर करके ध्यान करना।

गुरुकृपास्फूर्तीसे मेरे ध्यानयोगके अनुभवोंका सार इस प्रकार लिखा है।

(१५) श्री वसंत नारायण निरोखेकर, पोलिस ट्रेनिंग स्कूल, नासिकः—मेरे चचाजी १९३८ ई० से महाराजका दर्शन लेते थे। महाराजकी कृपा और अनुग्रहकी इच्छासे एक दिन मैं भी वहां गया। पहले दिन पहचानत होने पर महाराज कुछ बोले नहीं। लेकिन दूसरे दिन फिर जब दर्शनके लिये गया तब "श्रीराम जयराम जय जय राम" मंत्र जपनेका हुकुम हुआ। और देखा कि क्या होता है देख। उसी रातको श्रीपांडुरंगका दर्शन हुआ। और मुझें बहुत आनंद हुआ।

फिर एक दिन सोऽहम मंत्र जप करनेको कह कर बोलेः—इससे चार-छः महिनोंमें मुझें सुखशांति और आनंदका लाभ होगा। मेरा अभ्यास साधारणतः रोजाना दो घंटोंतक होता था। एक महिने के अंदर ही मुझें अंदरसे जपका आवाज सुनाई देना लगा। एक दिन ध्यान करते समय कटिबंधके कोई बंधन छूटते चले ऐसा अनुभव आया और सामने एक तेजो बिंदुका दर्शन हुआ। मुझें बहुत आनंद प्राप्त हुआ। इस अनुभवके पंधरह दिनोंपर महाराजका दर्शन लेकर लौटा था और जबही जप करते समय मुझें ऐसें शब्द सुने आयेः—"तेरे आंखोंको और मनको आनंद होगा।" इसपर दो दिनके बाद जपके समय नाभिस्थलमें सीत्कार होने लगा और वही ऊपर मस्तकमें गया। एक दो क्षण कुंडलिनीका दर्शन होकर बहुत आनंदका लाभ हुआ।

ऐसे एक मासमेंही श्रीसद्गुरुकृपासे जो अनुभव आये इसमें घंटानाद और जलप्रपातोंका नादभी सुनाई देते चला और उससे मुझे बहुत कुछ आनंद मग्नता प्राप्त हुई।

(१६) श्री. भार्गव वामन परचुरे—पेन्शनर पोलिस, **हेड कॉन्स्टेबल-नासिकः**—रत्नागिरी जिलेके दापोली तालुकेमेंके 'मुरुड'

नामक ग्रामका मैं रहिवासी हूं। बचपनमें ही पिताजीकी मृत्यु होनेसे मेरा शिक्षण कम ही होकर मैंने पोलिस खातेमें २१ सालतक नौकरी करके पेन्शन लिया। उसके अव्वल कोई दिन एक पोलिस केसके बारेमें नासिकमें नाव दरोजेके पास पूरकरके घर गया था। जब खबर मिली कि वहीं गजानन महाराज नामक कोई संत रहते हैं। देखने पर मुझें आप तो संतके माफिक नहीं मालुम हुए। पेन्शन लेनेके बाद मैं जहां रहता था वहां नजदीकही अण्णासाहेब वालावलकर नामक एक सज्जन रहते थे। जो महाराजका दर्शन हमेशा करते थे और मुझें आपके बारेमें बातें कहते थे। एक दिन उनको मैंने विनती की कि मुझें महाराजकी तरफ ले चलो। आपने वैसा किया और मेरी महाराजसे मुलाकात करवाई। जबसे मैं आपके दर्शनके लिये रोजाना शाम सुबह जाना शुरू कर दिया।

सात-आठ दिनोंके बाद एक बृहस्पत वारके शामके समय चार बजे महाराजने मुझे सोऽहम् मंत्र देकर मुझपें अनुग्रह किया। माला लेकर शाम सुबह एक एक घंटा भर इस मंत्रका पांच हजार जप करनेका हुकुम हुआ। वैसा ही अंतर्मुख होकर करना शुरू किया। दो दिनके बाद ही माला का उपयोग करना महाराजके हुकुमसे बंद किया। इसके बाद दोही दिनपर ध्यानके समय शरीर पहले बहुत कुछ वजनदार बन गया और बादमें इतना हलका बन गया कि मैं हवासे ही उड जाउंगा ऐसा मुझें मालूम होने लगा। थोडी देरसे देहभान आया तो नाभि स्थलमें कुछ हलचल होना शुरू हुआ। वैसा ही मैंने जप शुरू करनेपर पसीना फूट गया। हमेशाकी श्वसन क्रिया बदल कर नाभिस्थलसे सिरतक श्वसन चलता है ऐसा मालूम होने लगा। जिसका महाराजनें अर्थ बताया कि सुषुम्नाद्वार खुलकर उसीमेसे श्वसन शुरू हुआ है। इतनेमें अंदर ही एक चतुष्कोण अग्निकुंड दिख पडा। उसमेंसे एक दिव्य सुवर्णवर्ण नागाकृति हृदयकी तरफ चढती देखी। जिसको देखकर आनंदही होता रहा। वही नाग हृदयमें चक्राकार होकर बैठ गया। जब थोडी डर उत्पन्न हो कर महाराजका स्मरण किया और सोऽहम् जप करता रहा। जब वह नाग वहांसे उठकर भ्रूमध्यमें जाकर वैसा ही बैठा। तब बहुतसा आनंद होकर मैं ख्यालमें आया। शामको महाराजको सब बताने पर महाराज बोलेः—कुंडलिनी जागृत हो गयी। अब

घंटोंतक जप करनेकी जरूरत नहीं है। चाहे जब बैठ कर आनंद लुटते चलो।" मैंनें जप और भी उत्साहसे चालूं किया। जब किस्मकिस्मके नाग और देवताओंके दर्शन होते चले।

एक समय नाभिकमलके पास कोई द्वार खुलते हैं ऐसा मालूम हुआ। फिर वहीं एक पीतवर्ण तेजस्वी सुदर्शनचक्र फिरता हुआ मालूम पडा। उसीमेंसे और चार चक्र निकल पडे और वे भी घूमने लगे। श्रीकृष्ण भगवानका भी वहीं दर्शन हुआ। फिर यह सब मिट जाकर चार सुंदर स्त्रियोंका दर्शन हुआ। वे भी जाकर वहींसे आवाज हुआ। वे भी जाकर वहींसे आवाज आया कि "तुझें जो कुछ मांगना है वह मांग ले!" मैंने जबही प्रार्थना की "जन्मांतरोमे भी श्रीगजानन महाराजही सद्गुरु प्राप्त होवे। दूसरा कुछ नहीं होना। अब प्रपंच छूटा नहीं है। जबतक अन्न–वस्त्रकी कमी नहीं होनी चाहिये। इतनाही चाहताहूं।" बादमें "तथास्तु" आवाज आया। महाराजका दर्शन लेनेपर सब निवेदन भी कर दिया।

एक दिन ध्यान के समय क्षीरसागर दिख पडा। उसीके पृष्ठभागपर एक कमलपत्रपें श्रीकृष्णजीकी बाल मूर्ति अंगुष्टमात्र रूपमें तेजःपुंज और घनःशाम कांतिवाली दिख पडी। हाथ जोडकर मैं खडा था और वह मूर्ति मेरी तरफ देखकर हास्यमुख करती थी। मेरे आंखोंमेंसे आनंदाश्रुओंकी धाराएं बहतीरी थीं। जिससे मेरे कपडे भी भिगगये ऐसा ध्यान उतरजानेपर दीख पडा। एक दिन महाराजके घरसे वापस आते समय रास्तेमें एक तेजोगोल दिखने लगा। अनुग्रहके बाद एक दो महिनोंमेंही बहुतसे तेजो-गोलक दृष्टिके सामने आते चले। उससे मनकी प्रसन्नता बढती चली। मेरे नाभिकमलमेंसेंही सुगंध छूटते मुझें आनंदमय स्थिति आते चली। महाराजका स्मरण करतेही अलग अलग सुगंधोका अनुभव आते चला। जिससे आपका सान्निध्य है ऐसा विश्वास बढते चला। एक दिन जपके समय सृष्टीपरके बहुतसे दृश्य दीखपडे। जिसमें शेषके शिरपें पृथ्वी और पृथ्वीपर नदियाँ, पर्वत, शहर, अरण्य, श्वापद, देवल, जहाज, रेलगाडी इत्यादि दृश्य देखे। महाराजसे कहनेपर आप बोले, "शास्त्रोमें कहा है कि पृथ्वी शेषके मस्तकपें हैं। वही बात इस दृश्यसे बताई गयी।"

दूसरे एक समय भ्रूमध्य द्वार खुलकर वहीं लक्ष्मीका दर्शन हुआ। फिर वहीं तेजोगोल दीख पडा। वहीं एक दिव्य चक्षु देखा। महाराजसे कहनेपर आप बोले, "वही ज्ञानचक्षु है।" इसीमेंसे मुझे दृश्यदर्शन होकर आनंद होता रहा। एक दिन जपके समय कुछ भूल हुई। उसी क्षण महाराज प्रकट हुए और मुझें एक ऐसी चपराक लगायी कि जिसका दुःख मुझें ध्यान उतरनेपर भी होताही रहा। इससे समझ पडा कि सद्गुरु अपनी जिम्मेदारी पूरी करनेके लिये साधकोंपर सदाही ख्याल रखते हैं। एक दिन मैं नागपूर मेलसे नासिक आता था। जब गाडीके आवाजके साथ मगजमें मंजुळ घंटानाद सुनाई देने लगा। ऐसे बहुतसे मधुर नादोंसे रातदिन मुझें विदेह अवस्था प्राप्त होती है। प्रापंचिक अडचनोंकी तकलीफ न होते मैं कर्तव्यपालन करता हूं। शांतिका सुख उसी अवस्थामें मिल भी जाता है।

(१७) श्री. दत्तात्रय शंकर साक्रेकर-नांदगाव-जिल्हा नासिक:—मेरेही ग्राममें १९२८ ई० में मुझें दर्शन दो चार दफे हुआ। बातचीत नहीं हुई। मुझें अंदरसे ही बिना बोले जो संत पहचानेगा और मेरी प्रगति कितनी हुई है वह बतलाएगा उसीको गुरू करनेका मेरा निश्चय महाराजने बिना बोले समझ लिया। फिर एक दिन हम दोनोंका संभाषणभी हुआ। फिर सासवडकर और दूसरे मित्र महाराजके पास जब थे उस समय महाराजनें मेरा परिचय उनसें करवाया और एक सिगरेटका पाकीट मंगवा कर हरेकको एकेक सिगरेट देदी। मुझें भी एक देकर बोले "तुम्हारी पद्धतिसे ही ध्यान जमा कर सिगारेट सिलगाओ और खींचते चलो!" वैसा मैंने करनेपर घर बाहर सब जगह ऐसा सुगंध फैला कि जिससे बहुतसे लोग वहांपर जमा हो गये। मेरे ही हाथसे वह चमत्कार करवाकर मुझें गणपति दर्शनका मार्ग, अपने सामने बिठाकर, मेरे सिरपें हाथ रख कर, बताया।

एक दिन महाराज चुपचाप बैठे थे। जब एकाएक आपके सब कपडे भीग गये। एक दो दिनके बाद एक शिष्यकी चिट्ठी आयी। जिसमें उसी समय एक शिष्य समुद्रमें डूबता था ऐसा लिखा था।

(१८) श्री० भाऊ साहेब राजे-रोहा-जिल्हा **कुलाबा**:— 'उरण' ग्राममें एक फकीर साहब हैं। जिनको मैंने अपनी प्रगतीके बारेमें सब कुछ बतानेपर बहुत कुछ आनंद हुआ। श्रीगजानन महाराजने मुझे

इतना आगे बढाया ऐसा भी मैंने कह दिया। आपने मुझें बताया है कि मैंने अब अभ्यास थोडा ही करना चाहियें। और अनुभवी गुरुकी मदद लिये बिगर अभ्यास आगे बढानेपर मैं एक तो मर जाउँगा, या पागल बनूँगा ऐसा भी कह दिया है।

फकीर साहब की उमर अंदाज तीस सालकी है। भाषण शांत, मीठा, प्रेममय और विनययुक्त हो कर इसमें बडी आकर्षक शक्ति हैं। आंखे तेजस्वी हैं और नजरमें मोहकता है उन्हें कोईभी चीजोंकी वास्ता नहीं हैं। समय-समय पर आधा कप चाय और सतत सिगरेट चलती हैं। कुछ भी दूसरी चीज किसीने दी तो वे झट उसी चीजको फेक देते हैं। चाहे किसीसे कुछ चीज मांगते भी है और वही देनेपर लेतेभी हैं। एक ब्लॅकेटके बिगर दूसरा कुछ कपडा पास नहीं है। 'पीरवाडी'के पैलतीरके दर्गेमें रहते हैं। गये साल तो कोई पैंखानेमेंही छुपकर रहते थे। अभी जरा जरा लोगोंके साथ रहते हैं।

आजकल मैं प्रभातसमयमें शौचमुखमार्जनकरके घरमेंही आरती और ध्यान करता हूं। थोडेही समयमें मेरे सामने रखी हुई देवताओंकी मूर्तियां अदृश्य होजानेसे मैं डरकर ध्यान छोड देतां हूं, और थोडासा प्राणायाम करता हूं। फकीर साहबके कहनेसे वह भी बिलकुल कम करता हूं। दिनभर और रातकोभी मैं तो जैसा हवामें तैरताही हूं ऐसा मालूम होता है। दिनमें तीन समय ध्यान करता हूं। रातको ज्ञानेश्वरीका पाठ और जप करता हूं।

मेरा शरीर अंदर ही ऊपर नीचे होकर मैं तैरताहूंसा मालूम होता है। आंखोंके सामने नील प्रकाश कभी कभी गुलाबी, पीले रंगके मिश्रणके साथ दिखता है। शरीर लकडीके माफिक कडा और पीछेसे बिलकुल ढीला हो जाता है। स्वस्थ रहनेपर जरा देरतक भ्रूमध्यमें पहले आयनेके माफिक कांच और बादमें उसी जगह मेरी ही आकृति दिखती है और मिट जाती है। एक दफे दिनको रोटी खाकर धूम्रपान करते समय मेरे सामने छः-सात हाथ उँचाईपर एक लोटेके इतना बडा प्रकाश-गोलक सूरजके माफिक चलता हुआ देखा।

(१९) श्री. शंकर मल्हार संत,-अर्जनवीस-नासिकः— प्रपंचके दुःखोंसे त्रस्त होकर बहुतसे संतमहंतोका दर्शन करनेपर पारमार्थिक अनुभवोंके लिये मनमें तीव्र इच्छा होगयी। ऐसी अवस्थामें श्रीगजानन

महाराजका नाम सुनकर आपका दर्शन कोई मित्रोंके साथ किया। जब दोनोंमें संभाषण हुआः—

मैंः—महाराज कृपा करके मुझें पावन कीजिये।

महाराजः—किसने बोला कि मैं महाराज हूं ?

मैंः—आपका नाम सुनतेहि मन आतुर होनेसे चरणोंके पास आया हूं। आपके विषयमें लिखी हुई गुरुशिष्य विज्ञानदीपिकानामक पुस्तिका पढनेपर मुझे असीम आनंदकी प्राप्ति हुई।

महाराजः—क्या आपको किसी सत्पुरुषका अनुग्रह मिला है ?

मैंः—जी हाँ ! पैंतीस सालके पूर्व मैंने **श्री यशवंतराव महाराज** ऊर्फ **देव मामलतदारजी** का अनुग्रह लिया है। अब मेरी उमर अस्सीके ऊपर होकर भी मनःशांति प्राप्त नहीं हुई है। मुझें ऐहिक चीजोंकी वासना नहीं है। कुटुंबपोषणके लिये कचहरीमें अर्जनवीसका काम करता हूं।

महाराजः—बाबाजी ! मैं तो आपका बच्चे जैसा हूं। आपको उपदेश देनेकी मेरी योग्यता नहीं है। मैं पूर्ण नहीं हूं। अभ्यासीही हूं। इसलिए दिशाभूल मत कर लेना।

मैंः—मेरे गुरुके स्फूर्तिसेही मैं आपके पास आया हूं। अतः आपके चरणोंपे मेरा पूर्ण विश्वास है। चरणस्पर्शसेही मुझें समाधान प्राप्त होकर पहचानत भी हो गयी। अतः मुझे लाभही होगा ऐसा विश्वास है।

महाराजः—मैं ब्रह्मनिष्ठ नहीं हूं। जप और ध्यानके अभ्याससे मुझे अनुभव प्राप्त हुआ है। गुरुकृपासे आपकोही बताउँगा। उस प्रकार अभ्यास करके क्या परिणाम होता है देखना। लाभ हो तो बढाना। नहीं होगा तो छोड देना।

फिर महाराजने गुरुवारके रोज आनेको बोला जब मैं भी महाराजके गुरुके चित्रके सामने पूजासाहित्य और नैवेद्य रखनेपर महाराजने मुझे सामने बिठाकर मेरे मस्तकपे हाथ रखा। और सोऽहम् मंत्रका जप देनेपर मेरा जप शुरू होतेही मैं देहको भूल गया और मुझें बडाही आनंद हुआ।

अभ्याससे मुझें मंत्रोके जो अक्षर सामने दिखते हैं वहीं भ्रूमध्यमें दिखते हैं। इस मंत्रके अभ्याससे ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञानक्रिया गुरुकृपासे एक बन

जातें हैं ऐसा अनुभव आया। सब अनुभव एक महिनेमेंही आगये। ध्यानमें संभाषण करते एक दिन मैनें पूछा, समाधि और निद्रामें फरक क्या है ? तब उत्तर आया:—

दोनों साधारणतः समान होकर भी निद्रामें अहंकार और देहभाव रहता है। जो समाधीमें लुप्त होकर स्वात्मानुभव होता है। दोनोंका उगम एकही है।

श्री. शंकर त्र्यंबक सायगांवकर, फोटोग्राफर–नासिक—अपने सामने कई एक साल रहकर भी श्रीगजानन महाराज का व्यक्तिवैशिष्ट्य मेरे ख्यालमें कभी न आया और मैंने भी कभी उसकी फिक्र नहीं की। लेकिन उन्हींके सहवासके बाद मुझें अनुभव आया कि हम लोग अपनीही मर्यादित बुद्धीके सहारेसे दूसरोंके व्यक्तिमत्वका अंदाज करतें हैं और हमारी बुद्धी जैसी कमजादह क्षेत्रवाली हो उतनाही हमें दूसरोंका ज्ञान कमजादह होता है। जिससे कभी किसीका ज्ञान सचमुच होना मुष्किल ही होता है।

एक दिन सांसारिक तापोंसे त्रस्त होकर पडा था। जब एक लडकीनें आकर कुछ फोटोके कामके लिये श्रीगजानन महाराजने बुलाया है ऐसा कहा। मैंभी जाकर अभिवादन करके पास बैठा जब महाराजने एक निगेटिव निकालकर मुझें दी और बोले इसकी कॉपियां निकालनी हैं। महाराज विनोद-प्रिय होनेसे बातें हंसती खेलतीं होतीं थीं। जब मै संभाषण उसी अवस्थामें अध्यात्मपर लाया। क्यों कि एक सालसे मैं उसी विषयका अध्ययन करता था और ज्ञानका अनुभव लेना चाहता था। लेकिन मेरे अनुभवोंका मुझेंही शक आता था। और मन अप्रसन्नही रहता था। क्योंकि इस विषयमें मैं कहांतक आया हूं इसका मुझें पता नहीं चलता था।

ऐसाहि एक दिन ध्यान करते समय मुझें आवाज आया था कि "तुझे किसी बंगाली साधूका दर्शन तुझें तुरंतही होगा। और वहीं तुझें अपने घर बुलवा भेजेगा।" बादमें यह बुलावा आया और श्रीगजानन महाराजेस बातें करते करते आपने मुझें कोई ऐसे कागज पढनेको दिये जिनमें एक बंगालीने महाराजसे मिले हुए आध्यात्मिक अनुभवोंका वर्णन किया था। ध्यानमें मिले हुए संदेशका इस प्रकार वास्तवमें अनुभव आनेपर मैंने

नम्रतापूर्वक महाराजको मुमुक्षुभावसे अभिवादन किया। और मेरे जीवनका सार्थक करनेके लिये अभ्यर्थना की। हृदयके भावकी तीव्रता जानकर महाराजने भी अनुग्रह करनेका अभिवचन दिया। फिर एक दफे मिलनेको कहा।

इसपर महाराज बंबई चले गये। और बहुत दिनोंसे वापिस आये तो बीमारही थे। मैं रोज दर्शन लेकर कभी बातें करता रहा और कभी अखबारोंमें अध्यात्म विषय दिखनेपर आपसे चर्चा भी करता रहा। जिससे मेरे ख्यालमें आस्ते आस्ते समज पडने लगा कि कोई न कोई दिव्य शक्तीके प्रभावसे मेरे सामने कोई विशिष्ट आध्यात्मिक विचार फिर फिरसे आरहें हैं।

एक दिन महाराजने **स्वामी विवेकानंदजीके** कर्मयोग नामक किताबमेंसे एक ऐसा पृष्ठ खोलकर मेरे सामने किया और इसमें भी एक ऐसा पॅरिग्राफ बताया कि जो मैंने उसके पहलेही दिन पढा था और जिसपर मेरा विचार चला था। इससे मुझें बहुत आश्चर्य प्राप्त हुआ। आगे चलकर रोजाना भेट होनेपर महाराज ऐसी बातें करते थे कि जैसे मेरी दिनचर्याही बता रहे हैं। श्रद्धा बढतीही चली।

एक दिन मुझें चाय पिलवाकर महाराजनें धूम्रपान करते ही मुझें चारों ओर सुगंध मालूम हुई। कोई पूजा करता होगा ऐसाही मेरे मन में मैं अपनी समझ करली। जब महाराज कुछ ऐसी दृष्टीसे कहीं देखते रहे कि आपका चित्त एकाग्र हुआ है ऐसा मुझें मालूम हुआ। फिर मुझे बोले, "कल एक पुष्पहार ले आना। श्रीगुरुमहाराजकी आज्ञा लेकर मैं तुम्हें कुछ बताऊंगा।"

दुसरे दिन एक पुष्पहार लेकर गया और महाराज के आज्ञानुसार वह श्रीनारायणसरस्वतीजी के तसबीरपर चढाया। फिर महाराजने मुझें सामने बिठाकर वे धूम्रपान करते चले और दूसरे शिष्योंके अनुभव मुझेंसे बोलते चले। जबही पहलेमाफिक सुगंध चारो और फैलगया। सबकी कोठी प्रसन्न वातावरणसे भर गयी और मुझें देहकी भूल पड गयी। जप सोऽहम मंत्र १०८ दफें जप करने को बोले। मनमेंही मेरा जप होते चला। महाराजकी दृष्टि मेरी दृष्टीसे स्थिर होती चली और आनंद समुद्रमें मैं तो पूरा डूबहीसा गया। हृदय जोर जोरसे धौंकने लगा। पृष्ठवंशमें कोई शक्ति नीचेसे ऊपर आती रही और भ्रूमध्यमें तो कुछ अंगार जैसी उष्णता उत्पन्न हुई। सिरके मध्यबिंदूसे

हृदयमें कुछ शक्ति आती चली। प्रकाश होगया और हृदयमें अंतस्थ देवताका दर्शन हुआ। देवताका मुख बदलते बदलते सामने बैठे हुए सद्गुरुका चेहरा दिख पडा। जिससे मेरा सब संशयनिरसन होकर मैं श्रीगजानन-महाराजके चरणोंपर सिर झुकानें लगा। तब महाराज हाथसे सिर को संभालकर मुझें पूर्वस्थितिपर लाया। आंख खोलकर देखा तो महाराज मेरे सामने जैसे के वैसेही बैठे थे। आपका मुखमंडल दिव्य दीखताथा। यह अनुभव जीवनमें नयाही था। इससे मुझें असीम आनंद प्राप्त होकर महाराज सत् शिष्योंके अनुभव कहते थे और मैं फिरसे अर्धसुप्त आनंदमय स्थितीमें सुनताही था। समयका भान मुझें नहीं रहा। सुगंध फैलाही था। देवता-ओंका दर्शन चित्रपटके माफिक होता ही था। उनमें भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंस, शिवभवानी, गणपति और ॐकार साधारण स्पष्टसे दिख पडे।

पूर्वस्थितीपें आनेपर महाराजनें "गुरुशिष्य विज्ञानदीपिकापर अख-बारमें आये हुए एक अभिप्रायका कटिंग मुझें पढनेके लिये बताया। उसमें अभी ध्यानमें देखे व्यक्तिओंकेही बारेमें जो कुछ लिखा था उससे मिलन होनेपर महाराज बोले, "अब तेरी दृष्टि पावन होगयी।" रोजाना सोऽहम् जप और तन्मयताका अभ्यास बढता चला। जिससे ज्ञान हुआ कि जिस सत्यका हम इतने दिन इधर उधर शोध करते थे वह पासही होकर हमने टाइम खाली गँवाया था। बादमें ध्यानअभ्याससे कई एक गूढ रहस्योंका अर्थ समझते चला उसमेंसे एक बात बताता हूं।

ध्यानमेंही जप करतेसमय वृत्ति तदाकार होकर मुझें एक पुराणा देखा-हुवा स्थान दीख पडा। बचपनमें जबलपूरकेपास गुप्तेश्वरनामक एक एकांत रमणीय देवल देखा था। उस स्थानपर मेरा प्रेम जमा था और जीवनमें वह देखनेका फिर मौका नहीं आया था। फिर जीवनमें खाली इतनाही विश्वास रहा था कि परमेश्वर कहींभी हो मैं उसे ढूंढ लूंगा। इसी विश्वाससे मेरा श्रीगजानन महाराजसे परिचय हुआ। और ऐसे दर्शन लेनेकी ताकद भी आयी।

बचपनमें मैंने मेरी मातामहकी पूजा करनेकी गणेशमूर्ति मट्टीमें गाड देकर मुझें बडा संतोष हुआ था। बुढीको क्या दुख हुआ होगा यह मुझें आज समझ पडा। जब तक भावना क्या चीज है इसका पताभी मुझें नहीं

रहा था। राजा गोपीचंदनें तो खुद माताजीके सद्गुरुकोही गाड दिया था। तो भी सद्गुरु उससे प्रेमही करते रहे। इसी प्रकार मैं महाराजके बारेमें आदर भाव न बतातेही महाराजनें मुझपर दया की है। जिससे मैं धन्य हुआ हूँ।

एक दिन ध्यानमें नजदीक एक त्रिशूळका स्पर्श हुआ वह श्रीगजानन महाराजकेही हाथमें था फिर प्रकाश दिखनेपर महाराजसे उसका कारण पूछा, तो महाराजने खुदके तरफ ही निर्देश किया। देखतेही महाराजके पीछे शंखचक्र गदाधारी श्रीकृष्णमूर्ति खडी देखी। मैं वंदन करते झुकता था तो मेरे सामने एक भयंकर सर्प उत्पन्न होकर मुझपर दौडा। लेकिन महाराजका त्रिशूळ देखकर उसमें ही लपेट कर बैठ गया। डर नहीं है ऐसा प्रत्यक्ष श्रीकृष्णजी बतातेही थे। बादमें हम माताके दरबार चले। जिसने हमें आशिर्वाद देकर विदा किया। उस दरबार की दिव्यता मैं वर्णन नहीं कर सकता हूं।

एक दिन ध्यानसमयमें कुंडलिनी पृष्ठवंशरज्जूमेंसे ऊपर चढती चली। हृदय और कंठमेंसे सिरपें गयी और वापिस नीचे आयी। लेकिन उसे मार्गमें कुछ ऐसी अडचनें आयी। जिससे वह वापिस पहले स्थानपर चली गयी। इन अडचनोंकीही खोजमें मैं बैठा। फिर अंदरसेही जवाब आया "इस मार्गका तुझे ज्ञान होना है तो भ्रूमध्यमें अपनी दृष्टि स्थिर करले।" वैसा करनेपर वहां एक तेजस्वी कमल एक दिव्यमूर्ति दिखपडी। उसीके पास पहुंचनेका रास्ता देखते मुझे बीचमें कुछ पारदर्शक पडदेकी रूकावट हुई। पीछे देखा तो वही दृश्य दिखाई दिया और ख्याल आया कि वहीं इधर पडदेमें प्रतिबिंबित हुआ है। लेकिन पिछला दृश्य बहुत दूरीपर था। फिर मैंनें जप और उस मूर्तिकी स्तुति की। जिससे वह पडदा हट गया और मैंने पास जाकर देखा तो वह श्रीशिवमूर्ति थी। आपने ध्यान छोडकर मुझे पास बिठाकर मेरी शंकाएँ दूर कर दीं। मेरे सद्गुरु कहां है ऐसा पूछनेपर मुझे निर्देशकरके सामने बताया। तो मैंने देखा एक बडा तेजस्वी गोलक है। जिसके चारो ओर अनेक सूर्यमंडल हैं और हरेकसे एकेक ब्रह्मांड उत्पन्न होता है। सब आपहीसे निकला हुआ है। क्योंके सबको उत्पन्न करके पालन और संहार करनेवाली शक्ति आपहीसे निकलती हुई मैंने देखी। मैंने नमस्कार किया और मेरा ध्यान छूट गया।

(२१) **श्री. विश्वनाथ गोपाल वैद्य,-नासिकः**—चालीस साल-तक वैदिक परंपरासे चलकर स्नान, संध्या, गायत्री जप और गुरुचरित्रका पारायण किया। उसीमें लिखा है कि वह चरित्र हाथसे लिखकर पठण करनेसे साक्षात्कार होता है। इससे दस महिनोंतक लिखकर वह पूरा किया और उसकाही पाठ करते चला। इससे जो अनुभव आये और बादमें प्रत्यक्ष गुरूकी भेट हुई और आपके अनुग्रहपर जो अनुभव आये उसका वर्णन करके मैंने 'श्रीगुरुकृपाध्याय' नामक एक छोटी पुस्तिका लिखकर छपवाई है। गुरुचरित्र लिखलेनेके दो साल आगेही मुझे एक दृष्टांत हुआः—

१९२९ डिसेंबरमें मुझें एक दिन ऐसा मालूम हुआ कि मैं श्रीगोंदमें मेरे छोटे जमाईके घर हूं। और मैं बाहर बैठा था। जब एक पंगु मनुष्य दूसरेके पीठपर बैठकर आया। उतर गया और अंदर चले गया। बहुतसे लोग उसके चरण छूते देखकर मैंनेभी अंदर जाकर प्रणाम किया और बाहर आकर बैठा बादमें वह संत मेरे पास आकर बोले, "नासिकसे कब आये?" मै बोला "कलही।" आप बोले, हमारे घर चलो। वहां बात करेंगे। फिर कोई लोगोंके साथ आप चले गये। और कोई मेरे साथ रहे। संतका घर सरस्वतीके पैलीपर एक पर्वतमें था। जहां जाकर मैं एक विस्तीर्ण जगहमें बैठगया। संत भी वहां आये। नासिककी बातें चलीं। जहां एक बडा यज्ञ चला है और बहुतसे शास्त्री-पंडित इकट्ठे हुए है ऐसा मैंने कहा। इसपर एक चिठी लेकर संतने उसपें "सात रुपिया" ऐसा लिखकर मुझें दिया। पास पैसे न होनेसे मैं दिलगीर होतेही संत बोले, "फिक्र मत करो। समय आनेपर देनेको नहीं भूलना।" मैं प्रणाम करके घर आने निकला। यहां मेरा स्वप्न खतम हुआ। तोभी इसका अनुभव आगे चार सालके बाद आया।

१९३३ फरवरीमें, सासवडकर और करमरकर नामक दो सज्जनोंके मिलनमें संवाद हुआ कि नासिकमेंही एक संत है और पासके लोगोंको उनका पता नहीं। पता पूछनेपर आपने बताया नहीं। लेकिन करमरकर नासिक आने पर मुझसे वही बात कहने लगे। हमने तलासी करनेपर भी पता नहीं चला। फिर सासवडकर निफाडमें थे। वहां जाकर सब तलाशी की। सासवडकरने प्रेमसे गजानन महाराजके बारेमें आये हुए अनुभव और शिष्योंके पत्रोमें लिखे हुए बहुतसे अनुभव बताये। जिससे मुझे आश्चर्य हुआ। और

नासिक आकर मैंने श्रीगजानन महाराजका दर्शन किया। आपको 'अहं' वृत्ति तो है ही नही। यह देखकर मुझे बहुत कुछ आनंद हुआ।

बादमें छः सात रोज रोजाना दर्शनके लिये मैं जाता रहा। एक बुधवारके रोज मेरे सामने सिगरेट सिलगायी जिसमेंसे सुगंधही फैलते देखकर मुझे बडाही आश्चर्य हुआ। महाराज बोले,—"कल आजाव। तुम्हें ऐसीही आत्मजोति बताऊंगा।" इसपर ११-५-३३ इ० रोज गया तो 'सोऽहम' जपकी आज्ञा हुई। प्रकाश किस प्रकार दिखता है उसकाभी वर्णन किया। दोन दिन शाम-सुबह अभ्यास करनेपर मेरी कुछ भूलेंभी महाराजने सुधार दीं। फिर आठ दिनसे ऐसा दृश्य दिखा कि एक ज्योतिमें श्रीकृष्णमूर्ति दिख पडी। बादमें महाराजसे कहनेपर महाराज आनंदित हुए। और अभ्यास चालू रखनेको बोले। आगे रोजाना ध्यान समयमें बहुतसीं देवताएँ दिखने लगीं। वे भी ज्योतीमेंही दिखतीं थीं। बंद करनेपर दृश्य दर्शनभी मिट जाता था। महाराजको यह बात समझनेपर एक दिन महाराजने मेरे सिरपर हाथ रख्खा और आंखें बंद करनेको बोले। जब ऐसीभी अवस्थामें दृश्यदर्शन हुआ और अभ्यास आगे बढते चला। सृष्टिसौंदर्य, श्वापद-कीटक, संत-महंत और चैतन्यमय देवताएँ दिखतीं चलीं। सिनेमाके फिल्मके माफिक सब दिखता था। कोई दिनोंके बाद यह अवस्था महाराजने बंद कर दी। फिर २९ जून १९३३ रोज महाराज और मैं निफाडमें श्री. सासवडकरके पास था। जब रातको सब लोग सो जानेपर महाराज बोले, "मैं अब तुझें निर्गुणमे लेजाता हूँ।" मेरे सिरपे हाथ रखतेही 'सोऽहम्' ध्वनि मुझें कहींसे जोरसे सुनाई देने लगा। फिर बोले अब सोतेहुएही जप करो। वैसा करतेसमय 'सोऽहम्' ध्वनि जोरसे सुनाई देताही रहा। और मंजुल घंटानादभी सुनाई देता रहा। दूसरे दिन महाराजको नादके बारेमें पूछनेपर महाराज बोले देवलमें जाकर दर्शनके पहले हम घंटानाद करतेही है। वैसा यह ब्रह्मनाद है। ऐसेही दस प्रकारके नाद है जो तुम्हें अनुभवोंमें आएँगे। बादमें मस्तिष्कमें परब्रह्म दर्शन किया जाता है। तुझे अखंड ब्रह्मनाद प्राप्ति है।" मुझें ध्यानसमयमें प्रकाश-दृश्य दर्शनोंके सांथ वे नाद भी आते चले। शंख, दुंदुभी, वीणा, मृदंग, मुरली, सारंगी ऐसे नाद आते हैं।

एक दिन महाराजने निफाड जानेके पहले मेरेपास खर्चेके लिये पैसे मांगे। मेरेपास पांच रुपयेकी नोट थी वह मैंने दे दी। जब बोले, "अब खाली दोही रुपये रहे।" मुझें कुछ अर्थबोध नहीं हुआ। महाराजकी अनुपस्थितिमें गुरुपौर्णिमा आयी। जब मैंने पूजा-साहित्य और नैवेद्य लेकर महाराजके स्थानपर रखे हुवे फोटोकीही पूजा की और फोटोकेही सामने सहजही दो रुपये रख कर वापिस घर लौट आया। इसपर दो दिनके बाद मैं कुर्सीपर लौटा था जब मुझें मेरे चार सालके पहले देखे श्रीगोंदेके स्वप्नका ख्याल आया। और उसमें देखी हुई बातोंका प्रत्यक्ष अनुभव कैसा आया इसकी जांच धीरे धीरे होती चली। और मुझे बडा आश्चर्य मालूम हुआ।

फिर मैं खुद श्रीगोंदा गया। और वहां समझा कि वहीं भी कोई 'प्रल्हाद महाराज' नामक संतकी समाधि है और हर साल उत्सव होता है। वहां यह भी मालूम हुआ कि प्रल्हाद महाराजके गुरूका और श्रीगजानन-महाराजके गुरूका नाम एकही **श्री नारायण सरस्वती** है। नासिकमें वापस आकर मेरी सब बातें सुनकर महाराजने खाली हँस दिया।

फिर मेरे अभ्यासमें महाराजने बदल कर दिया और मेरे ध्यानमें एक अनोखा सत्पुरुष दिखने लगा। यह बात महाराजको बतानेपर महाराज बोले, रावसाहेब गुप्तेके घर जाकर वहींपर मेरे गुरूका फोटो है वह माँग लेना और वैसाही एक बना लेना। जाकर देखा तो ध्यानमें दिखे हुए सत्पुरुषकाही वह फोटो था। १४ ऑगस्ट १९३४ रोज महाराज बोले, "बंबईमें कुछ गडबड सडबड हो रही है।" ऐसाही कुछ दोन-चार दिन बोलते थे। बादमें बंबईसे तार आयी कि वहांपर "शंकर" नामक भक्त ऐसा बीमार है कि डॉक्टर लोगोंने उसकी आशा छोड दी है। फिर महाराजने जाकर उसे दुरुस्त किया। योगिओंको ऐसा दूरीपरका कुछभी कभीभी दिख पडता है। यह अनुभव आकर मुझें बडा आश्चर्य हुआ।

महाराजकी आज्ञानुसार शामसुबह आध घंटेतक अभ्यास करनेपर प्रकाश और दृश्य दिखकर ऐसी एकतानता होते चली कि मैं सब कुछ भूलही जाने लगा। जो न देखे सोचे, ऐसे भी दृश्य प्रकाशमें दिखतें है। इससे मालूम

होता है कि महाराजकी कृपासे अगम्य भी गम्य होता है। माया लुप्त होती है और गीतावचनोंका अनुभव आता है।

अवध्यानमें देखी हुई बातें ऐहिक संसारमें भी कैसी बादमें हो जाती है। इसके कुछ उदाहरण देता हूं:—**एक समय ध्यानमें देखा** कि मैं मेरे स्नेही श्री. रामभाऊ जोशीके घर गया हूं। आपके घरमें एक अंधारी कोटीमें एक कृष्णवर्ण दी हुई पेटी है। वह मैंने खोलदी। इसमें कोई पुराने बर्तन और कपडे दिख पडे। आखीरमें दो किताब मिले जो "योगवासिष्ठ" भाग २ और ३ थे। मैंने वे खोलकर जरा देखे और फिर पेटीमें रखकर बाकी सामान भी जैसा का वैसा भरके पेटी बंद कर दी। **ध्यान विसर्जन होनेपर** श्री. जोशीके घर चल पडा और पूछा, "क्या आपके घरकी किसी अंधारे कोटीमें कृष्णवर्ण पेटी है?" श्री जोशीने उत्तर किया, "हां ऐसी एक पेटी है।" फिर पूछा "क्या उसमें कोई ग्रंथ है?" जब उत्तर मिला "जी नहीं। कुछ फूटा तूटा पुराना सामान है।" मैंने फिरसे देखनेको कहने-पर यह मस्खरी समझकर टालने लगे। तो भी मेरे आग्रहसे बत्ती लेकर अंदर गये और पेटी खोलके सामान बाहर निकालकर देखा तो बोले, 'योग-वासिष्ठ' के दो भाग मिले। जिसपर आपके पूना रहनेवाले एक मित्रका नाम लिखा हुआ था। मित्रने मुझे वे ग्रंथ दिये और मैंने आपको मेरे ध्यानमें देखी दृश्यकी बातें कह दीं। जिससे उसको तो आश्चर्य मालूम हुआही और मेरी भी महाराजकी कृपासे ध्यानयोगमें प्रगति होती है। यह समझ पडनेसे मुझें धन्यता मालूम पडी।

कभी प्रकाशचक्र, श्रीकृष्ण गोपियोंके खेल, इत्यादि दीख पडे। मैंने भी खुद खेलमें भाग लिया। एक दिन एक सुंदर उद्यान दिख पडा। उसीमें फिरते एक बकुल पुष्पमाला ऊपरसे मेरे गलेमें आकर पडी। आगे बढते कहींसे आवाज आयी "इधर आओ" जाकर देखा तो एक शुभ्र वस्त्रधारिणी स्त्री लेटी थी। जिसे प्रणाम करके मैंने वह माला अर्पण की थी। एक समयके ध्यानमें भयंकर अरण्यमें चारो ओर दिवालोंमें मैं अटक गया सा मालूम हुआ। फिर मैं ऊपर उडकर आगे आकाशमार्गसे चलता देखा। जंगलके श्वापद मुझे पकडनेके लिये उड्डाण करते रहे। लेकिन मुझको नहीं छू कर सके। देखकर मैं हँस पडा। एक दिन नासिक के एक हनुमान मंदिरपर

चढा हुआ मैंने ध्यानमें देखा। इसी प्रकार नासिकके सब हनुमान मंदिरोंपर उड्डाण करके सबोंका दर्शन ध्यानमेंही लिया।

इस प्रकार नित्य नव दृश्योंका दर्शन होकर मुझे आनंद प्राप्त होता है। और मनको प्रसन्नमयता आती है।

(२२) **श्री. पांडुरंग लक्ष्मण भागवत–९९१ सदाशिव, पेठ पूना २:**—१२ मे १९३८ रोज मुझें श्रीगजानन महाराजसे अनुग्रह प्राप्त हुआ। महाराज मुझें सामने बिठाकर ध्यान जमा देते थे जब मुझें अनेक दृश्य दिखते थे। लेकिन घरपें ध्यान जमानेसे कुछ नहीं दिखता था। महाराजकी कृपासे फिर वह भी जम गया। और मैं पूना लौट आया। जिसपर मुझें प्रकाशलहरियां आते जाते ध्यानमें दिख पडने लगी। तोभी मेरी प्रगति ठीक नहीं होती देखकर महाराजने मुझें जपमाला लेकर रोजाना छः हजार जप करनेकी आज्ञा की। इस कालमें मुझें पूजा करतेसमय षट्चक्र-कमलोंका दर्शन दीपज्योतीमें भी दिखने लगा। फिर गणपती और देवीके भी दर्शन ध्यानमें हो गये। इसपर मनको अपूर्व ऐसी शांति भी प्राप्त हुई। एक दिन पूजाके समय श्री नारायण सरस्वतीजी पास आकर बैठे दिख पडे। एक दिन बिस्तरेपें लैटेही एक जटाधारी महापुरुष दिख पडा। बादमें दो दिनतक पूजासाहित्य, धर्मग्रंथ, पुष्प, और दीपक देखें। एक दिन दिव्य स्त्रियोंका समूह कुछ पूजाका उत्सव करते देखा। बिना प्रयत्न ही मैं भ्रूमध्यमें (आज्ञाचक्र) जाता हूँ और प्रकाशमें एकतान हो जाता हूँ।

(२३) **श्री. बी. व्ही. देशमुख, बी. ए., एलेल्. बी., ॲडव्होकेट,–पूना,–नारायण पेठ ३५९–२:**—श्रीगजानन महाराजका स्मरण हुएविना मेरा एक भी दिन जाता नहीं है। रातको सोनेके पहले अवश्य ख्याल आताही है। एक दिन शुभ्रप्रकाशमें दिव्य मूर्तीका ऊपरी अर्धविभाग दिख पडा। नारंगी कफनी पहनी हुई थी। देखकर मुझे असीम आनंद हुआ। मैं वही आनंदानुभव चाहता हूँ।

(२४) **श्री. बाळकृष्ण महादेव गडकरी–११० नारायण पेठ, पूना:**—मे १९१९ में मुझे श्रीगजानन महाराजका दर्शन हुआ। चार पांच दिन पर ही महाराजने मेरे सिरपें हात रखकर मुझे सोऽहम् मंत्र दिया। मनमें

ही जप करते मुझे मूलाधार गमनका अनुभव हुआ। महाराजके बोलने पर मैंने नाभिकमल प्रवेश किया। वहाँका प्रकाशही आत्मप्रकाश है ऐसा कहकर मुझे कई दिनोंके बाद फिरसे मूलाधारमें जानेको कहा। वहाँसे जपसमयमें लहरियां उठकर कानोंतक आती मालूम हुई। वहाँसे वे भ्रूमध्य जातेही वहाँ ध्यान जमाकर जप करनेकी आज्ञा हुई। ऐसा ही लहरियोंके साथ मेरा जपका अभ्यास दो साल हुआ। इससे जो अनुभव आये वे आगे लिखे हैं:—

रातके समय एकांत होनेपर मंजुल ध्वनि सुनाई देने लगा। उससे आनंद होता रहा। फिर जलप्रपातका आवाज आकर घंटानादभी सुननेमें आने लगा। घंटानाद तो बादमें दिनरात ऐसे होने लगे जिससे मैं बेचैन हो गया। श्रीगजानन महाराजसे बोलनेपर भ्रूमध्यमें दो योगी दिख पडे। फिर बडे महाराज और गजाननमहाराजभी दिख पडे। फिर नींद लगी। जागनेपर घंटानाद बिलकुल मधूर मंजुल होते चला।

सोऽहम् जप लहरियोंके साथ मुझे भ्रूमध्यमें ज्ञानचक्षु-दर्शन हुआ। उसमे दिव्य पुतली रत्नजडित थी। उससे नीलप्रकाश फैलकर उसीमें श्रीगजानन महाराज दिख पडे। बादमें बहुत दिनोंतक महाराजका दिव्य दर्शन होता रहा। बेर जैसे बडे मौक्तिकोंकी सर्पाकार दिव्य मालाएँ दिख पडीं। उसीसे बने हुए दो नाग दीखते थे एकका सिर उंचा किया हुआ रहता था और दूसरेका नहीं था। पुष्प और तारकभी दिखते थे। दीप ज्योतीमें मयूर पुच्छोंका बना हुआ जाल दिखता था। चारों ओर मौक्तिकोंका वर्षाव होकर उसीमें दिव्य चक्षु दिखता था। उसीमें चार वर्तुल एकही केंद्रवाले दिखते थे। चारों एकके बाहर एक दिव्य तेजस्वी दिखतें थे। सब इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली देवोंकी कामधेनु, हृदयमें स्फटिक जैसी शुभ्रवर्णकी देखी। मेरा सर्वांग चाटती हुई वह दुग्धधारा वर्षाव करती थी। उससे वहांपे दूधका तलावही बना हुआ था। उसीमें मैंने स्नान किया। ऐसा दर्शन मुझें बहुत दफें होकर ऐसा आनंद होता है कि जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता हूं। सद्गुरु कृपासे ऐसेही और भी कितने दृश्य मुझें दिखतें हैं।

(२५) श्री. के. के. प्रधान-इन्कमटॅक्स इन्स्पेक्टर-नासिकः—पांच सालतक नासिकमें होकर भी मुझें महाराजका पता नहीं

चला था। एक दिन एक मित्रनें पारपार्थिक विषयमें बातें करतेही सहजमें आपका नाम बताया। मैंने उसीके साथ जानेका निश्चय करके एक मिलनका दिनभी ठहरा दिया। और वह मित्र चला गया। इसपर मेरे मनमें बहुतसे चित्तक्षोभक विचार आये और हमारे कायस्थ प्रभु ज्ञातिवाले लोगोंमेंके यही महाराज होकर आजतक इनका बोलबाला जब कुछही मेरे कानपे नहीं आया। तब इनमें कोई असाधारण शक्ति होगी या नहीं इसका शक भी उत्पन्न हुआ। हमारे लोगोंमें कल्याण रहनेवाले संत **श्रीराम मारुती महाराज** होगये थे। उनकाभी बहुत कुछ ख्याल आया।

तोभी आपसे मिलनेकी इच्छा तीव्रही होते चली, ईश्वरी-सत्ताके अस्तित्वपर मेरा बचपनसेही दृढविश्वास था। श्रीरामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, रामतीर्थ इत्यादिकोंके ग्रंथ मैंने बचपनमेंही पढे थे। और आध्यात्मिक अनुभवोंकी इच्छा बढतीही रही थी। विद्यार्थिदशामें फर्गुसन कॉलेजमें पढता था। जब नजदीकके उंची जगहपे जाकर मैंने ॐ मंत्रका जोरसे उच्चारण करनेका अभ्यास करतेसमय दो दफें मुझे ऐसा अनुभव आया कि जिससे पृष्ठवंशमें एकाएक उष्णता पैदा होकर अद्भुत आनंदकी लाहरें उमड आयी थीं। मुझे समझ पडा कि मैं ऐहिक और पारलौकिक जगतोंके बीच कहीं लटक रहा हूं। लेकिन रास्ता बतानेवालेबगर कुछ भी न कर सकता हूँ। इस अनुभवके बाद मेरे सब व्यवहार ऐसे बिगडने लगे जिससे मेरा अध्ययनही खो जानेकी संभावना प्राप्त हुई। मित्रोंके बहुत कुछ छेडनेपर मैंने जैसा यह अभ्यास भविष्यके लिये पेटीमें रखकर जरा देरके लिये अलग रखा। अपने व्यवहार फिरसे ठीक बनाकर मैं साधारण व्यवहारी मानव बन पडा। जब एक दिन ऊपर लिखी हुई घटना होगयी।

श्रीगजानन महाराजके भेंटका समय और दिनभी मैं बिलकुल भूल नहीं सकता हूँ। बहुतसी छोटीं छोटीं गलियाँ काटकर अखीरमें हम लोग एक क्षुद्र दिखनेवाले मकानपें आयें। घर नीचा और अंदर एक छोटासा चौक था। जिसमें एक पुराने जमानेका कुआँ था। आपकी कोठीमें तो बिलकुल एक छोटेसे छोटे मार्गसे जाना पडा। कोठी देखकर मैं तो जरा डर गया। तो भी जूती बाहर रखकर गया। अंदर एक बिलकुल कृश देहधारी व्यक्तिने अपने हाथ जोडकर, अपनी तेजस्वी आँख और आकर्षक मुद्रासे हमारा

स्वागत किया। आप बूढे होगे ऐसी मेरी समझ थी। लेकिन देखनेपर वैसा नहीं मालूम हुआ। आपने विनोदसे भराहुआ अपना संभाषण शुरू किया। कोठी तो साधारणतः बडीही थी। बाजूपें एक पलंग था। उसपे गद्दी और लाल किनारेवाली मच्छरदाणी थी। दिवालोंपें चूना लगाकर कोई पुराने साधुसंतोंकी तसबीरें लटकी थी। एक कोनेमें एक स्टूलपें ग्रामोफोन था। जमीनपें एक साधी और स्वच्छ सतरंजी थी। और कुछ थोडीं कुर्सियाँभी थीं। महाराजके पास एक सिगरेटका डब्बाभी था। आपका धूम्रपान और व्यावहारिक बातें चलीं थीं। बादमें हमलोगोंको चाय पिलवाकर बिदा कर करदिया। मुझें इस दिन तो महाराजमें कुछ असाधारण बात नहीं दिखपडी। घर आते समय मैंने सोचाः—"क्या यह कोई साधु हो सकता है? साधुत्त्व का मुझें तो कुछ चिन्हभी नहीं दिख पडा। हाँ प्रेमसे बर्ताव करते हैं। और मित्र कहलाने के लिये एक अच्छा आदमी होता है।" मेरे मित्रके प्रश्नोंको रास्तमें ऐसे जबाब दिये जिससे उसकी भावनाको चोट न बैठे। लेकिन मेरी तो भावना ऐसीही हुई कि व्यर्थ कालापव्यय किया। और शीघ्रही यह सब भूलभी गया।

मानसशास्त्रज्ञ कहतें हैं कि बहुशः मनुष्य बाह्यमनसे विरोधकरके भी अंतर्मनसे किसी विषयके साथ योग कर लेता है। वैसाही मेरे अंतर्मनमें इस संतका चित्र रह गया। क्यों क्या जानें ईश्वरसूत्रसे मुझें ऐसी इच्छा हुई कि कुछ ध्यानका अभ्यास करें! घर लौटतेही मैंने ध्यान जमाया और मुझें पहले जैसाही आत्मानंदका अनुभव आया। किसी देवलके बंद किये हुए द्वारमेंसें मैं देवताके सामने जलती हुई ज्योति देखता हूँ ऐसाभी अनुभव आया।

इसका कारण कौन? पहले ऐसा अनुभव क्यों नहीं आया? ऐसी यह श्रेष्ठ विभूति कौन है? इस शामकोही यह अनुभव क्यों आया? इन सब प्रश्नोंके उत्तर क्या होंगे?

जबसे मेरा तो ख्याल होते चला कि मैने अपनी नौका प्रशांत ऐसे जलप्रवाहमें छोड दी है और मेरी प्रगति होरही है। और सद्गुरु मेरे मार्गदर्शक बने है। जबसे समय पातेही आपका दर्शक करके आपसे स्फूर्ति

प्राप्त कर लेता चला हूं। श्रीगजानन महाराज के श्रेष्ठत्वकी मुझे स्पष्ट कल्पना हो गयी है। वे बोलते हैं:—अपनी आध्यात्मिक सुंदरता अपने बाह्य चालचलनमें दिखपडनी चाहिये। हम हरिके दास सौंदर्य, सत्य और आनंद की तीन नदियोंके संगममे खडे होते हैं। मेरे अंतर्याममें तो ऐसा मालूम होता है। इतनाही नहीं तो सर्वव्यापी परमात्माके इन तीन स्वरूपोंका उगमही पकडा है। और खुद मैं तद्रूप हुआ हूँ।"

यह साधारण दिखनेवाले महापुरुष खुदको "साधक" ही बोलते, तोभी मुमुक्षुपर आपका असर जितना जल्द होजाता है, उतना खुद को 'सिद्ध' कहलानेवाले कईएकका नहीं होता है। इससे ऐसा माननेको कुछ हर्ज नहीं कि श्रीगजाननमहाराज तो परमात्माके भूतलपर भेजे हुए खुदके प्रतिनिधिही हैं।

(२६) श्री. काशिनाथ रामचंद्र गंदेकर: — मैं जब धुलियामें था तब श्री. राजे वहांपर पोस्टमास्तर थे। आप ज्योतिष अच्छा जानते थे ऐसी आपकी वहाँ कीर्ति सुनकर और मुझे भी उसी विषयका प्रेम होनेसे मैं आपकी मुलाकातके लिये आता जाता था। आपने कुछ ज्योतिःशास्त्रपर किताबें भी लिखी हैं।

एक दिन मैं श्री. राजेके घर जानेपर वहां एक पंगु मनुष्य दिख पडा। हमारे वहीं बैठनेपर आपने एक सिगरेट सिलगा कर धूम्रपान शुरु किया। जब वहां हमारे साथ सासवडकर और गुप्ते थे। एकाएक वहाँ सुगंध फैल गयी। वह सूंघतेही मैंने श्री. राजेसे पूच्छा इतनी सुगंध देनेवाली अगर-बत्ती आपको कहां मिली?" श्री. राजे बोले, "चलो, जरा बाहर घूमकर आयेंगे।" बाहर जाकर आप बोले, "देखिये हमारे घर जो पंगु मेहवान बैठे हैं उनके धूम्रपानसेही ऐसी सुगंध छूटती है। मेरी माता अस्सी पच्यास्सी सालकी है और उसकी आपपर श्रद्धा होनेसे आपका यहां आनाजाना होता है। वे हमारे जातभाई ही हैं। हमारे दूसरे कई एक जातभाई और दूसरे भी लोग दर्शनके लिये शामके समय आते हैं। रातको जहाँ रहेंगे उस कोठीमें भी ऐसी सुगंध फैलती है। दो-दो चार-चार दिनमें कुछ भी खानापीना करते नहीं हैं। रोजाना चार-पांच दफे खाली चाय लेते हैं। एक पाँव घुटनेके नीचे

बिलकुल सूख गया है। चाहे तो एक लाठी लेकर चलते भी हैं। कभी कुछ खाया भी तो पतली चपातीका चौथाई हिस्सा भी पूरा नहीं खाते हैं। मेरा अध्यात्म विषयमें कुछ विश्वास न होनेसे मैं आपकी भक्ति नहीं करता हूँ। तोभी मुझे उनके चमत्कारसे बडा आश्चर्य मालूम होता है। कोई लोग रातको यहांपर आकर योगसाधनोंका अभ्यास भी करते रहते हैं।"

फिर मैं महाराजकी हमेशा मुलाकात लेता रहा। और एक दिन आपसे बोला कि, "महाराज! एक संतने मुझे बताया था कि इस सालमें तुझे ईश्वर-प्राप्तीका मार्ग बताया जाएगा। अब आपकोही वह बताना चाहिये।" महाराजने कहा, "यह बात तुम्हें किसने कही? कब बोली? सब ठीक ठीक पहले बता तो दो?" मैं बोला, "पंढरपूरमें मैंने कोई मित्रोंके साथ साधारणतः महीनाभर मुकाम किया था। वहाँपर सुना कि वहाँ कोई **तपकिरी बाबा** है और जिसके नसीबमें हो उसे उनका दर्शन होता है। फिर हमें आठ दिन उसी ख्यालसे चैन नहीं पडा। नवमें दिनपर हम घूमते समय वे एकाएक नदीकिनारे दिख पडे। हम पास जानेके पहले ही वे ऐसे जोरसे भागे कि हम खूप दौडनेपर भी उनसे नहीं मिल सके। फिर हमने लौटकर नदीपें स्नान किया। तो आप फिरसे आकर हमें बुलाने लगे। जानेपर बोले सिर मेरे पांवपे रखो। हमने नमन किया। फिर बोले देखो मैं अभी झाडेसे आया हूं और यह बचाहुआ पानी तुम्हे तीर्थके बदले देता हूं। चाहे तो लेना और हमारे चेहरोंपर नजर लगाते खडे हुए। हमने लेनेपर बोले, "अब मैं जाता हूं।" मैं बोला, "आप जैसा सत्पुरुषोंका हमेशा दर्शन होकर कुछ ईश्वरप्राप्तीका मार्ग दीखने के लिए तडपता हूं।" इसपर उत्तर आया, "फलानें सालमें तुझें मैं मिलूंगा। जब तुझें कुछ बताऊगा। लेकिन तुम मुझें पहचान नहीं सकोगे। तोभी अभ्यास, श्रद्धा और दृढता रखकर करेगा तो रोज तुझें रोजना ईश्वर भेट देगा।" इतना कहकर आप तो भागते चले गये। उस समय मेरे साथ एकही मित्र था। अब कहा हुआ साल तो यही है। अतः अब आपको कृपा करनीही चाहिये। इसपर गजानन महाराज बोले, "बात तो सच है। लेकिन तपकिरी बाबा मैं नहीं हूं। तोभी मैं कुछ तुम्हें बताऊँगा।" मैंने पूछा, "फिर कब शुरुवात करना?" आप बोले, "कलही। सुबह सात बजे आना।"

दूसरे दिन स्नान करके मैं महाराजके पास पहुंचा तो बोले, "आजसे शुरुवात तो करनेका है। लेकिन क्या आपने कोई गुरु किया है? न होगा तो पहले गुरु करना होगा। मैंने बोला, "बहुतसालके पहले गुरू किया है।" महाराजने कहा, "फिर गुरुके कहे हुए मंत्रका जप करते हैं? मैंने कहा, "जी हाँ, रोजाना स्नानके बाद और पूजाके पहले हजार जप करता हूँ। महाराज बोलेः—ठीक। अब मैं जो कहूँगा वह ख्याल रखकर करनेसे तुम्हें साधा होगा। पद्मासन जमाकर रोजाना बने उतना जप करते चलो। पाँव दुखेंगे तो जरा विश्रांति लेकर फिरसे वैसाही जप करो, आठ दिनमें कुछ आदत पड जाएगी।"

आठ दिन वैसा करनेपर बोले, अब कैसेभी बैठकर अखंड जप करना पडेगा। मंत्रके उच्चारणके लिये मुँह नहीं हिलना चाहिये। चलते फिरतेभी दिनभर अखंड जप सोनेतक करते रहना। ऐसाभी आठ दिन किया। जब बोले, "कलसे मेरे सामने रोजाना शाम सुबह पद्मासनमें बैठकर, शरीर सीधा सहल रेषामें रखकर हाथ घुटनेपें रखकर, जप करते चलना। वहभी आठ दिन तक हुआ। फिर एक दिन बोले, "कल अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी। तो भी डरना नहीं। भीति उत्पन्न करनेवाला कुछ भी दिखेगा तो भी तुम्हें स्पर्श नहीं करेगा।" दूसरे दिन सामने बिठाकर मेरे मस्तकमें हाथ रख्खा। जब ही मुझे सामने एक गढ़ा दिखने लगा। अंधेरेमें उसीमें घुस पडा। इसपर महाराज बोले, "ऊपर आओ और आँखें खोलो?" पूछनेपर ऊपर दिखा हुआ दृश्य बोल दिया। शामको वैसा ही मुझे बिठानेपर वही गढ्ढेमें मैं दूरीपर चला। कहीं प्रकाश कहीं अंधेरा था। प्रकाश होते ही बडे सर्प, सिर न होते कोई राक्षस मुझे पकडतें है ऐसा देखकर डरसे मुझे पसीना भी आता चला। ऐसा ही प्रकार पांच-सात दिन चला। डर पैदा होते ही महाराज मुझे स्पर्श करके ख्यालमें लाते थे और पहले जैसा आश्वासन देते थे। आठ दिनके अभ्याससे इस प्रकार वह मार्ग तो पूरा हो गया। फिर बोले, "अब हम लोग किसी अनकी जगह पहुँचे हैं। अब प्रकाश ही दिख पडेगा। वह बढते जाएगा। कभी अंधेरा भी होगा। रोजाना तीन दफे मेरे सामने अभ्यास करते चलना। और रोजाना जो दिखेगा वह लिखकर रखते चलना।"

दो–तीन दिन अंधेरा ही दिखा पडा। फिर प्रकाश दर्शन हुआ। वह भी बढते बढते धूप जैसा बढा और उसमे भी तकलीफ होने लगी। मार्गमें झाड पेड, जंगल और शिवमंदिरोंका दर्शन होता जाता। फिर प्रकाश चंद्रमाके प्रकाश जैसा शीतल हो गया। उसमें आनंद और शांति मिलती चली। फिर हृदयके पास काले पत्तर दिख पेड। उनमेंसे अग्नि ज्वालाऐं आतीं हुई देखीं। कोई दिनोंके बाद उन्हींमेसे एक केले के पेड जैसा दंड और वैसाही फूल आगया। कोई दिनोंपर वही दृश्य दीखना बदल गया। और पुष्पका मुख जो नीचे था वह ऊपर हो गया। फिर महाराजके कहनेपर ठीक कोई दिनोंके बाद वह स्पष्ट होते चला। वही फूल ऊपर आया और अग्निज्वालाएं बंद हुई। फूल की एकेक पत्रिका खुलते चली। कोई ऊपरी और कोई नीचली खुलकर उसका रंग लाल दिखने लगा। फिर कई दिनोंके बाद हरेक पत्रिकापर काला बिंदु दिखा। बादमें वही बिंदुओंका अक्षर बनते चला। महाराजसे पूछनेपर बोले, "वे कमलके बीज हैं। हमलोग अब हृदयकमलसें नाभिकमल जाएँगे।" अभ्यास आगे चला तो देवियोंके दर्शन हुए, कोई सिंहपर, तो कोई व्याघ्रपर बैठीं थीं। स्वरूप उग्र था। फिर मनुष्यके समान पिशाच्च और फिर साधारण मनुष्यभी दिखने लगे। महाराजसे पूछनेपर उत्तर मिला, "सबरूप देवीकेही। तुम्हें पहले पिशाच्च लोक और पितृलोक दिखाई पडे। आगे तुम्हें गंधर्व लोक दीख पडेगा और बादमें तुम नाभिकमलमें पहुँचोगे।

रोजाना मैं तीन दफे अभ्यास करता रहा। कोई दिनोंके बाद मुझे एक नदी दिखपडी। जिसे दोनों तरफ संगमर्मरके घाट थे और जहां वहाँ पुष्प वाटिकाएं थीं। वहॉपर अवर्णनीय तेजस्वी सुंदर स्त्रीपुरुष आकार स्नान करते थे। पैलीवर नथनरम्य नगरियाँ दिखती थीं। जिसमेंसे सुवर्णमंडित शिखर ऊपर आये हुए दिखते थे। देखकर ऐसा आनंद होता था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष ही देखना चाहिये। पूछने पर महाराज बोले, "यह गंधर्व लोक है। और वे गंधर्व और अप्सराएँ हैं।"

मै आगे नाभिकमलकी तरफ बढा। पहले तो अग्निज्वालाएँ दिखती थी। कोई दिनोंके बाद ऊपरी लिखे हुए कमलके समान कमल दिख पडा। पत्रियोंका आकार थोडा अलग था। वहीं शेषशायी भगवानके नाभि कमलसे

निकल श्री ब्रह्माजीका अस्पष्ट दर्शन हुआ। महाराजसे पूछने पर अस्पष्टता का कारण आपने बताया:—"अभ्यास सतत करनेसे स्पष्टता आती है। वह काम तुम्हारा है। मैं एकेक स्थान बताउँगा। तुम्हें अभ्याससे उसकी पकड लेना पडेगा। पीछले दृश्य अब नहीं दिखेंगे। खाली तुम्हारा ठहरनेका स्थान दिखेगा। वहाँ बैठकर वह हस्तगत करते चलों।"

बादमें कभी अंधेरा, कभी उजेला, कभी सृष्टिसौंदर्य दिखता रहा। एक दिन महाराज बोले, "आज तुम्हें गणपति दर्शन होगा। बैठो और नाभिकमलके नीचे जाओ।" वैसा करदेनेपर चन्द्रप्रकाशमें अंगुष्टमात्र गजाननका दर्शन हुवा। सिंहासनपर बैठकर सूंड हिलाते थे। बिलकुल छोटे बच्चेके समान दिखती हुई वह मूर्ति कितनी सुंदर और तेजस्वी थी इसका वर्णन मैं नहीं कर सकता हूं।

इस ध्यानके समय महाराजने मेरे शरीरको जलती सिगरेटका स्पर्श करवाया था। जो ध्यानमें मुझें नहीं समझ पडा। लेकिन ध्यान छूटनेपर वहांपर अंगार होने लगा। महाराज बोले, तुम्हारा ध्यान सचमुच लगा है या नहीं यह देखनेके लिये मैंनेही वैसा किया। तुम जरा भी हिलते तो मुझें समझ पडता कि ध्यान सच्चा नहीं है। यही अंतर्दृष्टि है।

फिर एक महीना पंधरह दिन वैसेहि अभ्यास करते चले गये। **घरको अभ्यास करतेसमय खाली अंधेरा या उजेला दिखता था। लेकिन महाराजके सामने अभ्यास करतेसमयही ऐसे दृश्य दीखते थे जो ऊपर लिखे हैं।** एक दिन महाराज बोले, "आज तुम्हें कुंडलिनी दर्शन करवाएँगे। योगसाधनोंमें कुंडलिनी दर्शन यह सबसे अधिक महत्वकी बात है। चलो बैठकर गणपति-स्थानके नीचे जाओ।" मैंने वैसाही किया। जब औरभी नीचे एक त्रिकोणाकृति कुंड दिख पडा। जिसमेंसे प्रखर अग्निज्वालाएं निकलती थीं। जिससे मुझें ताप होकर पसीनाभी आगया। पहिले देखी हुई ज्वाला ओं जैसा ताप नहीं हुआ था। इस प्रकार रोजाना यही दृश्य देखते कोई दिनोंके बाद उनका ताप कम होते चला। उसी कुंडमेंसे दो नलिकाएं ऊपर चढतीं दिख पडीं। नालिकाओ के बीचमें एक नलिकाके चौडाईका गस्ता खुला था। नीचे एक कृष्ण सर्प लपेटकर बैठा

दिखा। मुहँ नीचे था। पूछनेपर महाराज बोले: "वे दो नलिकाएं 'इडा' और 'पिंगला' हैं। बीचमेंके रास्तेको 'सुषुम्ना' बोलते हैं। श्वासोच्छ्वास इनहींमें से चलता है। तुम्हें नीचे जो सर्प दिख पडा वहीं 'कुंडलिनी' है। वह साधारणतः निद्रिस्तही रहती है। वह देहमेंका अमृत शोषण करती रहती है। उसें जागृत करनेसे मनुष्य योगी बनता है। उसे जागृत करते समय बहुत कठिण ऐसे योगके नियमोंका पालन करना पडता है। जागृत होते ही उसका मुँह ऊपर नहीं हुआ तो मनुष्य मर जाता है। इसलिए जो उसे जागृत करेगा उसमें बडी ताकद रहनी चाहिये। यही कुंडलिनी जैसी जैसी सुषुम्ना मार्गसे ऊपर चढती है वैसा वैसा मनुष्यका सामर्थ्य बढता है। इस विषयमें और कुछ आगे बताएंगे। अब हम लोग द्विदल चक्रकी तरफ चलेंगे। इस लिये तुमने अपनी दृष्टि ऊपर लेजाना चाहिये नासिकाग्रमें भ्रमध्यमें देखना चाहिये।"

ऐसा ही अभ्यास चलता था जब एक दिन आषाढी एकादशी आयी जब पंढरपूरमें श्रीविठ्ठल दर्शनके लिये भक्त और संतोंकी असीम भीड होती है। इस दिन महाराज और पास बैठे हुए सबलोग इनके अंगपर बुक्का कहींसे आकर बर्साव आने लगा। यह सुगंधित काली भुकनी बहुतसी बरसने पर लोग बोले पंढरीनाथका यह चिन्ह तो मिल गया लेकिन अब हमें पंढरपूरके देवताका यहां नासिकमेंही दर्शन होना चाहिये। महाराज बोले "सबको नहीं होगा लेकिन आप जनाब (मैं) अभ्यास करते हैं इनको होगा।" मुझें आज्ञा होतेही मेरा ध्यान जम गया। मुझे पंढरपूरके यात्रासमयका सब दृश्य दिख पडा और वहांकी देवता श्रीविठ्ठलकाभी दर्शन हो गया। खयालमें आनेपर महाराजको सब वर्णन किया जब महाराज बोले "तुमने विठ्ठल-चरणोंपर सिर नमाया तब तुम्हारे भालप्रदेशपर बुक्का लगा हुआ दिख पडता है।" वहाँ आये हुए लोगोंने मेरे भालप्रदेश देखकर अचंभा किया और मुझें भी आयना बतानेपर मेराभी निश्चय हुआ कि बात तो सच है। महाराज बोले "आज तक तुमने जो अभ्यास किया उसका फल आज मिलगया।" इसप्रकार कभीकभी कोई चमत्कार होते रहे।

बादमें ऐसाही अभ्यास करते समय भ्रूमध्यें द्विदल कमल और वहांसे कई दिनोंके बाद एक नेत्र दिख पडा। महाराज बोले:—"एकेक चीज मैं

खाली तुम्हें बता दे रहा हूँ वहाँ वहाँ तुमने चित्त जमाकर स्थान हस्त गत करलेनेबिगर उस स्थानकी शक्ति तुम्हें नहीं आएगी। मैं पास न होते अभ्यास करने पर तुम्हारी कुछ भूल होगी तो योग्य मार्ग क्या है यह ज्ञान हो जाने के लिये ये सब स्थान बता रहा हूँ। अब मेरा काम नहीं रहा है। तुमनेही अभ्याससे देहसार्थक कर लेना चाहिये। तुम्हें कुछभी धोखा नहीं होगा। अब खालीं सहस्रदल चक्र बतानेका रहा है कलसे उधर चलेंगे।"

दूसरे दिनसे जो अभ्यास हुआ उसमें ॐकार और कुछ स्थान अस्पष्टसे दिखकर एक बहुत दलोंका कमल दूरीपरसे दिखपडा। वही सहस्र दल कमल इतना तेजस्वी था कि अंतर्दृष्टीसेभी मुझे देखना मुष्कील हुआ। तेजमें नीलवर्ण भरा हुआ था। यहाँतकही आनेके लिये मुझें अढाई महनोंका काल लगा। फिर महाराज बोलेः—"अब सब स्थान तुम्हें बताये हैं। कुछभी डर न रखकर रोजाना अभ्यास करते चलो। अब एकही स्थान बतानेका रहा है वह 'कंठ' स्थानमें का 'विशुद्ध' चक्र है। आगे कभी बताऊँगा। अब हमेशा अभ्यासके समय हृदयसे शुरुवात करना। वहाँ बहुत प्रकारके प्रकाश दिखेंगे। पहले सूर्यप्रकाश देखकर तुम्हें तकलीफ होगी। आगे चंद्रप्रकाश दिखेगा। जहांपर तुम्हें तकलीफ न होते वृत्ति शांत और आनंदमय होगी। और तुम धूपमें कभीभी कितनेही कालतक रहोगे तो तुम्हें तकलीफ नहीं होगी। आगे नीलप्रभा दिखेगी। वही बढकर अग्निज्वालाके समान होकरभी तुम्हें तकलीफ नहीं होगी। फिर नीलवर्णमेंही श्रीकृष्ण परमात्मा दिखपडेगा। वही मूर्ति देखनेका अभ्यास रखनेपर तुम्हें सब योग सिद्ध होगा।"

मैंने अभ्यास तो रखखा। लेकिन पांच सात साल ऐसे गये कि प्रपंचके तकलीफोंसे अभ्यास पीछेही रहते चला। बादमें महाराजका दर्शन लेनेपर आप बोले कि "पहला अभ्यास कभी बेकाम होता नहीं है। शुरुवात करनेपर झटही पूर्वस्थानपर आना होता है।"

इस प्रकार संक्षेपमें मैंने वर्णन किया है। तीन सालतक महाराजने मेरे हाथसे यह अभ्यास करवा लिया। जब कोईभी कडे निर्बंध नहीं रखे थे। प्रपंचमें तकलीफ नहीं होती थी। प्रपंच छोडनेका कारण नहीं रखा था। इससे श्रीगजानन महाराजके सुलभ मार्गदर्शनकी पद्धति मालूम होती है।

मैंने बेलापूरके '**विद्यानंद**' स्वामीसे उपदेश पहले लिया था। आपहीने समाधिकालके समयमें बताया था मैंही "**नारायणमहाराज**" बनकर आनेपे तुम्हें दर्शन होगा। बादमें केडगांवकर नारायणमहाराज का मुझे विद्यानंद स्वामीके रूपमें दर्शन 'आर्वी' ग्राममें हुआ। श्री नारायण महाराजने भी मेरे हाथसे ध्यानयोग करवा लिया। बादमें पंढरपूरके '**तपकिरीबाबा**'का दर्शन हुआ। फिर **श्रीगजाननमहाराजकी** भेट पर ऊपर दिया हुआ अभ्यास होगया। सद्गुरु कृपासे औरभी संतोंके दर्शन हुए।

(२७) **श्री. सौ. जानकीबाई प्रधान**:—बावनसालकी उमरमें महाराजका दर्शन हुआ और आज ६५ की उमरमें अनुभव लिखें हैं:— पुराण प्रवचनोंके श्रवणसे मुझे मालूम हुआ कि सद्गुरुविना सद्गति नहीं है। जिससे सद्गुरुप्राप्तीके लिये तीव्र इच्छा और समय मिलनेपर तीव्र उद्वेग मुझे होता रहा। ऐसी अवस्थामें एक समय एक ब्राह्मणने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा "तुम्हें शीघ्रही सद्गुरुप्राप्ति होगी।"

बादमें धुलियामें श्री० राजे पोष्ट मास्तरके घर श्रीगजानन महाराजका आगमन हुआ। मेरा लडका उन्हींके घर रहताथा। अतः मैं वहांपर चल पडी और 'सात आठ दिनमेंही मुझे गुरुपदेश हुआ। ध्यानका अभ्यास शुरू करतेही हर जगह प्रकाश दिखपडा। फिर वह साधारण गुलाबी होकर एक बडी कमान दिखपडी वहांपर कुछ अक्षर दिखे जो मैं पढना जानतीही नहीं। बीचमें तुलसी और वहांपे प्रकाशमें सद्गुरुमूर्ति दिखपडी नाभिकमल ध्यान करनेपर एक कुंड और एक विभूति दिखपडी। फिर प्रकाश बढकर श्रीशंकर और सद्गुरु दिखपडे। वहांपे एक तेजोमय कमल दिखा। श्रीशंकर नरमुंडमालाधारी ध्यानस्थ थे। फिर हृदयकमल देखा। वहाँ नीलप्रकाशमें नीलवर्ण मूर्ति दिखपडी। जो किरीट कुंडलधारी होकर पुष्पमालाधारी थी। और मुरली बजातीथी जिसके मंजु मधुर नाद मुझे सुनाई दिये। वह दृश्य मिटकर वहाँपर एक उद्यान दिख पडा। वहांपर प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण मेरी तरफ देखते वृक्षोंमें छुपापाणीका खेल करते देखे। फिर एक नीलवर्णकी नदी देखी। जहाँपर फिर श्रीकृष्ण दर्शन हुआ। दोनों तरफ छोटे बडे पेड थे एक रास्ताभी दिखा।

नाभिकमलमें ज्वालामय अग्निकुंड दिखा। ज्वालाएँ मेरे हृदयतक आतीं थीं। नीलवर्ण श्रीकृष्णमूर्ति उसी दृश्यमें दिख पडी।

मेरे हृदयकमलमें जब श्रीकृष्ण दर्शन होता है तब वे मेरे सद्गुरुरूपमें-भी पलट जाते हैं। गुरुका रूपभी बदलता रहता है। कभी उन्हें डाढी रहती है। कभी एक खमीसही डाला हुवा दिखते हैं। दृश्य पलटकर पुष्पोंकी कमान दिखती है। बीचमें एक कमलमें हाथ और होंठ हिलाते हुए श्रीकृष्ण दिखते हैं।

टीपः—अनुभव लिखनेके बाद यह साध्वी चारही महीनेमें संसार छोडकर परलोक गयी। मरनेके पहले तीन दिन अपनी सबसे छोटी लडकी पास ली और उसको पांच रुपिये दिये। इस लिये कि श्रीगजानन महाराजके हाथसे इसका खर्चा ब्राह्मण भोजनके वास्ते होगा। देह छोडते समय 'सोहम्' मंत्र और श्रीगजानन महाराजका नाम उच्चारण करती थी। पांच ब्राह्मणको खिलानेके वास्ते भी कहती थी। 'सोहम्' मंत्रके साथ देह छोड दिया। उस कोटीमें आनेजानेवाले लोगोंको मृत्युके बाद तीन दिन तक तुलसी, अत्तर और श्रीखंडकी सुगंधि आता रहा।

(२८) **श्री. शंकर केशव फणसलकर बेलगांवः**—१९२५ इ० में मैने बेलगांवमें **श्रीकुलकर्णी महाराजसे** उपदेश लिया। श्वासोच्छ्वास नासाग्रदृष्टी और मंत्रके ध्यान रखनेका आपका उपदेश था। १९३२ तक हर साल आप बेलगांव आते थे और मैं दर्शन लेता था। १९३३ में पूना गया, और ३४ में नासिक आया। जप करते समय मेरे श्वासोंकी रुकावट होती थी। अभ्यास वैसाही करता रहा। एकदिन पडोसवाले मित्रोंको मेरें अभ्यासकी अवस्था कह पूछा कि इसपर आगे बढा देगा ऐसे कोई संतको मिलनेकी इच्छा बताई। जब मित्रने कहा नासिकमें ही एक महाराज हैं जिनके शिष्य अप्पासाहेब वैद्य की पहचानत भी है। जिसपर श्री. वैद्यके साथ श्री. गजानन महाराजके स्थानपर मैं जाकर एक दिन पहुँचा। महाराजने मेरा सब हाल सुनकर पहलेही गुरुके दिये हुए मंत्र जपकी सलाह दी। और दो तीन दिन रोजाना सामनेही बिठाकर जप करवा लिया। पहिलेही दिन श्वासोंकी रुकावट चली गयी। मेरा मन अंतर्मुख हुआ और मुझे आनंदमय जीवन प्राप्त हुआ।

छः महीनोंतक तुझे ध्यानमें मनुष्य, अक्षर रंग, नक्षत्र, चमक, इत्यादि दृश्य दीख पडे। फिर समुद्र, नदियां, पहाडी, मंदिर इत्यादि दिखते थे और मिटभी जाते थे। बादमें योगियों के जमाव (मेले) दिखे जिनमेंसे कोई खडे, कोई बैठे, कोई घूमते फिरते दिख पडे। कोई ध्यान करते भी दिखे। मनकी चंचलता जाकर व्यवहार शांततासे होते चले। फिर दृश्य मिट गये। अंधकारके बाद नीलप्रकाशमें ऊपर लिखे जैसे साधु फिरसे दिखे। उस प्रकाशमें मन आनंदमय होते चला। ध्यान करनेका समय बढानेमेंही आनंद होते चला। पूर्वजीवनमें ऐसा आनंद कभीभी नहीं मिला था। फिर घंटा नाद सुनाई आता चला। दृश्य मिटकर खाली अंगुष्ठमात्र ज्योतिदर्शन होता रहा। जिसे देखते मैं अपने देहको भूल जाता हूं। केवल दो साल और चार महीनोंके अंदर मेरी इतनी प्रगति यहांपर आनेसे होगयी।

(२९) **श्री. दत्तात्रय केशव भट शिक्षक न्यू इंग्लिश स्कूल नासिक**:—ज्ञानेश्वरी विवेकानंद, और कुछ धर्म और अध्यात्मकी किताबें पढनेके बाद मैनें १९३८ इ० के सप्टंबर मासमें "धि ग्रेट डिझाइन" नामक पुस्तक पढ लिया था।" ईश्वरके प्रत्यक्ष अनुभवके लिये मनमें बलवत्तर इच्छा प्रकट हुई थी। और मेरे जीवनमें कोई चमत्कार होते चले थे। मित्रोंके साथ अध्यात्म विषयकी बाते करते समय जब मेरा चित्त तन्मय होता था। तब मेरे मुखके चारों ओर अस्पष्टसा एक तेजोवलय दिखता है ऐसा मेरे एक मित्र श्री. वामनराव देशपांडे बोलने लगे। उसी समय दूसरे मित्र वहां जो बैठते थे उनके मुखपें कुछ वैसा नहीं दिखता था। आध्यात्म विचारमें एक रातको मैं ऐसाही मग्न होकर बैठा था जब गोपालसिंग नामक एक विद्यार्थि मुझे मिलने आया। हवा बहुत ठंढी छूटती थी, इससे सब खिडकियां लगाकर बैठा था। मुझे कोठीमेंही प्रकाशके मेघपुंज दिख पडे। और वह बोला "क्या सुन्दर चन्द्रप्रकाश दिखता है।"

कोजागिरी पौर्णिमाके पहले एक दो दिन एकांतमें दृष्टि अंतर्मुख करके भावसे ऊपर चढनेका यत्न किया। इसे कोई लोग 'भ्रम' बोल सकते हैं। लेकिन जब मैं ऐसा करता था तब कई दफें मुझें मस्तिष्कमें एक अत्यंत तेजोमय प्रकाश दिख पडता था। जिसका वर्णन शब्दोंसे नहीं होता है।

कोजागिरी पौर्णिमाके दिन वैसाही यत्न करनेपर अंगमें खून नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे ऐसे जोर जोर से बहने लगा कि मुझे बहुत डर पैदा हुई। दो तीन दिन मेरी अवस्था भयंकर हो गयी। थकावटभी आगयी। लोभी 'न मे भक्तः प्रणश्यति' इस भगवद्वचन का मुझे सतत स्मरण होता रहा। और मनका उसेही बडा आधार मिलता रहा।

बादमें दीपावली के दिनों में एक स्थानपर बैठकर ईश्वरके सर्वव्यापित्वका विचार कर रहाथा। जब मेरा चित्त मस्तकके मध्य बिंदुपर स्थिर होगया। मेरा शरीर अलग जैसा होगया। लोगोंकी बातें और ग्रामोफोनका गायन शरीरके किसी विभागसेही उत्पन्न होते मालूम पडे। मन अंदरही जादह गढते चला और मुझे एक चमत्कारजन्य अनुभव आयाः— बाहरी जगत्में पानी बरसकर बिजलियों की कडकडाहट होती रही। लेकिन अंदर तो मेरे पीछे भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति मुझे दिखती थी। अथांग सागरमें श्रीकृष्ण और शेष खडे देखे। जहां देखे वहांपर मनकीही बातें प्रत्यक्ष दिखने लगीं। विचार आतेही चाहे वह देवता या साधुसंत सामने दिखपडे। बाहर चला हुआ ग्रामोफोनके गीतमेंकी भावना और मुझे सामने दिखता हुआ दृश्य इनमें अदृष्टपूर्व साम्य दिख पडा। उन्हीके मीलनसे होनेवाले अंतःस्फुरणसे मुझे मुझमेंही अनुपम आनंद लाभ हुआ और सब दिन आनंदमय हुआ।

लेकिन दूसरे दिनसे सब प्रकार उलटा हो गया। मनमें खराब विचारों की गडबड होकर शिर सुन्न हो गया। किसी अघोर मंत्रका मुझपर असर हुआ सा मुझे मालूम होने लगा। किसीमें नजर जातेही उस मनुष्यकी मनःस्थितिमेंभी दुःखकारक चलविचल होते देखनेपर मैं इसपर बहुत कुछ विचार करता रहा। मेरी कृतीसे कुछ अघोर विद्यावाले मनुष्यके कार्यमें अटककर मैं अपनी मानसिक शक्तीका ऱ्हास करता हूँ ऐसा मत होते चला।

फिर किसीका साहाय न होते मैंने परमेश्वरकी प्रार्थना तीव्रभावसे शुरू की। जब मुझें श्रीगजानन महाराजके बारेमें टाइप किये हुए कुछ कागज पढने मिले। विचार करके एक मित्रके साथ आपका दर्शन भी लिया। लेकिन प्रथम भेंटमें मित्र और मैं दोनोंपर कुछ भी असर नहीं हुआ।

मैं महाराजकी भेंट लेता ही रहा। जब एक दिन शिष्योंके कोई अनुभव लिखे हुए पढनेको मिले। जिससे मेरी जिज्ञासा तीव्र ही होकर एक दिन अनुग्रहके लिये मैनें प्रार्थना की। आपने सोहम् मंत्र दिया, उसका जप करते करते मेरी सब अस्वस्थता चली गयी। प्रपंचमें अब कुछ भी हुआ तो उससे मेरा मन अलिप्तही रहता है। संतत अखंड सोहम् जप चलता है। श्री गजानन महाराज की कृपासे मेरी कष्टमय अवस्था दूर होकर अब मैनें ऐसी आनंदमय स्थिति प्राप्त कर ली है कि जिसका वर्णन नहीं होसकता है।

(३०) **श्री. काशिनाथ भिमाजी सूर्यवंशी, नासिक**:—डिसेंबर १९३८ ई० में एक रोज मैं इनकम टॅक्स ऑफिसके रावसाहेब प्रधानके घर आपके बाल काटनेका काम करनेके लिये गया। मैं जब साहबके बाल कट रहा था तब प्रधान साहबकी समाधि लग गयी। ऐसीही अवस्थामें मैनें बाल काटनेका काम पूरा कर दिया। लेकिन डाढी बनाते आपकी समाधिका भंग होगा इस डरसे मैं आध घंटातक वहांपेही ठहर गया। ख्यालमें आनेपर प्रधान साहबने मुझें पूछा:—"बाल कब काटे? और डाढी क्यों नहीं बनाई?" जिसपर मैनें उत्तर किया:—आपतो प्रेम समाधीमें गढ गये थे। उसमें विघ्न करनेका पाप मुझसें नहीं हुआ।" जिसपर प्रधानसाहबनें प्रेम समाधिका अर्थ पूछा। मैंने श्री. एकनाथजीका लिखा हुआ वाक्य बोल कर बताया, "पंचम मुद्रा लगाकर चित्त एकाग्र करनेवालेको प्रत्यक्ष परमात्मा दिख पडता है।" और बोला:—"जब परमात्म रूप आप उसी प्रीतिमें थे तब मैं ठहर गया।"

फिर आप बोले:—"मैं तुझें श्रीगजानन महाराजके स्थानपर ले जाऊंगा।" इसपर कोई दिनोंके बाद मैं सुबह आपसे मिलनेपर बोले आज शामको ५ बजे श्रीगजानन महाराजके दर्शनके लिये जाएँगे।" मैं फिरसे पांच बजे गया। जब प्रधानसाहब बाहर गये थे। आपकी पत्नीने मुझें कोई कागज दिये और एक घरका पता बताया जहांपर साहब मिल सकते थे। और वहींपर वहीं कागज लेजानेके लिये भूल गये थे। मैं वहां गया तो श्रीगजानन महाराजकाही मकान था। कागज उन्हींको देनेपर महाराजने पूछा "किसके लिये कागज लाये?" मैंने प्रधानसाहबका नाम बतानेपर वे भी वहांपर आ पहुंचे। और महाराजसे बोले, "यह मेरे बाल काटता है।

धार्मिक पुस्तक पठनका इसे प्रेम है। भजनकाभी प्रेम है। इससे आपके दर्शनकेलिये आया है।"

इसपर महाराज चुपही रहे। लेकिन मैं वहांही बैठ गया। थोडीही देरमे मेरी अवस्था समाधि जैसी तन्मय हो गयी। फिर प्रधान साहबकेसाथ घर लौटते समय आपको रास्तेमेंही मेरी अवस्थाका कारण पूछा तो साहब बोले "तूं बडा दैवशाली है।" मैनें घर जाकर पढनेके लिये दासबोध मँगवाया। लेकिन पढ नहीं सका क्योंकि समाधिकीही अवस्थामें तन्मय होकर मेरा ठिकानाही मुझें नहीं रहा था!

दूसरे दिन प्रधानसाहबसे इसी बातका खुलासा पूछा आपने महाराजसेही पूछनेके लिये वहां जानेको कहा क्योंकि खुलासा महाराजही कर सकते हैं ऐसा साहबका मन था। महाराजके पास गया तो बोले कल ग्यारहं बजे अंदाजसे आना। लेकिन घर जाते समय मेरा मन वैसाही तन्मय अवस्थामें गढ गया। फिर दूसरे दिन महाराजके पास गया। महाराजने पूच्छा "क्या होता?" मैंनें कहा, "दर्शन होता" आप बोले "दर्शन हो गया। अब वापस जाओ।" इसपर मैं बोला "आज आपने किस कामके लिये बुलाया था?" महाराज बोले "तुझे क्या होना यही जानने के लिये बुलाया था।" फिर मैं बोला "मुझे आत्मज्ञान होता है।" महाराज बोले "तुझे वह मिलेगा।"

इसपर रोजाना मेरा मन ऐसी समाधिस्थितिमें जा पडा कि जिससे मुझे पूजा भजन कुछ नहीं करने आताथा। फिर अंतर्दृष्टि प्राप्त होकर मुझे हृदयमेंही संपूर्ण श्रीविष्णुमूर्तीका दर्शन होते चला। चारदिनतक देहकी अवस्था अधिकाधिक भूलतेही चला। सात आठ दिन महाराजका दर्शन रोजाना लेता रहा। एकदिन महाराजकी कृपा होकर मुझें उपदेश मिलगया बादमें ऐसे अनुभव आयेः—

दोप्रहरपें 'गुरुशिष्य विज्ञान दीपिका' पढते समय मुझें साधारण सहज समाधीकी स्थिति प्राप्त हुई। फिरमें घरके देवोंकेपास जाकर बैटा। उसी अवस्थामें वहांपे मुझें ऐसा मालूम हुआ कि महाराज मुझें एक पर्वत-प्रदेशमें अंदर लेगये। वहांपर एक बहुत बडा शिवलिंग दिखपडा। थोडी देरसें वहांपर एक पर्वत दिखने लगा। वहां आकाशमेंसे एक

झरना उतरकर जमीनपें आया और फिर ऊपर उडता देखा। फिर महाराज मुझें एक गुंफामें लाया। अंदर जानेपर वहां एक योगिराज बैठे दिखे। और एक समाधि दिखपडी। दर्शन होनेबाद मैं ख्यालपें आया और देखा तो मैं अपने पूजाघरमें मुँहनीचे करके गडा हूँ।

कोई दिनोंकेबाद एक गुरुवार मुझे यह अनुभव आयाः— दोप्रहरके समय मैं एक चादर ओढकर साधारण सुप्त अवस्थामें लेटा था। इतनेमें एक साधु पास आकर मेरे हाथपांव दबाने लगा। मैं मुहंपरसे चादर हटाने लगा तो उसने मुझे वैसा नहीं करने दिया। और वह बोलाः—"तुझे बहुतसे श्रम हुए हैं अतः 'जयगुरु' 'जयगुरु' कहते खाली लेटाही रहजा।" मैं ठीक ठीक जागताथा और बाहरी जगतका मुझे पूरा ज्ञान होता था ऐसी अवस्थामें यह सब अनुभव आया। इस बखत मैं समाधीमें या नीदमें नहीं था। थोडी देरके बाद चादर निकाल कर देखा तो वहांपर कोई भी नहीं था। उसदिन मुझे गांवको जाना था। इस लिये मैंने अपना सामान लिया। महाराजका दर्शन किया और आपसे सब बाते कह दीं। महाराजने पूछाः— क्या तुम्हें निश्चय है कि वह मैं नहीं था? मै बोला "मैं कुछ कह नहीं सकता। मुझे चरण दर्शन हुआ। मुंह नहीं देखा।" महाराज इसपर बोले "तूनें पूर्वजन्ममें योगाभ्यास किया है।"

फिर मैं नासिकसे दिंडोरी तालुकेके "कारंजी" नामक ग्राममें आया। वहाँपर भी मेरा अभ्यास चलताही था। नासिकमें आनेपर समाधि अवस्थामें हमेशा कभी बायें हाथपर, कभी सीधे हाथपर कभी सामने गिर पडने लगा। ध्यानमें श्वासांकों अटक होती अटक होती चली। शरीर जगह छोडकर इधर उधर होने लगा। तोभी अभ्यास बंद नहीं किया। एकदिन मुझें एक बडा वर्तुल दिख पडा।

एक दिन नाभिकमल अंदर खींचता हुआ मालूम पडा और जिससे पेटही दुखने लगा। फिर वहाँपें एक नलिका दिख पडी। श्रीगजानन और उमा महेशोंका दर्शन हुआ। नाभिकमलकेपास श्रीब्रह्माजीका और हृदय-कमलके पास शेषशायी भगवान और पादसंबहव करती हुई लक्ष्मी देखी। भगवानके नाभिसे कमल निकलकर उसमें विराजमान हुए ब्रह्मदेव दिख पडे। पांवतले समुद्र था। शेषके मस्तकमें एक बडा गोल था।

कोई दिनों बाद मुझें मारुती, रामचंद्रजी, ध्रुव, श्रीशंकर और रामदास का दर्शन हुआ। सुषुम्नाद्वार खुल जाकर पीठ और कमर दुखने लगी। ध्यान करते समय मैं एक कमलमें अटक जानेपर महाराजका ख्याल करते ही मैं छूट गया। बहुतसे रंगोंके गोलक और चक्र दिख पडे। एक गोलकमें त्रिकोणाकृति प्रदेश और उसमें रास्ता दिख पडा। तीन चार दिन ऐसा ही दिखता रहा। फिर कंप शुरू हुआ। लेकिन महाराजके ख्यालसे ही बंद भी हुआ। पंधरा दिनके ऐसे अनुभव हैं।

फिर जहां वहां अथांग जल दिख पडा। सिरके पीछे नीचला भाग दुखकर वहांपर अनेक कमल दिखपडे। कोई पूर्णतया खुल रही थीं। कोई कलिकायें थीं। कोई लाल, कोई पीलीं थीं। कभी कभी विस्तृत उद्यान तो कभी कभी पीतवर्ण पर्वत दिख पडे। फिर सुवर्णमय प्रकाश दिख पडा। बादमें सिरमध्यमें नजर जाने लगी। सोऽहम् ध्वनि कभी कानोंमें, कभी हृदयमें, कभी भ्रूमध्यमें होने लगा। वहांपर एक दिन एक छोटासा ॐ भी दिख पडा।

फिर मेरी बिमारीमें महाराज मेरा रक्षण करते दिख पडे थे। बिमारी-मेंही मुझें एक नदी दिखपडी। जिसके पैलतीर महाराजनें मुझें पहुंचाया। पैलीवर भयंकर अरण्य और पत्थर दिखे ऐसे पर्वतोंके गढ़े टालकर पर्वतोंपरसे महाराजने मुझे ऊपर पहुंचाया।

बिमारी साधारण सुधरनेपर मैं 'चांदोरी' गया। वहांपर कभी कभी ध्यान करता था। ठीक सुधार होनेपर नासिक लौटा और महाराजका दर्शन लिया। अभी नीलांकाशमय रंग और भ्रूमध्यमें चक्र दिखता है। शरीर ऊपर खींचा जाता है। सद्गुरु सब अवस्थामें मेरा संरक्षण करते हैं। आपहीके आश्रयपर मैं बच्चेके समान सुख और शांतीसे रहता हूँ।

(३१) श्री० दगडू धाकू दुसाने, सुवर्णकार धूलियाः— धूलियामें महाराजका दर्शन होकर मुझे आपसे राजयोग दीक्षा मिलगयी। मेरी ६३ सालकी उमर है। आंखें मिटकर सोहम् जप शुरू करतेही अंधकारके जगह प्रकाश उत्पन्न हुआ और मुझें श्रीशंकरका दर्शन हुआ। रातको सोते समय एकाएक तोंप जैसा आवाज आया। कोई दिनोंके बाद कानोंके पडदे ऐसे खुलगये। कि जैसे घर के दरवाजे खोले जातें हैं। कोई दिनोंके बाद महा-

राजने मुझे आंतरदृष्टि का वर्णन किया। और दृष्टि श्वास और मन इनकी सहाय्यतासे अभ्यास करनेको कहा। ध्यानसमय शरीरमें नीचे एक बडा नल दिखपडा। जिसमेंसे मैं नीचे उतरता चला। उतरनेपर मुझे वृक्ष, रास्ते, पर्वत, नदियां और एक तालाब दिख पडा। उसीमेंसे कष्टके साथ पैलीपर पहुंचा तो वहांपे एक त्रिकोणाकार कुवाँ देखा। वहीं गणपति दर्शन हुआ। वापस लौटते समय तीन नदियां देखीं। जिनमेंसे दो ज्वालामय और एक संथ दिख पडी। जो संथ थी वही 'सुषुम्ना' है मुझे पीछेसे मालूम हुई।

इसप्रकार कोई दिन जानेपर मनकी सावधानता जाती दिख पडी। सद्गुरुपर दृढ विश्वास रखकर अभ्यास आगे बढाया। अंतर्दृष्टीसे ध्यान समय में एकदिन नाभिप्रदेश पहुंचा। जहांपर श्री विष्णु भगवान शेषशायी और पादसंवाहन करती हुई श्री लक्ष्मी देवी दिखपडी। थोडी देरसे श्रीविष्णु के नाभिकमलमेंसें पंचमुखयुक्त ब्रम्हाजी बाहर आये। कोई दिन अभ्यास बढनेपर हृदयमें लाल रंगका एक कमल दिख पडा। उसमें कभी श्रीविष्णु कभी लक्ष्मी दिखने लगें। अभ्यास बढनेपर मैंने उसी कमलके अंदर प्रवेश किया। वहांपर इंद्रभुवन दिखपडा। इंद्रके दरबारमें इंद्र, चंद्र और नृत्य करते हुए गंधर्व देखे। अनेक देवताओंसे वह दरबार भरा हुआ देखा। आगे-बढकर मुझें चित्रगुप्त, यमराज, अनेक ऋषि, कुबेर, पितर, नवग्रह, ब्रम्हा, विष्णु और शिवाजीका दर्शन हुआ। बादमें नीलाकाशमें नीलवर्ण चक्र दिखा। फिर अभ्यासमें नीलवर्णही दिखता रहा।

कोई दिनोंपर दशावतारोंका दर्शन हुआ। श्रीकृष्ण, बालगोपाल और गोपियोके साथ खेलते देखे। बलरामभी देखा। पानी बरसा। श्रीकृष्णजीनें जमुनामें कूदकर कालियामर्दन करते देखा। और बाहर आनेपर मित्रोंको आनंद मनाते देखा। फिर हृदयकमलमें श्रीविष्णुदर्शन हुवा और देहभान जाते चला। कंठ स्थानपें विशुद्ध चक्रमें श्रीगुरुदत्तदेवजीका दर्शन हुआ। और वहॉपर मन एकाग्रचित्त होगया। और अंदर जाते श्रीगजानन महाराज और श्रीगुरुदत्तदेव सामने सामने दिख पडे। सोहम् जप अंदर चलताही था। गजानन महाराज एक दिन बोले:—"अंदर अखंड जप करते हुए प्रापंचिक कार्य करते रहनेमें कुछ हर्ज नहीं है।" बादमें मैं पद्मासन जमाकर ध्यान

करता रहा। प्रथम नासिकाग्र दृष्टि करनेपर अंधकार दिखता रहा। लेकिन अंदर नीचे होते ही प्रातः प्रकाश दिख पडा। फिर चंद्रमा और फिर सुवर्ण-प्रकाशमें ॐ अक्षर दिखा। और भी नीचे जानेका यत्न करते समय मैं देहभान भूल गया।

आगे अभ्यास करते मुझे सहस्रदलकमल दिख पडा। उसीके चारों ओर मयूरपिच्छ दिखे। एक अलग ही रंगवाला चक्षु दिखा। फिर विचार-प्रवाह बंद होकर मैं खुदको भूल गया।

(३२) **श्री. चौकर—बडोदाः**—आज्ञानुसार जप करता हूं। बहुतसे चमत्कार हुए। श्रीगजानन महाराजका स्थूल रूपमें भी बहुत दफे दर्शन हुआ।

एक पौर्णिमासी समय रातको नींद न आनेपर जप करता लेटा था। जब चारों ओर सुगंध फैल गयी। इसके कारण के विचारमेंही अंधेरी छा गयी। उसीमें लाल-सफेद मिश्र रंग दिख पडा। थोडीही देरमें शस्त्रधारी कोई प्राणी मुझपें दौड आये। जब एक लठ लेके अंगारके माफिक आंखे-वाले महाराज दिख पडे। लठभी जैसा अंगारकाही बना हुआ था। आपको देखते वे भयंकर प्राणी भाग गये। कोई उरसे गिरभी पडे। उनके जानेपर आप मुझसे पूछते रहेः—"तुम इतनी भूतदया क्यों करते हो?" मैनें जवाब किया "आपहीनें मुझें ऐसा दयामय होनेका रास्ता बताया है।" जिसपर महाराज जोरसे हास्य करके चले गये। मेरा निश्चय है कि मैं इस समय सोता नहीं रहा था। यह स्वप्न नहीं था।

एक दिन ऑफिसमें मै अकेलाही बैठा था। एकाग्रचित्तसे जप करना शुरू किया। चारो और सुगंध फैलकर बाह्य जगत्का भान चले गया। आप मेरे पास आकर मुझें एक रम्य स्थानपर ले गये। जहांपर श्रीकृष्ण लीला हो रही थी। उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता है। अंतमें आप बोलेः—"अजी दादासाहब, अब आप प्रापंचिक बने हैं।" सुनते ही मैं ख्यालमें आया और मेरा ऑफिस मुझ दिखने लगा।

चैत्र शुद्ध प्रतिपदाके दिन रातको मुझें नींद न आनेपर मंत्र जप करता था। जब मुझे नीलकंठेश्वरकेपास काला हनुमान मंदिर दिखने लगा। लेकिन मुझें हनुमानकी जगह आपकीहि पंगु मूर्ति दिख पडी। आपकी पूजा

करके मैं प्रदक्षिणा करने लगा। उस समय कभी मूर्तीके जगहपें आप और कभी हनुमान दिखे। मेरी प्रदक्षिणाएँ चलीही थी। जब मेरे मित्र श्री. खर्शीकर और उनकी कन्या पूजासाहित्य लेकर वहांपे आयीं देखी। उन्होंने भी आपकीही पूजा की। मेरी इस समय भी प्रदक्षिणाएँ ही चलीं थीं। पूजा होनेपर लडकी भी साथ साथ प्रदक्षिणाएँ करती रहीं। थोडीही देरमें मूर्तीके पास एक वानरका बच्चा प्रकट हुआ। जो कंधेपर कूदता रहा। हम सब हँसतेही थे। थोडी देरके बाद दृश्य मिटकर मुझें ख्याल आया कि मैं तो घरपेंही लेटा हूँ।

दूसरोंको यह सब भ्रम मालूम होगा। मुझें वह मूर्त भी समझेगा। अर्थ तो मैं भी नहीं कर सकता हूँ। आपकी कृपा चाहता हूँ।

(३३) **श्री. जी. डी. मांडवगणे** और सौ. **गोदावरीबाई मांडवगणे**, नासिकः—श्री. मांडवगणे पेन्शनर पोलिस सब इन्स्पेक्टर हैं। एक मित्रसे पता चलनेपर पतिपत्नी महाराजके दर्शनके लिये गयीं।

वे लिखतें हैंः—दर्शनके बाद आठ दस दिनपर दोनों पतिपत्निको २५ जुलै १९४० इ. रोज गुरुवार सुबह आठ बजे जप और अनुग्रह प्राप्त हुआ। आठ ही दिनके बाद पत्नीको कुछ भी दृश्य न दिखते समाधि अवस्था प्राप्त होती चली। सोहऽम् जपकी इच्छा होतेही बाह्य जगत् संपूर्ण भूलकर वह समाधि अवस्था पाती है। आध घंटेके ऊपर ऐसी अवस्था रहती है।

मुझे ध्यानसमयमें लहरें, शुभ्रमेघ, आकाश, ज्वाला, सुदर्शन इत्यादि दिख पडता है। महाराजके ताकदका मुझें पूरा विश्वास है। करके अतः आपका दिया हुआ मंत्र जप करता हूँ।

पोलिसका नौकर होनेसे संतोंके ऊपर मेरा विश्वास एकाएक जमता नहीं था। महाराजका दर्शन होनेपर मेरा दृष्टिमें ही फर्क हो गया। फिर प्रत्यक्ष अनुभवोंसे संशयविच्छेदन होगया। महाराजके साधुत्वका स्पष्ट प्रत्यय आया। दुनियामें आप जैसे संत क्वचित्ही मिलतें हैं।

(३४) **वैद्य कुडूकर—नासिक और संगमनेरः**—१९४० ई. के एप्रिल मासमें महाराजका दर्शन होनेपर आपसे पहले संभाषण हुआः—

महाराजः—आपकी तारीफ ?

मैं:—मेरा नाम कृष्णराव कुर्ड्डेकर। मैं स्वहित और परहितके लिये वैद्यकी करता हूँ।

महाराज:—आपसे कौन बोला कि मैं महाराज हूं?

मैं:— पंडित पेन्शनर मामलतदारसे मुझे पहले आपके बारेमें हकीकत समझी। दर्शनके लिये आना चाहता था। तो भी आजतक नहीं आना हुआ। फिर मुझे मधुकर चिटणीस से मुलाकात हुई। चिटणीस योगाभ्यास करते हैं यह मुझे मालूम था। करके उनसे आपके बारेमें जो कुछ मालूम हुआ उससे मुझे अधिक आनंद प्राप्त हुआ! शायद मुझपे भी आपकी कृपा होगी। इस समझसे मैं आपके पास आया हूं।

महाराज:—मैं तो गरीब पंगु हूं। आपने तो बहुत कुछ योगाभ्यास किया है। और प्रगति भी की है। तुम्हें बडे साधूका अनुग्रह भी मिला है। अतः आपके दर्शनसे मैं खुदकोही बडा, भाग्यवान् समझता हूं। खैर आप नासिकमें कितने दिन रहोगे?

मैं:—दो दिन यहां रहूँगा। फिर संगमनेर जाउँगा जहां मेरा दवाखाना है। पंधरह दिनपर मैं हमेशा नासिक आता हूं। मेरे बचपनसे मेरे जीवनकी बातें सारांशमें मैं आपको लिख दूँगा।

संभाषणके समय महाराजके पास चार पांच मित्र बैठे थे। जिनमेंसे एक नासिक पोलिस ट्रेनिंग स्कूलके लॉ लेक्चरर श्री. निरोखेकर भी थे। फिर मैंने हठयोगका अभ्यास तीन सालतक करनेपर भीतिकी भावनासे कैसा छोड दिया, और मार्गदर्शनके लिये संतदर्शन कहाँतक किया वगैरे बातें कहकर चरणोंपे मस्तक रखा और घर लौट आया।

तीन दिनके बाद महाराजकेही आसपास रहनेवाले कोई मित्रोंको मिलने गया था। जब महाराजका दर्शन लेनेकी कल्पना नहीं थी। और आपके स्थानसे विरुद्ध दिशामेंही बहुत दूरतक चला पडा था। तोभी मुझें स्पष्ट अनुभव आया कि मेरे पाँव मुझे पीछेही खीच रहें हैं। इसी अवस्थामें मैं पीछे थोडा चलभी दिया। और दो तीन मिनटके बाद मुझे महाराज का स्मरण आया। सुबह साधारण नऊ बजगये थे जब मैंने महाराजके घर पहुंचकर चरणोंपें मस्तक रखा। कारण पूछनेपर दर्शनके लिये आयाहूँ ऐसा बोलदिया।

महाराज बोलेः—तो फिर यहां आनेका कुछ विशिष्ट हेतु नहीं था ?

मैं:—हेतु है ही। जब आपकीतरफ खींचाही गया हूँ तब कुछ विशिष्ट हेतु होगा और वह हेतुसाधन आपसेही हो सकता है।

महाराजः—मैं कोई बाबा नहीं हूँ। या हठ योगीभी नहीं हूँ। आपके मनमें क्या विचार है यह जाननेकीभी मुझें शक्ति नहीं है। आपका दर्शन हुआ यह मैं अपना सद्भाग्य समझता हूँ। इसमें कुछ अतिशयोक्ति है ऐसा बिलकुल नहीं मानना।

मैं:—बहुत यत्नकरके मैंतो अब थक गया हूँ। मेरे मनकी अस्वस्थता अबतक कम नहीं हुई है। कईएकसाल हुए मैंने योगाभ्यास छोड दिया है। अब मुझे योग्य मार्ग बताना आपहीपर निर्भर है।

महाराजः—तो ठीक है। मैं गुरु कृपाकी मददसे कुछ कह सकूंगा हूं।

फिर महाराजने मुझें सिद्ध पद्मासनमें बिठाया। महाराजके कहनेपर सोहम मंत्र जप करतेही मेरा मन अंतर्मुख हो कर पूर्णतया शांत हो गया। हठ योगाभ्यास से पहले होनेवाली सब तकलीफ नष्ट होगीं। पहले श्वास इधर उधर जाता था वह अब एकाएक सुषुम्ना नाडीमें चलकर ब्रह्मरंध्रतक पहुंचा। जबसे मुझें कुछ तकलीफ न होते बहुत कुछ आनंदकी प्राप्ति होती है।

अब आगे मेरे पूर्व जीवनमें काम हुए योगाभ्यासका सारांश देकर फिर महाराजके अनुग्रहके बाद होती चली प्रगतिका वर्णन करूंगा। मेरा जन्म एक सुखवस्तु ब्राम्हण कुलमें हुआ। बचपनसे मुझें उच्चशिक्षण, मर्दानी खेल और धार्मिक—अध्यात्मिक विषयका लेखन-वाचन करना आनंद दायक मालूम होता था। जनसेवा, राष्ट्रीय आंदोलन, वाचनालय, धार्मिक संस्थाएँ, राष्ट्रीय अवतारी संतपुरुषोंके उत्सव इन सब बातोमें मैं कार्य करता रहा हूँ। अभ्यास और खुले मैदानीं खेलोमें हमेशा आगे रहनेकी मेरी महत्वाकांक्षा थी। और बहुत दफे वह पूरीभी होती रही। सोलहसालके अंदाज ऐसे विचार आनेलगे कि मानव जीवनका साधारण हेतु क्या होगा ? लोकसेवा करते समय अडचनें क्यों आतीं हैं ? इत्यादि; बादमें मेरा मत ऐसाभी बनगया कि अध्यात्मिक उन्नतीके सिवाय इन बातोमें यश नहीं आएगा। अतः उसका मार्ग संशोधन शुरू किया।

तेरहवें सालमेंही शादी होगयी थी। और अंदाज सतरह सालकी उमरमेंही प्रापंचिक जिम्मेदारीका बोझा मुझपर आ पडा। अध्यात्मिक वाचन, धर्मचर्चा श्रवण, सत्संग, विधि-पालन और योगाभ्यासमें ही मेरा मन ऐसा गढ जाने लगा कि मुझें लोकव्यवहारकी फिक्रही नहीं रही। इसपरसे मन पलटकर उद्विग्न होगया और सद्गुरुदर्शनकेलिये तीव्र भावनासे मैं ईश्वर प्रार्थना करता रहा। प्रपंच छोडकर साधु दर्शन के लिये तीर्थाटन करनेके वास्ते अठारह सालकी उमरमेंही मैंनें घर छोडा। उच्च शिक्षणका मार्ग छूट गया।

आठ सालतक तीर्थाटन, जपजाप्य और योगाभ्यास करता रहा था। जब केशव वामन मोकाशी नामक हठयोगीका मुझपर अनुग्रह हुआ। आपके उपदेशसे मैंनें १९१२ से १५ तक पूर्णतया हठयोग साधनमेंही लगाये। तीन महिनोंमें आहार कमती करता हुआ छः मास सिर्फ एक शेर दूधपर रहा। फिर दूध छोडकर तीन महनोंतक केवल अंगूरोका शरबतही लेता रहा। फिर १०८ दिनपर खाली जलपान परही रहा। इससें शरीर खाली ४८ पौंड रहा और अस्थिपंजर देह हुआ। खून कम होनेसे देहका रंग फीका होगया लेकिन वह शुद्ध हो गया। हाथ ऊपर करनेसे खून कंधेतक आता दिखता था। और नीचे करनेपर करतल लाल होकर उनमेंसे खून उमड आता है ऐसा मालूम होते चला। जब मैं इंदोर था। वहां के डॉ. भांडारकर सिविल सर्जननें परीक्षा करके अभिप्राय दिया कि हृदयकी धडकन मिनिटमें ४०–४२ होकर भी वे जोरदार और समान हैं। जोर तो लढवय्ये सिपाहीके हृदयकी धडकन समानही है। हृदय और फंफेडेका कार्य बिलकुल सुव्यवस्थित चला है।" मैं तो आनंदमें रहकर जरूरी श्रम करता था। अन्न छोडनेसे मेरे शरीरपर कुछ खराब असर नहीं हुआ। योगके अभ्यासमें यह उदाहरण दुर्लभसाही मालूम होता है।

सिद्धासन, पद्मासन, या बद्ध पद्मासन जमाकर एकेक पर तीन तीन घंटोंतक बैठकर, चौवीस घंटेमें अठराह घंटे मेरे आसनमें बैठनेमें ही जाते थे। मुझें विश्रांतिकी जरूरत नहीं पडती थी। नींद बिलकुल न आते भी कभी बीमार हुआ नहीं था उत्साह कम नहीं होता था। मैं पूर्ण आनंद और उल्हासमेंही रहता था। मेरा स्थूल शरीर कृश बना था। और

रक्तमांस शुष्क हो गया था । तोभी ज्ञानेंद्रिय शक्तीकी कुशाग्रता बढती रही थी । मेरी आंखोंमें ऐसी ताकद आयी कि कोई तरुण अपनी दृष्टीसे जितनी दूरी परकी चीज भी देख सकता है उससे दुगने दूरीपरकी चीज मैं देख सकता था । श्रवणेंद्रियोंकी ताकद पहले कम थी । वह भी इतनी बढ गयी कि रातको जब मैं ब्लँकेट ओढकर लेटता रहताथा तब मुझें आध फर्लांग पर कीं बातें बराबर सुनाई देती थीं । रसनेंद्रिय इतना तीक्ष्ण बना था कि पानी भी मुझें मधुरसा मालूम होता था । घ्राणेंद्रिय शक्ति ऐसी बढी कि तीन घरोंके पैलीवर के घरमें जो कुछ चीज पडी होगी उसका ज्ञान मुझे होता था । शरीर ऐसा बन गया था कि पीनेके पानीमें एक बुंद गुलाबका अत्तर डालने-पर पिशाब पूरी सुगंधमय बन जाती थी । त्वचा खींचने पर बहुतसी रबरके माफिक खींची जाती थी और उसमेसे पैलावरकी चीजें दिख पडती थी । योगशास्त्रमें लिखे हुए कई एक अनुभव भी मुझे आये ।

साढे तीन महनोंतक पानी पर ही था तब झाडा न होते खाली पिशाब और वायूका उत्सारण होता था । अत्यानंद शरीर शुद्धि, तारे, सूर्य, चंद्र, बिजली, रंग इत्यादिके अनुभव मिलते रहे । शरीर हलका तो हुआ ही था । तोभी वह आसन जमानेके बाद फूट दो फूटकी उंचाईपर निराधार रह जाता था । कभी ऊपर, नीचे आता जाता था । सोनेपर भी पूरा शरीर जमीन छोडकर ऊपर उठता था ।

बादमें मैंने फिरसे सामान्य जीवनमें आनेका विचार किया । और दूध लेना शुरू किया । एक साल दूध लेनेपर चावल शुरू किये । जब मेरा तौल ९६ पौंड था । मेरे गुरु श्री. मोकाशीके हुकुमसे मैंने आयुर्वेदका अभ्यास किया और १९१७ ई. से वैद्यकीका धंधा शुरू किया । उसका कारण इतना ही था कि मेरे गुरुके धंधे को जोड और मदत । जिससे आपकी सेवा हो । और मेराभी चरितार्थ हो । आध्यात्मिक प्रगतीकी इच्छा अतृप्त नहीं रहनेके उद्देशसे योगी और साधुओंकी खोजमें मैंने बहुत तीर्थ यात्रा और प्रवास किया । लेकिन जिसके पास कुछ ना कुछ ढोंग धत्तूर नहीं है ऐसा एकभी साधु नहीं मिला । उच्च दर्जेवाला क्वचित् मिला ।

श्री. वासुदेवानंद सरस्वतिजी जो महाराष्ट्रमें ख्यातनाम है उनका मुझें सहवास, मदत और मार्गदर्शकत्व मिला । नाशिवंत देह छोडनेपर भी

आप मुझें मदद देते ही रहे हैं। **श्रीगजानन महाराज**से मुझें जो मदद हुई उसके लियेभी आपने पसंती दी है। और कोई संतोंसेभी मुझें सूचनाएं मिल गयीं। लेकिन ध्येय साधनसे मैं दूरही हूं ऐसा मेरा मन था। उसका समाधान श्रीगजानन महाराजके अनुग्रहके बाद ही हुआ।

फिर एक दिन मुध न रहते ही मैं महाराजके पास कैसा गया और आपने अनुग्रह कैसा किया उसका वर्णन पहले ही किया है। आप ध्यानके बारेमें स्पष्टीकरण करते थे तब कोठीमें चारों और सुगंध फैल रही थी। साधुसान्निध्यका मुझें मनमेंही पूरा विश्वास आता था। उसी रातको श्री. वासुदेवानंद सरस्वतीजीका मुझें ध्यानमें दर्शन हुआ और आपकाभी शुभाशिर्वाद मिला।

दूसरे दिन पूर्ण जागृतीमें अरुणोदय समयमें मुझें श्रीविष्णूकी नील वर्णमय मूर्ति दिखपडी। और मेरा मन ध्यानमें पूरा गढ गया। मूर्ति प्रकाशमय थी। बादमें मुझें घंटानाद सुनाई देकर एकाग्रता बढ गयी। कभी कभी चन्द्रमंडल और तारे दिखते हैं। ब्रह्मरंध्रमें एक नील बिंदुका दर्शन हुआ। वह बहुत कालतक स्थिर रहा। कभी कभी बहुतसे दृश्योंका सिनेमाके समान चित्रपटभी दिख पडा। ता. २६ मे १९४० इ० तकके अनुभव ऐसें हैं।

(३५) **रा. हणमंत पी. उमर्जी, पूना**:—श्री. बी. एम्. गडकरी पूनेसे लिखते हैं:—सौ. सुंदराबाईको तो चारही दिनोंमें उच्च अनुभव आये यह सुनकर मुझें बहुत कुछ समाधान और आनंद हुआ। ऐसे श्रेष्ठ शिष्य और उन्हें अनुभव देने वाले महान् सद्गुरु कैसे सामर्थ्यशाली होंगे उसकी कल्पनाही करनी चाहिये। श्री. उमर्जी बोलते हैं कि महाराजकी चिट्ठी आतेही कुंडलिनीका स्फुरण होता है। दो दिनके पहले उन्हें प्रभात समयमें बहुत दिव्य तेजस्वी प्रकाश दिखकर उसमें तेजोमय ॐ दिख पडा। आपको यह बात लिखकर भेजनेको श्री. उमर्जीने कहा है।

(३६) **श्री. गणेश रंगनाथ आंबेकर–बारामती**:—ता. २६ ऑक्टोबर १९४२ इ० रोज मुझें अनुग्रह हुआ दो तीन दिनोंपरही रातको नासिक मुकाममेंही मंजुल कर्णमधुर घंटानाद सुनाई पडा। बीचमें वह बंद होकर पूनेमें लौट आनेपर फिरसे शुरू हुआ। नौबदकी आवाजभी आती

थी। पूनेमें आनेके दूसरेही दिन आपने दर्शन देकर सबसे सीधा काम मुझे बताया:—

"पद्मासन या कुछभी आसनसे वास्ता नहीं है। चक्रभेदन भी नहीं होना। कुछ नियमकाभी जरूर नहीं। एकदम सहस्रदलपें ध्यान जमा देना।"

मेरे जैसे मंदबुद्धि शिष्यपर ऐसी दया होनेपर मेरा हृदय ऐसा उमड आया और ऐसे आनंदाश्रु बहते रहे कि मेरा कुर्ता उससे गीला होगया। अनंत हस्तोंसें कमलावर देता रहा तो दो हाथोंसे मनुष्य किवना लेगा! एक दिवालीके दिन चिट्ठी आयी कि आप तो कुछ खा पी नहीं सकते हैं। और हम तो इधर चैन करते हैं। यह देखकरभी मुझें ऐसे अश्रु आये जिससे मेरे कपडे फिरसे भीग गये।

अभी **उपासनी महाराजका** चरित्र पढ रहा हूं। दर्शनोंमें मुझें वास्ता नहीं हैं। आपहीकी प्रेरणासे चरित्र पढते एक स्थान पर **साईबाबा** बोलते हैं:—"अब तू और मैं एक हूं। तेरे उद्धारकी जिम्मेदारी मैंने ली है। तू कुछभी गडबड मत कर।" आपनेभी मुझें वैसाही कहा है। इससे मुझें बहुत मजा मालूम हुई। आप सद्गुरुकी लीला अगाध है। साईबाबा और भी बोलते थे:—"योंगकी तपश्चर्या होतीही नहीं। मेरा रास्ता औरही है।" आपका कहना है कि "नाथपंथका बाणा सच तो। सबदुनियासें न्यारा है।" दोनोंमें कितनी समानता है।

आपके चरणों परकी भक्ति बढते रहिए। फिर मुझें दर्शन, ज्ञान, मुक्ति इत्यादि बातोंका साधन सुलभही होगा ऐसा मेरा विश्वास है। और कुछ दर्शन न हो लेकिन आपका रोजाना दर्शन हुआ तो मुझें असीम आनंद होगा। लेकिन यहभी इच्छा आपको कहनेवाला मैं कौन हूँ। आप चाहे जैसा कीजियेगा।

(३७) श्री. कृष्णराव पाठारे सॉलिसिटर बंबई और आपकी पत्नी साध्वी राधाबाई के अनुभव:—आपके सत्संगमें जो कोई दिन आनंदके साथ बिताये उनके विचारसेही मन फिरफिरसे आनंदसे भर जाता है। मेरी पत्नीको ता० २६।५।४३ रोज ध्यान करते समय श्रीगणेशजीका दर्शन हुआ। और लाल रंग दिख पडा। दूसरे भी दिन ऐसाही हुआ। जगमग जगमग करता हुआ सूर्य और तरहतरहके रंग दिखे।

मुझें भी ध्यानके समय शुभ्र प्रकाश दिखता है । कु. रमाकांतका ध्यान और अनुभव पहलेके माफिक है ।

एक महीनेके बाद मेरी पत्नीको ध्यानसमयमें एक दक्षिण हस्त प्रकाशमय दिखा; जिसमें एक दक्षिण मुखवाला शंख था । उसमें सूर्य बिंबमेंही बदलते हुए रंग दीखते हैं ।

आपके बताये हुए भविष्य के अनुसार कु० मधुकरने इंटर आर्टस पास किया । रिझल्टके पहली रातको उसकी माँके कमरेमें आपने दर्शन दे बताया था वह पास होगा । आपकी यह कृपा देखकर हृदय प्रेमसें उमड आता है ।

(३८) **श्री० आनंदीबाई ठकार—कोल्हापूरः**—आपके लडके के लिखे दिये हुए अनुभव ऐसे हैः—छः सात सालसे माताजीको सद्गुरुकी भेटके लिये बहुत तीव्र इच्छा होती थी । मुझें यहाँपर नौकरी मिलनेपर वह यहाँ आगया । यहाँपर आधमासतक रहनेपर वह मेरी बडी बहनके साथ रहने गयी । वहाँपर उसे नासिक जानेकी तीव्र इच्छा प्राप्त हुई । वहाँ आने-पर मैनें श्रीगजानन महाराजके अनुग्रहकी बात कह दी । उसकी इच्छानुसार मैने उसे भी महाराजका दर्शन करवाया । माताजीकी तीव्र इच्छा देखकर दूसरे ही दिन "सोहम्" मंत्रका उसपर अनुग्रह हुआ । दर्शन लेते ही उससे आनंद-शांति लाभ हुआ । मंत्र ध्यानसे वह बढताही रहा । सद्गुरु उसे बोलेः—तुम्हारा सब जन्मोंका कार्य अब होगया । इसी मंत्रका ध्यान करती रहो ।" दो तीन दिनपर ही माताजीको ध्यानके समय श्रीदत्त गुरुदेवजीका दिव्य प्रकाशमय दर्शन हुआ । दर्शनके आनंदमेंही थी । जब देवता रूप पलटकर श्रीजगदेव माताका दर्शन हुआ । जागते समय हमेशा प्रकाश सामने दिखता है । सुवर्ण तेज युक्त नाग का भी दर्शन होता है ।

(३९) **श्री. शंकरराव दप्तरदार उर्फ काका वैद्य—मु० खेड जि० पूनाः**—सद्गुरुचरणोंका दर्शन होनेसे मेरा पूरा जन्म सफल हुआ । आपके आज्ञानुसार संध्यावंदन शाममुबह करता रहा हूँ । अनुग्रहके बाद १०८ घंटोपर रातको बिस्तरेपरही लेटे हुए 'सोहम्' मंत्रका जप हृदयमें आवाज देते लगा । सुनते सुनते समाधिमें प्रवेश हुआ । उसी रात

नींद खुलते समय प्रभातसमयमें सिंहासनाधिष्ठित श्रीविठ्ठलमूर्ति दिव्य दर्शन देकर गयी। वह जरा बायीं ओर झुक गयी थी। मैं इसका ही विचार कर रहा था जब आवाज आयी " भूमीको ठीक बिठाओ। " मैंने मूर्तिके कंधोंपर हाथ रखकर ऐसी सुंदर आसनमें बैठ गयी कि कभी न टेढी रहेगी। प्रकाश दिव्य था। इतनेमें प्रभातके पांच बजे। वर्षप्रतिपदाके दिन सद्गुरुकी शांत प्रेममय मूर्तिभी दिख पडी। आपसे पूछकर अनुज्ञा लेनेपर मैंने साष्टांग दंडवत करके उसी अवस्थामें सद्गुरुचरण मेरे मस्तकमें रख दिये। इतनेमें पांच बजे।

सद्गुरु दर्शनपर आधमासमें ही मेरा तुफान चित्त शांत होगया। साधन चतुष्टयका मुझमें पूरा अभाव होकर भी मेरे तुफान चित्तपर मेरा काबू कैसा जम बैठा इसका मुझे बहुत आश्चर्य मालूम होता है। सद्गुरुकृपा ही इसका कारण है। इससे मेरी श्रद्धा आपहीसे बढती है। सद्गुरुकृपासे ऐसे लाभ होते हैं। शास्त्रवचन है कि ऐसी बातें प्रकट नहीं करना। तो भी महाराजका अभय है। अतः शास्त्रमर्यादा भी हम उल्लंघन कर सकतें हैं। कुछ भी सेवा न करते मुझे सद्गुरुने शांतिप्रदान की। मुझे नहीं समझमें आता है कि यह उपकार कैसे फिट जाएगे। ध्यान करनेमें भी द्वैत होता है। और सद्गुरु तो अद्वैत है। शिष्यके साथ एक ही हो जाते हैं।

आपकी चिट्ठी मिलनेपर भेंट जैसा आनंद होता है। पहले ध्यान-समयमें मेरा ख्याल दृश्योंके और नादोंके साथ पलटता था। अब वह नहीं होता है। पहले जो नाद बडी आवाजमें आते थे वे अब सूक्ष्म होगयें हैं। चित्त स्थिर करनेका उपाय मेरे समझमें जब ठीक नहीं आया था तब मैंने " कपिल गीतामें " पढ लिया। उसीमें बताया हुआ उपाय काममें लानेका यत्न करता हूँ। पीतवर्ण शिखायुक्त बिंदूके मध्यमें श्वेतवर्ण, सुलक्षण, सोऽहम् बीज श्रीराम देखनेका और श्रीरामके जगह श्रीसद्गुरुदर्शन करनेका यत्न करता हूं। ध्यानसमयमें जलद या मंद वेगसे जप भी चलता है। ध्यान जप नहीं करता हूं तब जप जलदीसे होता है। सद्गुरु रास्ता बताएँगे इस कल्पनासे सबकुछ अवस्थाका निवेदन किया है। आशिर्वादकी अखंड कृपा चाहता हूं।

(४०) **श्री. मंगेश उल्हाळ, बंबई:**—ता. २३ ऑक्टोबर १९४१ इ० रोज मुझें श्रीगजानन महाराजसे अनुग्रह प्राप्त हुआ। मेरी लडकीकी मृत्यु और नाम हारके दुःखोंसे मेरा मन त्रस्त हुआ था। इससे मन अध्यात्म विषयके तरफ झुकनेपर एक दिन " नाम जपका महत्व " नामक श्री. कामतकी लिखी हुई एक किताब मुझें दिख पडी। वह मोल ली और " श्रीराम जयराम जयजय राम " जप शुरू किया। रोजाना जपका हिसाब लिखकर रखता था। पचास लाख जपसंख्या १९४१ ऑक्टोबर तक पूरी कर दी। जब **स्वामी विवेकानंदजीके** एक किताबमें पढा कि " सद्गुरु न करते ऐसा कितनाभी जप हुआ तो लाभ नही है। " इससे मेरा चित्त विचलित होकर मैं सद्गुरुकी खोजमें चला। ऐसी अवस्थामें मैं दीपावलिके दिनोंमें नासिक पहुंचा और मेरे रिश्तेदार श्री० माविनकुर्वे के घर आकर ठहराथा। वहाँपर " लाइट ऑन-दि पाथ ऑफ सेल्फरियलिझेशन " नामक श्रीगजानन महाराजके बारेमें लिखी हुवी एक किताब मिली जो मैंने दोही दिनमें पूरी पढ ली। उसी शामको इस महापुरुष का दर्शन करनेकी तीव्र इच्छा मुझें प्राप्त हुई। आपकी मुलाकत कर देनेके लिये मैंने अपने रिश्तेदारसे बिनती की। साथही महाराजके पास पहुंचनेपर मैंने अनुग्रहकी याचना की। आपने वह शीघ्रही मानली। और दूसरे दिन आनेका हुकुम हुआ। उसदिन अनुग्रह होतेही मुझें चित्तशांति प्राप्त हो गयी। आध घंटेतक मधुर-शांत भावनासे मैं भर जैसा गया था। उसी रात को बंबई चला आया और रोजाना आध घंटेतक ध्यानका अभ्यास करता रहा। साधारणतः एक मासके अंदरही मेरी देहमें जपका आवाज आते चला। चलते फिरते भी सोहम् आवाज मुझें सुनाई देने लगा। बादमें दृश्योंका अनुभव आया जो आगे लिखा है:—

(१) भ्रूमध्यमें चित्त एकाग्र करनेपर धवल प्रकाशमय ज्योति दिख पडती है। कभी यह प्रकाश विद्युत्मय और कभी मौक्तिकमय शुभ्र होती है। पार्श्वभूमि नीलवर्ण होती है। कभी कभी निरभ्र आकाशमें चंद्रमा और तारका दर्शन होता है।

(२) एक दिन एक कॉलेजके मित्रके घर बैठा था। जब कोई कॉलेजके लडके दूरवीक्षण यंत्रमेंसे 'गुरु'का ग्रह देख रहे थे। उसमेंसे मैंने भी चार

चांद और गुरु देखा। फिर 'शनि' देखनेका यत्न किया। लेकिन वह बिलकुल सिरके ऊपर था और यंत्र हम लोक वहांपर नहीं लगा सकनेसे दर्शन नहीं हुआ। दूसरे दिनपर ध्यान समयके आत्मदृश्यमेंही मुझे शनि दिख पडा। आधे रुपियाके समान वह छोटा था। वह गोलाकार तेजस्वी वर्तुलके अंदर था। थोडेही क्षणमें वह अदृश्य हुआ।

(३) ता. १०-१२-४१ से आठ दिन तक रोजाना ध्यानके समय मुझे ॐ तेजस्वी रूपमें दिखता रहा।

(४) एक समय रातके ध्यानमें मालप्रदेशके बिलकुल ऊपरी भागमें तेजोमय प्रकाश दिखता रहा। मुझे शक आया कि वह प्रकाश सामनेके घरमेंसे आता होगा। लेकिन उसी समय महायुद्धके प्रयोग के लिये बंबईकी सब बत्तियां पंधरह मिनटके लिये बुझादी गयीं। और मुझे प्रकाशकी सत्यता दिखपडी। मेरी आंखोंपर पट्टा बांधकर मैंने ध्यान किया। मुझे मस्तकमें दिखनेवाला प्रकाश अब तो गॅसबत्तीके माफिक बनकर उसमेंसे किरणोंके स्रोत आगे फैलते दिख पडे। इससे जो आनंदलाभ हुआ उसमें ही मेरा मन सद्गुरुके लिये प्रगट होती कृतज्ञतासे भर आया।

(५) ता. २१-१२-४१ इ. रोज एक मित्रके घर ध्यान करनेपर मुझे सूंड हिलाता हुआ श्रीगजानन और वीणा बजाती हुई श्री सरस्वती देवीका दर्शन हुआ।

(६) एक दफे रेलमेंसे बेलगॉव जाते समय मुझे सामने एक भला जंगी क्लॉक टॉवर दिखा। उसमें ग्यारह बजकर बीस मिनट हुए दिख पडे। मेरे जेबकी घडी निकालकर देखी तो टाइम उतना ही हुआ था।

(७) ता. ११-१-४२ इ. रोज ताजमहल और मिसरके स्फिंक्सका दर्शन हुआ। एक दिन ध्यानमें नदियां, पर्वत, नाव और मिलिटरी परेड दिख पडी।

(८) फेब्रुआरीसे पृष्ठवंशमें कुंडलिनीका संचालन होता मालूम पडा। ध्यानमें तेजःपुंज कृष्णसर्प दिख पडता है। ५-२-४२ ई. रोज भ्रूमध्यमें गोलाकार घूमता हुआ तेजोमय सूरज दिख पडा।

(९) ध्यानमें कभी कभी मेराही चेहरा दिखता है। जैसा मैं आइनेमें

देखता हूँ। ११-२-४२ इ. रोज ध्यानमें शांत, सुखदायी, संवेदनकी आनंदलहरियोंमें आध घंटातक मग्न हुआ।

(१०) ता. २३-३-४२ इ. रोज ध्यानमें चार दलोंका (सोहम् अक्षर युक्त) कमल दिखा। एक दफे आठ दलोंका कमल गोल गोल चक्कर लेता हुआ दिखा। और एक गुलाबी त्रिकोण भी दिखाई दिया।

(११) फिर मुझें ध्यानमें दो आंखें दिखने लगीं। कभी कभी एकही दिखकर उसमेंसे नीलप्रकाश निकल आता है। सद्गुरुकी कृपादृष्टि है।

(१२) गुरुपौर्णिमासीके दिन नासिकसे बंबई चलाथा। पास तीसरे दर्जेका तिकिट था। लेकिन भीड होनेसे जगह नहीं मिली और मैं सेकंड क्लासमें बैठ गया। जब एक तिकिट इन्स्पेक्टर चलती हुई गाडीमें आया और बिनापूछे अंदर बैठे होगे उन्हें जुर्माना करनेकी धमकी देने लगा। मैंने गार्डकी परवानगी ली थी। तो भी जादा चार्जकोलिये मेरे पास पैसा नहीं था। बंबई पहुंचतेही इन्स्पेक्टरनें मुझें रोकनेकपर मैंनें सद्गुरुका स्मरण किया तो ऐसा चमत्कार हुवा कि जादह चार्ज न देतेही मुझें घर जानेको उसने कहा।

(१३) मनु सुभेदारसे लिखा हुआ ज्ञानेश्वरीका अंग्रेजी तर्जुमा मुझें पढनेको मिलनेपर अठराहवे अध्याय पढनेपर ता. २३ नोव्हेंबर ४२ रोज मुझें पंढरपूरके विठ्ठलमूर्तिका दर्शन ध्यानमें हुवा।

(१४) ता. ४-२-४३ रोज ध्यान समय मैं हवाई जहाजमें बैठकर उडतासा मालूम हुआ। पृथ्वीपर कीं हरितवर्ण पहाडियां छोटीं छोटीं दिखपडीं। और पंखोंकीं आवाज भी आती रही।

(१५) सर्वोत्कृष्ट अनुभव ता. २५-९-४२ रोज आया जब संपूर्ण समाधान मिश्रित आनंदलाभ हुवा। यहसब अगाध सद्गुरुकृपा है। और इसलिये श्रीसद्गुरु गजानन महाराजका मैं अमरण ऋणी हूं।

ध्यान तो मैं नित्य नियमित करताही हूं। उससे उत्तम अनुभव भी आते हैं। मन शांत होकर वासनाएँ नष्ट होतीं हैं। अंधेरेमें भी खुलीं आंखोंसे दृश्यदर्शन होता है। लंबी पूछवाला तेजस्वी आंखोवाला एक चतुष्पाद जानवर कभी कभी दिखता है। उसे कभी कभी कुत्तेका मुंह रहता है भ्रूमध्यमें दृष्टि जमाने-

पर कभी कभी सशृंग गौमाताका दर्शन होता है। नागपंचमीके दिन पृष्ठवंशके नीचले अंतपें चक्र घूमता मालूम होनेपर मुझें तो डरही पैदा हुई। शरीरमें कंप होकर पसीनेसे सर्वांग भीग जाता है। आठ दिनके पूर्व "धि मिस्टिरियस कुंडलिनी" नामक श्री. रेळेकी किताब पढनेसे षट्चक्र दर्शनकी अनावर तीव्र इच्छा होती है। श्रीसद्गुरु कृपासे वह पूर्ण होगी।

पहले वेदांत विषयोंमें चित्त नहीं ठहरता था। अब ज्ञानेश्वरी जैसे किताब पढने में चित्त स्थिर हो जाकर अर्थभी झट मालूम पडता है। भ्रूमध्यमें ध्यान जमानेपर गोलाकार घूमता तेजोमय चक्र चारों ओर तेजः किरण फेंकता दीखता है। नीलप्रकाशमें नीलवर्ण फैलकर उसमें तारकाएं दिखती हैं। उससे आनंद प्राप्त होता है। यहांपे रास्तेपर ट्रॅम और फेरीवालोंके आवाजोंकी गडबडमें भी ध्यान कष्टसेही जम जाता है। तो भी कोई शांतिमय स्थलपें जानेसे ध्यान अधिक एकाग्रचित्तसे होगा ऐसा मालूम होता है। कभी कभी त्रिनेत्रयुक्त विभूति पास आती रहती है। ऊपरी नेत्रसे नील किरण निकलकर मेरे शरीरको धक्के देते चलतें है ऐसा मुझें अनुभव आता है। सब सद्गुरुकृपासे होता है और मेरी श्रद्धा बढती है। षट्चक्र दर्शनकी मेरी तीव्र इच्छा सद्गुरुकृपासे ही पूर्ण होगी यह मेरा विश्वास है।

(४१) **श्री. पी. एन्. नाबर-वकील नासिकः**—महाराजका अँग्रेजी जीवन चरित्र पढकर मुझें आपका परिचय होनेपर मेरे मनमें आपका दर्शन लेनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। ता. २२-८-४३ रोज दर्शन लेकर मुझे चित्तशांतिके लिये उपाय बतानेकी इच्छा मैंने प्रकट की। थोडी देरतक हमारे प्रश्नोत्तर हुए। जब महाराज मुझें बोले "बस्तरवारपर आना।" लेकिन वैसा बोलते ही मेरा चित्त इतना एकाग्र हो गया कि मेरा देहभान छूटकर महाराजका चेहरा मुझें दिव्य प्रकाशमय दिखने लगा। महाराजने मुझें पुकारा तो मैं जोरसे बोला "श्रीसद्गुरु महाराजकी जय!" और महाराजको नमस्कार किया। बादमें ख्यालमें आया तब महाराज फिरसे बोलेः—"बस्तरवार आना।" इस समाधि-समयमें मुझें जो आनंदमय समाधान हुआ वह मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। बस्तरवार जानेपर सोहम् मंत्र कृपादृष्टीसे महाराजने दिया। जिसपर मेरी प्रगती हो रही है। श्रद्धा बढकर आनंदमें दिन जा रहे हैं।

(४२) श्री. रामचंद्र शिवराम सहस्रबुद्धे 'केसरी ऑफिस पूना:—शनिचर ता. १४-१२-४१ रोज मुझे श्रीगजाननमहाराजका दर्शन हुआ। इसी समय आपके हस्तकमलका स्पर्श मुझे हुआ। और सबसे मेरा जीवनही पलट गया। दो दिनपर ध्यान करते समय सुवर्ण शलाकाकें माफिक दोनों आंखोमें दो इंच चौडाईके किरण आते देखे। थोडी देरसे दोनोंका मिलन हो गया। उसी दिन नीलवर्ण प्रकाश दिख पडा। एकदिन स्वप्नमेंही देखा कि आप लेटे थे। और एक वृद्ध स्त्री पास बैठी थी। आपको देखतेही जब मैंनें दो दफे जयजयकार किया तो आप बोले:—"तुम्हारे घर आकर मुझें चाय लेनाही है।" मैंने उत्तर किया "आपकी कृपासे कुछभी कम नहीं है। जरूर आईये।" पास बैठी हुई वृद्ध स्त्री बोली:—"अब तो रोटीका समय हुआ है। फिर चाय काहे को?" तब आप बोले, "पहले हम इनके घरकी चाय पीनेवाले हैं!"

ध्यानमें श्रीगजानन, स्वामी रामतीर्थ और श्री. तिलक महाराजका दर्शन हुआ। एक बस्तरवार दिनपे ध्यानसमय एक दिव्य पुरुष बाहरसे मेरी तरफ देखता दीख पडे। जो श्रीनृसिंहसरस्वतीके या अक्कलकोटवाले स्वामीके समान दिखते थे। उनसे मैं बोला, "महाराज मैं हूं" आप संमतिदर्शक सिर दिखाकर अदृश्य हुए।

एक दिन ध्यानमें श्रीगोरखनाथ और श्रीमच्छिंद्रनाथ दिख पडे, दोनों पास ही ध्यानस्थ बैठे हुए देखे। हँसमुख था। पास बैठे हुए एक मनुष्यने मुझे नाम बताये। फिर मैं ख्यालपें आया। एक दिन ध्यान खतम होनेबाद मैं लेट रहा था। चादर मुंहपर ओढकर मनमें मैं बोला:—"श्रीज्ञानेश्वरजीनें योगबलसे अपनी देह दृढ करके मुक्ताबेनको पीठपरही पक्कान्न भूँजनेका प्रबंध कर दिया था। वह चैतन्यघन यहांपें है।" इतना बोलतेही सातारके तरफ रहनेवाले एक मराठाके माफिक पेहराव की हुई छोटीसी श्रीविट्ठलमूर्ति मुझें दिखपडी। मैंने कहा, "यही वह चैतन्यघन है। उसे देखते समाधान पाने पर मैं देहभान पर आगया। एक दिन ध्यानके बाद ऐसाही बैठा था। जब देखा कि मैं त्रिपुंड्र लगाकर कोई कागज बगलमें रखकर ऑफिस जाता था। सिरपर टोपी रखी थी। और यह मेरा स्वरूप मैं

आईनेमें देखतासा मुझें दिख पडता था। उस समय मेरा मुख मुझें बहुत तेजस्वी दिखा और जबसे मैं आडांगंध लगाना शुरू किया।

एक दिन शंखचक्रगदापद्मधारी श्रीविष्णुका और गजाननका दर्शन हुआ। एकदफें रातके दोबजे उठकर मैंने सोऽहम् मंत्रका जप शुरूकिया। तीन बजनेपर चादर ओढकर सोगया। जब नाभिकमलसे कंप शुरू होकर बादमें सब शरीर हिलने लगा। सिर खाली स्थिर था।

ता० २४–२–४२ रोज दोप्रहर रोटी खाकर जरा लेटा था। साधारणतः ढाई बजनेसमय स्वप्नमें आपको नीलवर्ण अंग्रेजी सूट पहने देखा। फेटा और नेकटाय भी था। आप खडे थे और मैनें चरणोंपर सिर नमाया पहले आपके चरणोंका स्पर्श मेरे पीठ को हुआ। फिर हाथोंसे पीठपर स्पर्श किया मालूम हुआ। बादमें मेरे सिरपे भी हस्तस्पर्श होगया। महाराज कोईएक गांवके पासवाली नदीकिनारे खडे थे। नजदीकही एक घोडा और साइस थे। गांव सातारके समीपवाला सा दिखा। मैनें घोडेपर सवारी करके घोडा चलाया। पीछे आप और गांवका पाटील मेरे साथ साथ चलते देखें। मैं पटेल को बोलता रहाः ग्रामोद्धार आंदोलनसे ग्रामकी भरभराट होगी। और लोगोंको खानेको मिलेगा।" जबही मनमें विचार आया कि मैं इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलीस हूंगा तो महाराजको मासिक रुपया दोसों भेज दूँगा। फिर झट विचार बदलकर सोचने लगा कि मैंतो घोडेपर और महाराज पैदलही चले हैं यह बात ठीक नहीं है। फिर मैंने सैसको पुकारकर नीचे उतर गया और घोडा आपके सामने बुलवाकर खडा किया। जब आप हंसते रहे और मैं देहभान में आगया।

रोजाना एक घंटे के अभ्याससे ऐसे अनुभव आये। महाराजने कहा ही है कि हमें दृश्योंके परे जाना है। अतः मैंने ठीक ठीक लिख कर नहीं रखा है। अनुग्रहसेंही मेरी शुद्धि होगयी ऐसा मैं मानता हूं। मेरीप्रगति आपही जानकर मुझें आगे बढाएंगे। और जिस वस्तु लाभके लिये मेरा मन उछल रहा है वह गुरु-प्रसादसेही प्राप्त होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

इधरवाले मित्रोंको आपकी आतीं हुई चिट्ठियां मुझें देखने मिलतीं हैं। वह भी एक प्रसाद ही है ऐसा मैं समझता हूं। एक दिन ध्यान समयमें तेजोमय

ज्योतिमें श्रीज्ञानेश्वर और श्री दत्तात्रय का दर्शन हुआ। जिससे बहुत आनंद लूटा। एक दिन ध्यानके बाद लेटा था। तो एक नाग आकर सामने खडा हुआ। अपने सामने हम दोनो देखही रहें थें। महाराज बोलेही थे कि हठयोग साधन करते कुंडलिनीदर्शन नागस्वरूपमें भयप्रद होता है। वही ध्यानयोगसे आनंदप्रद होता हैं। इस समय मुझें यहां अनुभव प्रत्यक्ष हुआ। २९-३-४२ इ० दिन पूजाघरमें बैठा था। मेरे सामनें एक भस्मचर्चित, रेशमीवस्त्रपहना हुआ, यज्ञोपवीतधारी, ब्रह्मचारी बटु ध्यानस्थ बैठा देखा। फिर बाएं हाथमें शुक्रतारकसा एक तेजोगोल आकर थोडीदेरतक रहा। जब मेरा मन खूबही प्रसन्न रहा।

कोई महत्वपूर्ण अनुभव अब लिखता हूं:—

(१) श्रीकालिकामूर्तीका दर्शन अत्यंत सौम्य स्वरूपमें हुआ। हरितवर्ण रेशमीसाडी और सर्वालंकार-भूषणालंकृत दर्शन हुआ। जब मैं कलकत्तेमें A. R. P. का शिक्षण लेने गया था। और मेरे मुकाम परही कुछ पढता रहा था। ऑगस्ट ४२ इ० का काल था। वहांपे श्रीमच्छिद्र गोरखनाथजीका भी दर्शन हुआ। जब मैं रात के समय अर्धजाग्रत अवस्थामें था। ऐसे समय मुझें दो-चार पुरुष मेरेपास आये दिख पडे। एक नीलमेघवर्ण और पुष्ट शरीर वाला था। दूसरा एक बिलकुल कृश था। मैंने थोडासा उतरकर उनपें पानी फेंक कर कहा "चले जाव।" लेकिन वेतो वैसेही रहे। मैंने फिर वैसेही शब्दोंका उच्चारण करने पर उनमेंसे एक हँस पडा और बोला:—"तू श्रीगुरु को बुला। या और किसी को भी बुला ला। हम लोग तो यहांसे हटनेवाले नहीं है।" सुनकर मैं तो अस्वस्थ होकर ख्याल करने लगा कि ये लोग कोई और दिखतें हैं। जब एक बोला:—"अरे! ये तो गोरखनाथजी हैं। और दूसरे मच्छिद्रनाथजी हैं। और वे तेरे साथ चिरंतन के लिये रहने आये हैं।" मैंने उनको नमस्कार करनेपर यह दृश्य मिट गया। बात २१-८-४२ इ. की हैं। फिर दो दिन पर फिरसे दर्शन देकर बोले,—"हम अपने "भोग्राम" जाते हैं।" एक संन्यासीकी मूर्ति पास खडी होकर बोलने पर मैंने नमस्कार किया और वे चले गये। (२) अनेक देवतासों के दर्शन जागृतावस्थामें और स्वप्नोंमें हुए। (३) स्वप्नमें श्री अक्कलकोटकर स्वामीका दर्शन हुआ। (४) ध्यानके

समय बालार्कका क्षितिजपे दर्शन हुआ। (५) नाभिकमलमें कमलाधिष्ठित ब्रह्मका दर्शन ध्यानमें हुआ। इससे कुंडलिनी दर्शन का संबंध है।

(४३) श्री. डी. एस्. मोहिते, बी. ए. बी. टी., नासिक:- ता. २१-११-४२ रोज शनीचर के दिन मैंने सिटी लायब्ररीसे एक किताब सहजहीसे ली। जिसका नाम 'लाइट ऑन दि पाथ ऑफ सेल्फ़रियलीझेशन' था। इस ग्रंथमें शायद औरों और ग्रंथोंके माफिक धर्मके कुछ प्रबंध होंगे और ऐसा करो वैसा करो ऐसा कुछ बताया होगा ऐसाही मेरा ख्याल था। बहुतसे ग्रंथोंमेंसे पुराण-कालीन कथाएं और उनके सारके अनुसार आचरण करनेका उपदेश मिलता है। लेकिन वैसा करनेवाले मुमुक्षुको अनंत कष्टोंका ही अनुभव आकर उसके रास्तेमें उसे रुकावट ही होती है। उन रुकावटोंको हटानेवाला कोई सत्पुरुष ढूंढने पर भी मिलता नहीं। अतः इच्छा होकर भी मन भ्रमके गोते खाता रहता है। खैर। मेरा तो अनुभव ऐसाही है। उपरिनिर्दिष्ट ग्रंथ पढकर दूसरा ही कुछ अनुभव प्राप्त हुआ। श्रीगजानन महाराज के माफिक एक श्रेष्ठ पुरुष नासिकमें ही रहकर उनके शिष्य अपने अनेक प्रकार के अनुभवोंकी सत्यता स्पष्ट करनेके लिये मौजूद हैं; देखकर मेरे मन पर बहुत कुछ असर हुआ। दोही दिनोंमें किताब पढली। जिससे महाराजके दर्शन की मुझे तीव्र लालसा उत्पन्न हुई। तीसरे ही दिन मैं महाराजका निवासस्थान ढूंढकर आपके श्रीचरणोंके सामने खडा हुआ। प्रथम भेंटमें ही आपके प्रेममय और सीधासाधा स्वभावका मुझपर असर होगया और शाम-सुबह दर्शन लिये बिना मुझें चैन नही पडता था। महाराज बिमारही थे। तो भी पास बैठकर मैंने अपने मनकी लगन निवेदन कर दी। जब सोमवार ता. ३०-११-४२ इ. रोजपर आपका अनुग्रह हुआ और वह मेरा अनुभव अभूतपूर्व हुआ।

महाराज हमेशा एक खाटपर बैठे रहते है। पास एक कुर्सीपर मुझे बिठाया। बोले,—"मैं 'सोऽहम् सोऽहम्' जप बोलता हूं। तू भी मनमें साथ साथ 'सोऽहम् सोऽहम्' जप कर।" मैंने जप शुरू किया और मेरी आंखें आपहीसे मिट गयीं। सब अंधेरा होकर मैं कहीं ऊपर ऊपर उठता रहासा

मालूम हुआ। जबान मंद होकर अंदर खींचती चली। पृष्ठवंशमें जगह जगहमें बिजली जैसे धक्के बैठने लगे। सिर घूमने लगा। ऐसी अवस्था कितने समय तक रही उसका मुझे पताही नहीं था। थोडे समय के बाद महाराज मुझे पुकारने लगे। मेरा जवाब न आते मुझे आपने हिलाया। जब मुझे अंतर्दृष्टि-सेही सद्गुरुका तेजोमय मुखमंडल दिखने लगा। मुझे जवाब न देता देख कर सद्गुरु जरा जोरसे छेडने लगे। थोडी देरसे मैं ख्यालमें आया। मन बिलकुल शांत होगया था। वह पूरा दिन आनंदमय होगया। कृश देहवाले महाराज के मनकी शक्ति कितनी सामर्थ्यशाली है उसका मुझे अनुभव हुआ। और मेरा विश्वास बढते चला। रोजाना शाम सुबह दस मिनट तक जप करनेका हुकुम हुआ।

आपके शब्दोंपर निष्ठा रखकर मैंने जप शुरू किया। उपदेशके बाद पंधरह दिनोंमें ही मुझे कई एक प्रकारके अनुभव आये। जिससे मेरी श्रद्धा बढती चली। अनुभवोंका सुफल परिणाम मेरी वृत्तियोंपर भी दिख पडने लगा। संकटोंसे मेरी मनकी अवस्था जो बिलकुल खराब और नीरस हो गयी थी यही अब सब ठीक बन गयी। उच्च कुलमें और अच्छी परिस्थितिमें होकर भी उमरके पचीस (२५) सालमेंही मेरा परिवार आमूलाग्र नष्ट हो गया। जिससे मुझे मेरा जीवन भी भारी होते चला। और आत्महत्याका भी मैंने यत्न किया। लेकिन एक साधूने मुझें पानीमें मरते समय ही बाहर निकाला। जब तो बडा-खराब मालूम हुआ था। अब उसीका खाली आश्चर्य मालूम होता है। संकटोंका उपयोग मनुष्यकी उन्नतीके लिये ही होता है यही तत्त्व सच है। मेरे जीवनका प्रवाह बिलकुल बदल गयासा मालूम होते चला। मैं अकेला निराधार हूं ऐसी भावना मिट जाकर मेरा संरक्षक हमेशा पास ही है ऐसी भावना प्रकट हुई और मैं निर्भय और समाधानी वृत्तीका बनते चला। सद्गुरु कृपा ही इसका कारण है।

१७ ऑगस्ट ४२ इ० के अंदाज मैंने सीनियर क्लर्ककी नौकरीके लिये अर्जी की। पहले किये हुए सरकारी श्रेष्ठ श्रेणीके नौकरीका उल्लेख उसमें किया था। जिससे मुझे काम मिलनेकी उमेद थी। तो भी २६ ऑक्टोबर तक जवाब नहीं आया। काम नहीं मिलता ऐसा मानकर मैं बंबई चल पडा। मेरी

अनुपस्थितिमें नासिकमें मेरी अर्जीका जवाब आकर पडा। घरवालेको मेरा बंबई का मुकाम मालूम न होने मेरी चिठी वैसीही पडी रही। १६-११-४२ रोज मैं नासिक वापिस आया तो भी ३ डिसेंबर तक मुझे चिठी देनेका ख्याल घरमालकको नहीं हुआ। उस दिन ड्रावर खोलते उन्हें वह दिख पडा। मैं पासही होनेसें मुझे वह चिठी जल्दही मिली। खोलकर देखा तो तीनसौ बीस रुपीया महावारकी नौकरी मुझे मिली थी और सात दिन के अंदर काममें हाजिर होनेका वह हुकुम था। देखकर मेरी अवस्था ऐसी होगयी कि जिससे मुझें हंसना या रोना क्या करना समझही नही पडा। नौकरी तो गुमही गयी। तोभी मुझे दुःख नहीं हुआ। मैंने हुकुमके तोडफाडकर टुकडे करके फैक दिये। श्री गजानन महाराजकी भेट होनेके पहले वह मेरे हाथमें आता था तो मेरी कितनी निराशा होती थी। लेकिन अब मेरा जीवन प्रवाह सुखदुःखोंके चक्करों में पडनेवाला नहीं था अतः घरमालक के पास चिट्ठी पडी रही। ऐसा विलक्षण संयोग हुआ।

बुधवार ता. २–१२–४२ पर प्रभात-पूर्व साडेतीन बजे मेरी नींद खुल गयी। मुँह और हाथपाँव धोकर मैंने जप शुरू किया। लेटा ही रहा था। थोडी देरसे हृदयमें दूसराही कोई जप कर रहा है ऐसा आवाज आते चला। मैं ख्याल देकर सुनता रहा। हृदयमें सुनाई देनेवाले जपका मुझे बहुतही आश्चर्य हुआ। फिर आवाजकी जगह बदलते नाभिकमल तक आयी। वहांसे आवाज सुनाई देते चला। मैं खाली त्रयस्थ के माफिक सुनता रहा। जाडेके दिन होनेसे मुझें ठंडक मालूम होते चली। अंग दुखने लगा। जिससे मैं जरासा हटकर पलटा गया। तबही आवाज बंद हुआ। उस समय मेरा मन बिलकुल शांत था। 'सोऽहम्' व्यतिरिक्त किसी चीजका भी साथ नही था। उस समयमें नींद कब आयी मालूमही नहीं हुआ।

बस्तरवार ता० १०-१२-४२ रोज प्रभातपूर्व पांच बजे मैं जागृतावस्थामें बिस्तरेपर लेटा था। वैसाही जप शुरु किया थोडी ही देरमें आंखोंपर अर्ध सुप्तावस्था छा गयी। आंखी अर्धोन्मिलित थीं ऐसे समय कोठीमेंका अंधेरा कम होते वहाँ पर नीलवर्णा प्रभा छोड गयी ऊपर आकाश निरभ्रसा दिख पडा। क्षितिज भी दिख पडा। जबही किरण फैलकर

सूरज क्षितिजके ऊपर आते चला। दृश्य अत्यंत रम्य था। दो मिनिटतक वह दृश्य देखा होगा। लेकिन शरीरमें आनंद-लहरियाँ उमड आयीं। फिरसे वही दृश्य देखने के लिये ध्यान जमानेका यत्न करनेपर कुछ भी नहीं दिखा। सद्गुरुसे पूछनेपर आप बोले,—"ऐसे दृश्य आपहीसे दिखते है। उनके पीछे समय गमाते रहनेकी जरूरत नहीं है।"

ता० १२–१२–४२ शनीचर रोज सुबह आठबजे शुचिर्भूत होकर जप शुरू किया। भ्रूमध्यपें ख्याल जम गया और जप तीव्र भावनासे शुरू हो गया था। आंखीं बंद थीं। और ख्याल जपके अंदाजसे आनेवाले जपके नादपे था। थोंडी देरसे एक कृष्णवर्ण नाग दिख पडा। वह दहनी बायी तरफ घूमता था, सर्प सच्चा है या झूठा यह जाननेके लिये मैंने हाथ आगे बढाये। लेकिन मेरा भ्रम मेरेही ख्यालमें आया। नऊ बजने के अंदाजसे कपडे पहन कर मैं अस्पताल की तरफ जाता रहा। रास्तेमें आगे नाग दिखता ही था। अस्पतालके फाटक अंदर जाते ही सर्प अदृश्य हो गया। यह दृश्य सतत आधा घंटेके ऊपर दिख रहा था। इसमें कुछ डर नही मालूम हुई। वृत्ति निर्भयही रही। उस दिनसे मेरी विषयवासना पूरी नष्ट हो गयी। स्वभाव शांत और निगर्वी हो गया। यह फरक देख कर मुझको ही बहुत आश्चर्य मालूम हुआ।

बस्तरवार ता० २४ डिसेंबर ४२ इ० रोजसे मुझे एक कडी दुःखदायक व्याधि उत्पन्न हुई। गुदद्वारमें हुए फोडेसे मुझे बहुत कुछ यातनाएँ होती रही। शस्त्रक्रियाका इलाज मुझें मालूम था। बंबई जाकर ऑपरेशन करके आनेका बिचार आया। लेकिन नासिकमें स्कूल मास्टरकी नौकरी परसे छुट्टी मिलना मुष्किल था। धूपकालोंमें छुटी होने पर जानेका इरादा किया। लेकिन तकलीफ बहुतही हुई।

ता० ४–१–४३ रोज रातके ढाई बजे समयमें मैं गहरी नीदमें था। जब मुझे किसीने हिला हिलाकर उठाया। उठकर बत्ती जलाई। सब जगह ढूंढा। लेकिन कोई भी नहीं मिला। सब आभासमय है ऐसा मानकर हाथपांव धोये और बिस्तरेपर बैठ कर बत्ती बुझानेपर जप शुरू किया। दस मिनटके अंदर ही मेरी कोठीकी अंदरकी सांखल गिरपडी और दरवाजा

खुल गया। दरवाजेमेंही श्रीदत्तगुरुकी मूर्ति छः हाथ और तीन मुखवाली तेज पुंज दिख पडी। हंसत मुख दिव्य दत्तमूर्तिको देखकर मुझे असीम प्रेमकी लहरें उमड आयीं। आंखोंमेसे आनंदाश्रु बहने लगे। आशीर्वाद दर्शक एक हाथ ऊपर किया था। लेकिन मैं तो आनंदातिशयसे बेहोषही हुआ था। बिलकुल दिङ्मूढ बन गया। यह मूर्ति मेरे घर कैसी? इसका जवाब सूझताही नहीं रहा। थोडी देरपे मूर्ति मेरे खाटके पास आयी। मूर्तिका रूप पलटकर वही एकमुखी द्विभुजा बनगयी। अत्यंत तेजस्वी होकर मुझे आशीर्वाद देती रही थी। कोठी प्रकाशसे भर गयी थी। थोडी देरपर मूर्ति अदृश्य होकर उसी जगह एक प्रकाशस्तंभ खडा रहा। थोडी देरपर वहभी अदृश्य होकर कोठीमें अंधेरा हो गया। मेरा वह दिन असीम आनंदावस्थामें गया। हरेक चीजमें आनंदही आनंद भर रहा है ऐसी सम्मोहावना दिनभरतक रही। उस दिन महाराजके दर्शन हो जानेपर चरणोंमें नम्र होतेही महाराज बोलेः—"तुझे सब संतोंके आशीर्वाद हैं। और मेरे भी है।" परमेश्वर अनंतरूपोंमें कैसा नाट्य करता है। यही विचार पगपगपर मेरे अंतःकरणमें जागृत होती रही।

इस अनुभवके बाद दोही दिनोंमें मेरी गुदद्वारके फोडेकी व्याधि आमूलाग्र नष्ट होकर उससे मुझे कुछभी तकलीफ का कारण नहीं रहा।

सद्गुरुकृपासे सब कुछ सिद्ध होता हैं ऐसी मेरी श्रद्धा दिन दिन बढती ही रही।

ता ८-१-४३ के रोज रात के दसबजे अंदाज मैंने "शिवलीलामृत" का ग्यारहवा अध्याय पढ लिया। कुछ जप करके सोनेके लिये बिस्तरेपर लेटा। जप करते करते सोनेके इरादेसे आंखीं बंद कीं। बत्ती तो पहलेही बुझा दी थी। जब कोई न कोई सिरतले आकर बैठा ऐसा मालूम हुआ। देखनेके लिये मैं पलटा तो कोई उठकर बाहर गयासा मालूम हुआ। लेकिन सामनेवाली दिवालपर एक विशिष्ट जगहपें उजेला दिख पडा। सब कोठीमें अंधेरा रहकर उसी जगह अत्यंत तेजोमय प्रकाश उत्पन्न हुआ। अंदरबाहर सब अंधेराही था। जब यह प्रकाश कैसा? इसी बातका आश्चर्य कर रहा था। लेकिन दृष्टि वहांपे गढ जानेसे जप की तीव्रता बढती रही। वृत्तियोंका लय

होकर प्रकाश और मैं इन दोनोंसे तीसरी बातका ख्यालही नहीं रहा। बादमें प्रकाश कम होते होते मिट गया और मुझे भी नींद लग गयी।

दृश्य देखनेकी इच्छा नष्ट होती रही हैं। अंतर्याम समाधान वृत्तिसे भर गया है। संपत्ति संचयका और स्त्रीसान्निध्यका तो द्वेषसाही मालूम होता रहा है। जप संतत चलना चाहिये और कालहरण नहीं होना चाहिये ऐसा मन होता है। सद्गुरु सांन्निध्यके पूर्व की पापमय वृत्ति और बादमें होते हुए फर्क का ख्याल आते ही सद्गुरु किये हुए उपकारोंसे मन भर आता हैं।

अब ध्यानके समय तदाकार वृत्तीमें ही देह कमरके नीचे टूटही गयासा मालूम होता है। ऊपरी भाग ऊपर ऊपर चढतासा मालूम होता है। ऐसे आनंदोर्मिमय जीवनमें ही मेरी समाधान वृत्ति जोर पकडनेवाली होती ही है। सद्गुरु चरणोंमें साष्टांग दंडवत है।

दर्शनके समय मैं मेरी शंकाएँ श्रीसद्गुरुसे बोलता हूँ। जब आप खुलासा कर देतें हैं। एक विशेष बोधप्रद प्रश्नोत्तर यहांपर देता हूँः—मैंने पूछा, महाराज 'भावना', 'श्रद्धा' और 'निष्ठा'के अर्थ जंजालमेंही मैं अटक पडा हूँ। क्या ये सब शब्द एक ही अर्थके हो सकते हैं? महाराज बोलेः— तेरा प्रश्न ठीक है। इन शब्दोंके जालसे हमेशा गोलमाल होता है। श्रद्धा और निष्ठा वास्तविक भावनाकेही रूप है।

पहले भावना क्या चीज हैं हम देख लेंगे क्योंकि उसकी व्याख्या करना कठीन है। अलग अलग दृष्टांतोंसे समझ पडेगा कि भावना क्या चीज है। भावना जन्मजातही है। वह बनायी नहीं जा सकती है। एकही घरके चार बंधुओंमें समान प्रेम नहीं दिख पडता है। उनकी भावनासे उनके प्रेममें फर्क हो जाता है। भावनाका मूलरूप ऐसी अवस्थामें दिख पडता है। जब किसीको देखनेपर प्रथम ही मेलमें हमारे मनमें उसके बारेमें अच्छी या बुरी कल्पना प्रकट होती है। कभी कभी दूसरेके कहने परसे हमारा मत अच्छा हो जाता है। तो भी वह अच्छी कल्पना कभी मिटभी जाती है और रहती नहीं है। दृष्टांतके लिये देखो कि कोई मनुष्य किसी विषयमें निष्णात है ऐसा हम सुनते हैं। उसके बारेमें अच्छी कल्पना हमारे मनमें आती है। सहवासपर हम उसी दृष्टिसे उसे देखते हैं। लेकिन उसकी

विद्वत्ताका प्रत्यय न आनेसे हमारी अच्छी कल्पना नष्ट होती है। यह भावना नहीं है। भावना अंतःकरणका स्वभावधर्म है।

भावनाकाही एक विशेष स्वरूप हमारे हमेशा किये जानेवाले व्यवहारोमें दिख पडता है। हमें परस्पर आपसमें विश्वास रखनाही पडता है। विश्वास बिलकुल न रखते हम अपने व्यवहार करही नहीं सकते हैं। घरके लोगोंपर हम जो विश्वास रखते हैं वह भी उनके बारेमें रखी जानेवाली एक विशेष प्रकारकी भावनाही है। उनके बारेमें की हुई विश्वास की भावना जितनी उत्कृष्ट हम करेंगे उतना हमें सुख जादह होता है। इसी उत्कट भावना को "श्रद्धा" कहते हैं। लेकिन यह श्रद्धाभी कारण पडने पर ढीली हो जाती है। अनेक प्रसंगों के धक्कोंसे यह भी श्रद्धा बिलकुल नष्ट होने की संभावना हैं।

भक्तियुक्त श्रद्धा यही भावनाका श्रेष्ठ और इष्ट स्वरूप है। यहीं श्रद्धा संकल्प-विकल्प रहित और निर्हेतुक और निर्व्याज होगी तो वही "निष्ठा" कहलायी जाती है। संकल्प विकल्पविरहित भावना का अत्यंत उत्कृष्ट स्वरूप यही निष्ठा हैं। इसका स्वरूप अविचलित रहता है।

किसी भी कारणसे यह निष्ठा कम नहीं होती हैं। क्यों कि वह संकल्प विकल्परहित होती है। कम होगी तो वह "निष्ठा" नहीं है। रामदास स्वामीने शिवाजी महाराजको शेर की गुंफामें जाकर दूध लानेको कहा था। तब शिवाजी महाराज के मनमें ऐसे शंकल्प–विकल्प नहीं आये, कि "क्या हमारी परीक्षा स्वामी लेना चाहतें है? अब शेर की गुंफा ढूंढनाही कहां? दूध मिलना बात कितनी कष्टप्रद है!" इत्यादि। इन सब संकल्पविकल्पोंके परे शिवाजी महाराज के विचार होनेसे आपको तकलीफ तो कुछ हुई ही नहीं। ऐसा काम खाली 'निष्ठा' रखनेसे होता है। कहतें हैं कि कविश्रेष्ठ कालिदास अपनी जिव्हा काटकर देवीके सामने रखनेके लिये उद्युक्त हुआ था। इसमें उसकी यही निष्ठा दिख पडती है जिससे फलप्राप्ति झट् हो जाती है। वीरवर बाजीप्रभु देशपांडे पावनघाटीमें अकेला खडा होकर शत्रुसैन्यको रोक सकता यह खाली उसकी कर्तव्यनिष्ठा का फल है। जिसमें स्वराज्य-संस्थापक श्रीशिवाजी महाराज परकी निष्ठा भी शामील थी। निष्ठाका बल

ऐसा है कि उससे सिर्फ दृष्टिपातसें पत्थर फोडा जाता है। तो पहिली मनकी अवस्था **भावना,** भावनाकाही दृढ स्वरूप **श्रद्धा** और इससे ही भावनाका उत्कट स्वरूप यहां **निष्ठा** है। और "निष्ठा" कोही सबसे जादह कीमत है।

ऐसी संकल्पविकल्प विरहित निष्ठा जब हम अपने आत्मानुभवी गुरूपर रखेंगे तो हमें आत्मानुभव मिलने के लिये कुछ भी देर नहीं लगेगी। हमारा कर्तव्य यही है कि गुरूके लिये हमारे मनमें जो भावना है उसे ऐसा उत्कट स्वरूप देनेके लिये पराकाष्ठा करना चाहिये। ऐसी अटल निष्ठा जागृति होते ही आत्मानंद प्रकट होता है। स्वानुभवी गुरुके बतायेहुए मार्गपें ऐसी निष्ठा रखोगे तो तुम्हें स्वानंद साम्राज्य मिलनाही चाहिये।

(४४) **श्री. सौ. सुंदराबाई अमेम्बल-बंबई:**—शब्द, परिभाषाका कामही न रखते महाराजने मुझे ध्यानमें प्रगति करनेका रास्ता बताया। ध्यान करते समय मूर्तीके बाह्य-रूपपर ख्याल न रखते उसके अंतःशक्तिपर वह ख्याल रखना चाहिये। इसी तत्वके अनुसार मैंने आपकाही ध्यान करना शुरू किया। और आश्चर्य यही हुआ कि हम दोनोंमें एकही शक्ति वास करती है यह अनुभव मैंने पाया। इससे "सोऽहम्" या "मैं परमेश्वर हूँ" इसका सच्चा अर्थ मुझे समझ पडा। आप दूरीपर नहीं हैं और मुझे सत्यमार्ग दर्शन कर रहें है इसका दाखला मुझे मिल गया। यह मेरा अनुभव मैं शब्दोसे वर्णन नहीं कर सकती हूँ। आपपर और सोऽहम् मंत्रपर मेरी समान श्रद्धा है। आपके हुकुमके अनुसार मैं अखंड मंत्रजप कररही हूं। वास्तविक मैं तो एक क्षुद्र व्यक्ति हूँ। मेरे हृदयमें गर्व और अभिमान भी है। तोभी अध्यात्मानुभवसे मुझे आत्मप्रचीति हो गयी। मेरी वृत्ति पहले खूब चिडचिडी थी। लेकिन मैं और दूसरोंमें एकही परमात्माका निवास है यह जानतेही मेरा स्वभाव शांत होगया। शुद्ध आनंदका स्मित मेरे मुखपर उमड आया। मैं क्षुद्र व्यक्ति होनेपर भी सद्गुरु कृपा करके मुझे योग्य मार्ग बताएंगे ऐसा मुझे विश्वास हुआ। अब मन डावाडोल भी हो तो मेरा अखंड जप चलताही रहेगा। सद्गुरु मेरा संरक्षण करके मेरे अहंकार अज्ञानका नाश करेंगे और मुझें विरक्ति, भक्ति, ज्ञान प्रदान करेंगे।

मंत्रोच्चार न करते हुए भी मुझे, सामने एक तेजस्वी नील स्फुलिंग दिखता है। मेरी आंखे खुली रहतीं है औरे मैं अपने व्यवहार करती हूँ।

तोभी वह दिखता है। तोभी मुझें शांतिलाभकी अपेक्षा है। मैं शांतिलाभको जादह चाहती हूं।

मेरे पतिदेव को कुछभी अनुभव न आनेसे ऐसा मालूम होता है कि उनकी प्रगति नहीं होती है। वे जानते भी है कि अनुभव नहीं आयें तोभी प्रगति ठहरती नही है। तोभी कुछ ऐसा दाखला वे चाहते है जिससे उनकी प्रगति उन्हें मालूम हो। आपकी कृपाही यह सब करसकती है। (डिसेंबर ४१)

खाली आपकी कृपासेही प्रगति होकर मनःशांतिका लाभ हो सकता हैं। एक दिन स्वप्नमें ही मैं 'भांडुप' ग्राममें भजनके लिये गयी। भजनके समय मेरा संतत सोऽहम् जप चालू था। आखीरके समयपर चित्त एकदम आश्चर्य, भीति, और बेचैनीसे व्यग्र हो गया। नीरांजन लेकर कोई आरती करतासा मालूम होता था। उसने झट आकर मेरे सिरपे ही वह सब डाल दिया और एक मराठी किताबमेंसे आशिर्वाद वचनों का पढना शुरू करनेको कहा। मुझें पढना तो मालूम ही नहीं। तो भी मैंने वह बडा ग्रंथ पास रक्खा और उसमेंसे कुछ पढा भी। जब मुझे ठहरनेका आदेश हुआ। इसका अर्थ क्या होगा? मुझे इसे कभी कभी डर भी पैदा होती है।

आपने कृपा करके मुझे पंधरा दिन पहले दर्शन दिया। जबसे मैं आपकी मानसपूजा कर रही हूँ। लेकिन आपनें मुझें फिर दर्शन नहीं दिया। मेरे जैसे पापिनीको ऐसी शुद्ध और श्रेष्ठ भक्ति उत्पन्न करके फिर दर्शन क्यों नही होता?

दो दिन हुए बच्चा बीमार है। इससे रातको जागते हुए भी ध्यान नहीं हो सकता हैं।

ध्यान समयमें मुझें सूक्ष्म कंप मालूम होता है। अनुभव कुछ भी आना बंद हुवा हैं। अपूर्ण स्वप्नोंसे असमाधान प्राप्त होता है। सद्गुरुविना हमें अस्तित्वही नहीं हैं। अतः ध्यानमें मैं आपका सहाय्य चाहती हूं। (२-१-४२)

(२७-१-४२) मेरा लडका अब ठीक हैं। यह कहना है कि नींदमें कृष्णपरमात्मानें दर्शन देकर मेरे शरीरपरसे हाथ फिराया। जबसे दवा बंद करके भी उसकी तबियत सुधर रही हैं। ऐसी परमेश्वरी लीला अपार है। नींदमें देवदर्शन होनेंपर वह प्रातःकाल आनंदसे जागृत होता हैं।

मेरे ध्यानमें दृश्य नहीं दिखते हैं। वे मेरी नींदमें ही मुझे दिखते हैं। सद्गुरुका ध्यान जब मैं करती हूँ तब मेरा शरीर डोलता रहता है। आपका दर्शन ध्यानमें होगा तो मुझें आनंद होगा। आपकी किताब मैं प्रतिदिन पढती हूँ। अपने मनमें उत्पन्न होनेवाले हरके विचारका परीक्षण हमने निरीक्षकके समान करना चाहिये ऐसा सद्गुरुने मुझे कहा है। स्वप्नमें दर्शन देकर मेरे कई एक प्रश्नोंका उत्तर सद्गुरुनें दिया है।

(७।८।४२) आपकी कृपासे अब मेरे पतिदेवकी अच्छी प्रगति हो रही है। वे बोलते हैं कि उन्हें एक बहुत बडा तेजोगोल दिख पडा। उसमें एक तेजःपुंज नेत्रभी दिखा। वह तेज नेत्रोंको सहन नहीं होता था। इस दृश्यसे उन्हें परमेश्वरसान्निध्य का विश्वास प्राप्त होकर मनको समाधान हुआ। सब दिनभर उनका सोऽहम् जप चलता हैं। ध्यानमें आप प्रकट होकर मार्गदर्शन करनेके लिये वे चाहते हैं। किस जगहपें चित्त एकाग्र करना चाहिये यह बात वे जानना चाहते हैं। ध्यानके लिये बैठतेही उन्हें शिरसे पाँवतक संवेदन शुरू होता है। ध्यानमेंही काशी, रामेश्वर, वृंदावन इत्यादि क्षेत्रोंका दर्शन होता है। मुझे उनके साथ यात्राएं नहीं हुई उससे मुझे दुःख हुआ। तो भी आपकी कृपासे कोईभी शिष्य वहां जासकता है यह समझकर मुझे समाधान हुआ।

साधारणतः एक मासके पूर्व ध्यानमग्न स्थितिमें मुझें सद्गुरुका दर्शन हुआ। विद्युत्प्रकाशमय तेजोवलयमें आपकी मूर्ति विराजमान थी। मैंने चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया। और विरक्ति, भक्ति और श्रद्धा प्राप्त होनेके लिये प्रार्थना की। आपने संमति बतायी और वह दृश्य मिट गया। बाद एक ज्योतिर्मय प्रकाश दिखता। जबसे व्यवहार करते समय घंटानाद और शंखनाद सुनाई देते हैं। एक दिन हवाई जहाजके माफिक मेरे देहमें गरगराहट मालूम होने लगी। मैं अंधेरेमें खोल नीचे गढेमें जा रही हूँ ऐसा मालूम होते चला। मुझे भयकारक डर उत्पन्न हुई। हृदय जोर जोरसे धौकने लगा। कहींसे आवाज आया 'ऊपर जाओ!' मेरे बायें हाथपर मंद प्रकाश दिखने लगा। उसी प्रकाशमें एक दुर्ग, गढ दिख पडा। जबसे नादभी बायें तरफसे ही सुनाई पडते हैं। महाराजने ही मेरे मनका ताबा लेनेपर मेरी डर चली जाएगी।

(२४-११-४२) मेरे पति देवकी प्रगति अच्छी हो रही है। आपकी कृपा है। ध्यान समयमें उनके शरीरमें आनंदलहरियाँ उठती हैं। परमेश्वर श्रद्धा दृढ होकर मन शांत हुआ है। मेरी प्रगति मैं कह नहीं सकती हूँ। रातके तीन बजे अंदाज कानोंके पडदे खुलने लगते हैं। विचित्र दृश्य दिखते हैं। आपके प्रेमका अनुभव आनेसे श्रद्धा इतनी बढी है कि कुछ भी हो हम हुकुमके माफिक कार्य करेंगे। एक दिन मेरे पहले गुरु बीमार अवस्थामें ठहरे हुए ध्यान करते समय मुझे दिख पडे। भक्तिमें मेरा अहंकार [illegible] करना चाहती हूँ। जात और पवित्र प्रेम चाहती हूँ। जब तक कालापहरण ही होता है। इससे मुझे तीव्र दुःख होता है।

(४५) **श्री. शिवशंकर दामोदर पाठारे—गिरगांव, बम्बईः—** अनुग्रहके बाद सात-आठ दिन मनःस्वास्थ खूब था। कानोंमें नाद और हृदयमें सोऽहम् मंत्र सुनाई देते रहे। मैंने नादको हृदयसे नाभिकमलमें उतारनेका यत्न करनेकी भूल की। जब वह बंदही हो गया। फिर नाद बायें कानमें कोई दिनों के बाद शुरू हुआ। भ्रूमध्यमें दीपज्योतिदर्शन होता रहा। वह बदल कर चंद्रकोरके माफिक होते, पूर्ण चंद्रके समान बनती है। बादमें सायंसंध्या समयके सूरजके माफिक लाल बन जाती है। फिर कंकणाकृति बनकर बीचमें नीलवर्ण रंग दिख पडता है।

(४६) **श्री. व्ही. एम्. वैद्य,—डेंडिस्ट, नाशिक—** १९३२ इ० के मे महिनेमें मैं पूना छोडकर धंधा करनेके लिये नासिक आया। मेरी बचपनसेही ईश्वरपें भक्ति और श्रद्धा है। महात्माओंका दर्शन पहलेसेही लेता आया हूँ। नासिक आनेपर चित्रघंटामें गजानन महाराज रहते हैं ऐसी मुझे दो-तीन सालके बाद खबर मिली। आपके दर्शनकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई। एक दिन एक मित्रके साथ मैं वहांपे पहुंचा। रहनसहन और विनोदपूर्ण संभाषणसे मेरी कल्पना यही हुई कि वे कोई संत नहीं होगें। तो भी मैं भेंट लेताही रहा। जिससे परिचय बढा। एक दिन आपके दांत दुखनेपर रावसाहेब एस्. एस्. गुप्ते के साथ तांगा करके मेरे दवाखानेपे आये थे। इससे और एक दिन दांत दुखने लगे। जब जब आप बीमार होनेसे दवाखाने तक नहीं आ सके तब मुझे आपके स्थानपर जाना पडा। ऐसे ही प्रसंगोसे आना जाना छः सालतक

चलाही था। एक दिन महाराजके शिष्योंके अपने लिखे हुए अनुभवोंकी अंग्रेजी किताब मुझे पढनेको मिली।' जिससे मेरा मत बदलकर आप कोई साधारण व्यक्ति न होकर संतही है ऐसा मेरा विश्वास हुआ। फिर आपका अनुग्रह लेकर आत्मानंदका अनुभव लेनेकी इच्छा हुई। मैंने जब यह इच्छा महाराजको बताई तब आपने पूछा,—"क्या अनुग्रह लेनेका तेरा निश्चय पक्का है?" मैंने संमति बतानेपर बोले,—'देखा जायगा।' आठ दिन ऐसे वैसे ही गये। जब मैंने फिरसे बिनती की। जब बोले,—"बस्तरवार आओ!" उस दिन इतना ही कहा कि "शाम-सुबह पांच मिनट तक सोऽहम मंत्र जप करते रहो।" मैंने वैसा अभ्यास करके फिर एक दिन अनुग्रहके बारेमें पूछा। जब अगले बस्तरवार पूल और अगर बत्तियाँ लानेका हुकुम हुआ। जब मैं १९४० के गोकुळअष्टमीके दिन स्नान करके गया। इस दिन कृपा हो गयी। दो-चार दिन सामने ही बिठाकर सोऽहम् जप भ्रूमध्यमें ख्याल जमाकर करनेका अभ्यास करवाया। फिर बोले अब यहां अभ्यास के लिये आनेकी जरूरत नहीं है। शाम-सुबह इस प्रकार जप करते चलो। तीन चार महिनोंपर मुझे जप कालमें रंगीन वर्तुलाकार दिखने लगे। पहले गुलाबी रंगका वर्तुल फुटबॉल जैसा बडा दिख पडा। उसीका रंग गहरा लाल और काला होते चला। उसीमेंसे सुवर्णवलय निकलकर अदृश्य होतीं चलीं। पहला वर्तुलाकार अधिकाधिक कृष्णवर्ण होंकर चारों और नक्षीकाम दिखने लगा। बीचमें गहरा नीलवर्ण और मध्यमें हरितवर्ण पत्तियां दिखतीं थीं। फिर असंख्य तेजस्वी रंग दिख कर बादमें दृश्य मिट जाता था। ऐसे दृश्योंसे मुझे आनंद होकर मैं चाहें उस वक्त जप करने लगा। एक दिन ऐसा अनुभव आया:—

दोप्रहरमें मैं शाल ओढकर लेटा था। मनमें जप करता था। दृष्टी अर्धोन्मीलित थी। ऐसे समय मुझें नीलवर्ण प्रकाश दिखने लगा। झट मुझे सुदर्शन-चक्रका ख्याल आया। और मुझे सुदर्शन-चक्र दिख भी पडा। साइकिलके पहियेके माफिक वह था। उसीमें इंद्रधनुष्यके समान रंग थे। वह चक्राकार घूमता था। थोडी देरपें वह अस्पष्ट होते चला। उसी जगह गंध लगाया हुआ एक पुष्टसे बालकका मुख दिखने लगा। थोडी देरसे वह मिटकर फिरसे चक्र दिखा। और वह भी मिट गया।

एक दफे आकाशमें शुभ्र मेघ, सप्तर्षि, नील और शुभ्रवर्ण तारक सुदर्शन और रत्नजडित चक्रोंका दृश्य दिखा। सद्गुरु कृपाका यह अनुभव पाकर मैंने पूजा घरमें बैठक पर रोजाना चार हजार जप शुरू कर दिया। इस प्रकार डेढ महिना काट दिया। फिर एक दिन प्रभातमें लेटा था और जप करता था। जब महाराजका आवाज स्पष्टतया कानमें सुनाई दिया:— "चलने दो अभ्यास।"

इसपर दूसरें दिन ध्यान समय मेरे सामने गुलाब कांतिवाली एक कृश मूर्ति खडी हुई। मुद्रा तपस्तेजयुक्त थी। आप मुझसे बोले,—"और दो महिनों बाद मुझे और अनुभव मिलेगा।" मैंने दूसरे दिन महाराजको यह बात बतानेपर महाराज बोले,—"श्री नारायण सरस्वतीजीका तुझे दर्शन हुआ।" एक दफें रातके ११-१२ के अंदाज श्रीनारायण सरस्वतीजी पास आकर मेरी आखोंमें स्थिर दृष्टीसे देखते हुए खडे रहे। फिर आपने दी हुई मुदत के बाद मुझे एक समय पूर्ण चंद्रमा का दृश्य दिखा। अंधारी कोठीमें भी मुझे कभी कभी दृश्य दिखते हैं। प्रकाश भी दिखता है। एक दफे तो अंधेरी कोठीमें स्वच्छ सूर्यप्रकाश दिख पडा। एक दिन श्रीगजानन का दर्शन होने पर मैं अपनी अध्यात्मिक प्रगती पर विचार करने लगा। जब देवताने उठकर मुझे आशिर्वाद दिया।

रंगवर्तुल और कुछ मुख मुझे खुली जगह आंखोंसे दिखते हैं। एक दफे किरण फेंकता हुआ एक दिव्य-चक्षु दिख पडा।

(४७) **श्री. बा. वा. वैद्य, नासिक:**—मैं एक कडा नास्तिक था। देव और संतोंकी निंदा यही मेरा एकमेव धंदा था। १९३८ इ. में मैंने महाराजका दर्शन किया और उपदेशकी याचना की। मेरे पिताजीकी मृत्यु होकर जब आधा मासका टाइम हुआ था। महाराज बोले:—"पहले घरके जबाबदार मनुष्यका परवाना लेओ!"

साधारणतः १९३६–३७ सालमें मेरे पिताजीको रावसाहेब गुप्तेके पुत्र अण्णासाहेब गुप्तेसे श्रीगजानन महाराजके बारेमें कुछ समाचार मालूम हुआ था। मेरे पिताजीनें इस पर मुझे महाराजका दर्शन लेकर

अनुग्रह याचना करनेका हुकुम किया था। हमेशा मुझसे आपने वही बात कही थी। पिताजीको प्रथम श्री. गुप्तेसे हकीकत समझी वह समय शामके साडेचारका था। पिताजीनें जिस दिन मुझें आज्ञा की जब भी साडे-चारही बजे थे। और जब मैंने प्रथम महाराजकी भेट ली वह भी वही समय था।

जब दूसरी भेंट ली तब भी शामको चार बजे घरमें ही मैं कुछ लिखता था। एकाएक मेरे शरीरमें बॅटरी जैसा एक प्रवाह शुरू हुआ। और महाराजके दर्शनका विचार आया। मैं इस विचारको विरोध करता रहा। विरोध बढते विद्युत्प्रवाह भी बढता चला। अंतमें उठ कर वहां पर चल पडा। नमस्कार करतेही आप बोले,—"तुझे कौन संतमें यहाँ लाया?" मैंने विद्युत्प्रवाहकी बात कह दी।

इसपर हमेशा दर्शन करता रहा। महाराजके एक शिष्य सायगांव-करसे मुझे रामकृष्ण परमहंसके बारेमें प्रथम ज्ञान हुआ। आपसे मुझे कोई किताब भी मिली। जिनमें श्रीरामकृष्ण परमहंसजीकी ही महिमा थी। विवेका-नंदका नाम मुझे मालूम था। और मेरा उनपें प्रेम था। आपकेही गुरु श्रीराम-कृष्ण परमहंसजी है यह जान कर मेरा मन उधर आकर्षित हुआ। आपके भक्त 'अवतारवरिष्ठ' बोलते हैं जिससे मुझे आपही 'संतसम्राट' हैं ऐसा मालूम होता रहा। मैं आपकाही ध्यान करता था। मैंने यह बात श्रीगजानन महाराज को नहीं बतायी थी क्यों कि मैं महाराजको परमहंसजीसे कमदरजे-वाले संत मानता था। अब ऐसा चमत्कार हुआ कि मुझे ध्यानमें परमहंसजीके जगह महाराजही दिखने लगे। दोनों एकही हैं यह प्रत्यय मुझे इस प्रकार हुआ। और मैं खूब शरमाया।

उपदेशके समय आप बोले थे,—"माला लेकर आना" मैं उस दिन भूल गया। जब बोले,—"मनकी माला तो है तेरे साथ ही। फिर अनुग्रह दिया। इसे चार महिनों पर एक विलक्षण अनुभव आया।

पूर्वखानदेशमें नगर देवळे के पास "स्वामीका वडगांव" नामक एक ग्राम हैं। यहांपर "पूर्णानंदस्वामी" की संगमरमर की पादुकाएं हैं।

वहाँ भूतबाधा हटायी जाती हैं। वहाँसे मेरे पिताजी रौप्यपादुकाएं प्रसाद चिन्ह के लिये घर लाकर पूजा करते थे। मैंने एक दिन वे पादुकाएं लीं और अभिषेक शुरू किया। तो मुझे वहापे श्रीगजानन महाराजके चरण दिखने लगे।

ध्यानके पूर्व महाराजके ही नाम का १०८ जप करके मैं ध्यान करता था। महाराजको यह बात नहीं बतायी थी। कुछ कारणसे यह जप छूट पडा। जब एक दिन दोप्रहर बारहके अंदाज महाराजने खुद प्रकट होकर पूछा—" जप क्यों नहीं करतें ?" फिर मैंने शुरू किया।

एक दिन पूजा करके बाहर आया तो घरभर सुवर्णचंपकका सुगंध छुट गया था दिन तो इस पुष्पके बहरके नहीं थे। और घरमें एकभी फूल नहीं था।

(४८) **सौ० शांताबाई शंकरराव अभंग, सातारा:**— अमळनेरमें मैं प्राथमिक कन्याशालामें काम करती थी। बचपनसेही मेरी उपासना शुरू है। श्रीदत्त श्रीशंकर और देवीकी उपासना करती रही। जानुआरी १९४३ इ. से देवीका जप अखंड आपहीसे होने लगा। जपकी प्रगतीके साथ प्रकाशमय रंगाकृतियोंमें देवताओंका दर्शन होताथा। हातोंमें जैसी सिनेमासीरियल खंडशः बतायी जाती है ऐसे भी कुछ दृश्य दिखपडे। नादभी सुनाई देते थे और यह सब मेरे प्रापंचिकव्यवहारके साथ साथही दिखते थे। प्रपंचके कटु अनुभवोंसे वैराग्य प्राप्त होकर एकाग्रताकोभी सहाय्य होता रहा। मेरे सब अनुभव मैं अपने पतिदेवको बतातीथी। संतग्रंथोंका पारायण भी किया। ज्ञानेश्वरी पहले पढली।

१९४३ जुलै में मेरी शादी हुई और उसीमासमें मेरे हाथमें श्रीगजानन महाराजका चरित्रग्रंथ आया। पढते समय हम दोनों पतिपत्नियोंको ऐसा विश्वास हुआ कि हमें इसी महात्मासे मार्गदर्शन होगा। एक दफें किताबमेंके फोटोपरही चित्त एकाग्र करके ध्यान करनेकेलिये पतीनें कहा। वैसा करनेपर श्रीगजानन की मूर्ति दिखपडी और मन शांत होते चला। एक दिन

ध्यानके पहले महाराजकी प्रार्थना मार्गदर्शनके लिये की। तब ध्यानमें श्रीगजानन महाराज और श्री नारायण सरस्वती जी दिख पडे।

इस समय १०।५ मिनटमेंही प्रथम श्रीगजानन महाराजका दर्शन हुआ। फिर वे पीछे जरासे हटकर बैठे और सामने श्रीनारायण सरस्वतीजी प्रकट हुए। फिर ॐकार दर्शन हुआ। फिर स्वामी ध्यानस्थ बैठे दिखे। स्वामीके सीधे हाथपर सिरके ऊपर आध फुटके अंदाज ॐकारयुक्त ध्वज दिखपडा। ॐकारका तेज असह्य हुआ। सर्वत्र प्रकाश फैल गया।

फिर पतीके आज्ञानुसार ॐका जप करना शुरू किया। उस समय ॐकार, महाराज, और स्वामीजी अदल-बदलकर दिखपडे। एक रातको ॐकार जप करते समय कडा आवाज सुननेमें आया और प्रकाशमें स्वामीजी प्रकट हुए। मुझें स्वामीजीसे ध्यानमेंही सोऽहम् जप मिला। श्वासके साथ जप 'सो' और उच्छ्वासके साथ 'हम्' ऐसा मंत्र तीन दफें खुद बोल कर मुझसे जप करवाया। इस समय सुगंध फैली मालूम होती थी। फिर एकदम कड-कडाहट हुई। दृश्योंमें ज्वालामुखी, तुफान इत्यादि दिखनेसे मैं तो बिलकुल डर गयी। मुंहसे दूसरा शब्द नही निकाल सकी तोभी 'सोऽहम्' आपहीसे होता रहा। भूकंप होकर पहले मैं नीचे गयीं। फिर एकदम एक पर्वत शिखरपें उठ आयीं। प्रकाश हुआ, घंटा नाद सुनाई दिया और स्वामीजी प्रकट हुए। यह सब दृश्यके समय मैं पूर्ण जाग्रतावस्थामें थी। पतीको कहने पर वे बोले, "अब सोऽहम्काही जप करते चलना।" इससे मेरे पहलेके ही दृश्य अधिक स्पष्ट हुए।

बादमें हम दोनों महाराजके दर्शन की तीव्र इच्छासे ९।९।१९४३ रोज नासिक पहुँचे महाराजके सान्निध्यमें हम लोगोंनें आत्मिक समाधान की चार दिन लूटही की। आपनेही हमें सोऽहम् मंत्र जप करनेकी आज्ञा दी। भेंटके समय कई एक प्रश्नोंके उत्तर बिना पूछेही मिले। कई एकोंका

अर्थ पूछकरभी समाधान कर लिया। महाराजकी अनुज्ञासे हम सातारा लौट आये।

अब कुछभी कठिन समयमें महाराजका स्मरण करतेही मार्ग दिख पडता है। कभी खुद प्रकट होकर संकट निवारण करते हैं।

जैसी हमें कृपा प्राप्त हुई वैसी सब बंधुभगिनीओंको मिले। सबको पूर्ण समाधान मिले। ऐसी प्रार्थना गुरुचरणोंमें हैं।

नोटः—उपर लिखे हुवे सब अनुभव मेरे सान्निध्यमेंही आये हैं। सद्गुरुकी प्रेरणासेही मैं अपनी पत्नीको सूचनाएँ करसका ऐसा मेरा विश्वास है।

(सही) **शंकर रामचंद्र अभंग.**

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

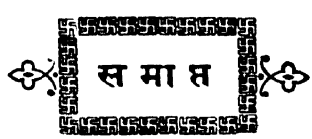

परिशिष्ट

खुद श्री गजानन महाराजका लिखा हुआ लेख.

[बंबइमें १९४३ ई० में माटुंगामें श्रीरमण महर्षीजी का दिन मनाया गया। कार्यकर्ताओनें महाराजको बुलवा भेजा और संदेश देने की प्रार्थना की। महाराजने यह लेख लिखकर भेज दिया]

" । ॐ सोऽहम् । "

" रे मन ! सोहऽम् सोऽहम् जप कर ! "

" सोऽहम् भाव उत्पन्न हुवा। मैने बाह्यपूजा छोडदी। "
" सोऽहम् रूप दीख पडा। मैंने आत्मराजको पहचाना। "
" सोऽहम् शब्द सुन लिया। मैंने सद्गुरु देख लिया। "
" सोऽहम् तत्त्व जान लिया। सद्गुरुने संसारसेही छुडाया है।

—मस्त झाडू.

मैं बिलकुल बीमार हूँ इसलिए आ नही सकता हूँ। बहुत खिन्न हूँ। रामदास स्वामीने लिखाही हैं:—

हे मन ! तूनेही पीछे कुछ जमा कर रखा है
उसीके माफिक भुगते रहना पडता है

पूर्व-संस्कारोंके अनुसार देहका दुःख प्राप्त होता है। यह कंटुसत्य है। तो भी आपके न्यौतेसे मूझे बहुतकुछ आनंद होकर दुःख भूलसा गया हूँ। क्यों कि महान् साक्षात्कारी रमणमहर्षीके ध्यान और ख्यालमें मेरा मन आनंद

का अनुभव लेता रहा है। शब्दोंसे उस आनंदका वर्णन नहीं हो सकता है। आनंद का अनुभव खुदही लेना पडता है। वह मेरा वय्यक्तिक स्वानुभव है। शक्कर की माधुरी शब्दों से नहीं मिलती है। शक्कर मिलनेका कार्य करके खाने का भी कर्म करना पडता है। आप गुरुके भक्त हैं। अतः इन बातों को जानतेही हैं। आपके विचार से मेरा भी आनंद बढता है।

'आत्मानुभव' यह चीज 'श्रद्धा'से बनती है। आप लोग श्रद्धावान् हैही। मेरा अनुभव आप लोगोंको मान्य होगाही। **ऐसा मेरा पागलके जैसे बिश्वास है।** आप मुझें 'गुरुभक्त' और 'आस्तिक' समाजमेंका एक व्यक्ति मानते हैं। इससे मुझे बडाही आनंद होता है। सचमुच मेरी योग्यता तो इतनीही है कि "मैं तो सद्गुरुके दरबारका एक साधारण **झाड्रू हूँ।**" झाड्रू मारनेवाला आदमी नहीं—उस आदमी के हाथका निर्जीव **'झाड्रू'** हूँ।

फिर मैं विद्वान् और ज्ञानी नहीं हूँ। गुरु सेवा कैसी करनी मुझे समझता ही नहीं। कोई सत्पुरुष मुझे हाथमें पकडकर मुझसे सफाई का कार्य करवा लेता है। मुझें आनंद प्राप्त होता है। अब जो रेखाएं उसी क्रियासे जमीनपर उमड आतीं हैं वहीं यह लेख है। आप ही इन रेखाओंसे अर्थ निकाल सकते हैं। और 'झाड्रू' को सन्मान दे रहे हैं। सद्गुरुकी कृपा है।

श्रीरमण महर्षि और श्रीनारायण सरस्वतीजी इन दोनोंमें मैं भेद नहीं मानता हूँ। दो शरीर अलग होकर भी दोनों एकही होते हैं। **सब साक्षात्कारी संत ऐसे ही 'एक' हैं। जहाँ जहाँ मेरा मन जाएगा वहाँ वहाँ हे सद्गुरु! तूही मौजूद है।**

बचपनसेही मेरी वृत्ति ऐसी होनेसे "मैं कौन हूँ?" यह प्रश्न भी सद्गुरु मेरे मनमें उत्पन्न होने नहीं देते हैं। गुरुकृपा होकर आपने मुझे 'सोऽहम् मंत्र दिया। वही मेरे रोमरोमोंमें इतना भर गया है, और उमड आता है, कि मुझे जप करनेका भी कारण नहीं रहता है। और मैं तो जप करता भी नहीं हूं। कबीर साहब कहते ही हैं?—

॥ राम हमारा जप करे। हम बैठे आराम ॥

मेरा तो सबही समय इष्टमित्रोंके सत्संगमें चला जाता है। सद्गुरु आत्मारामसे जप करवा लेता है। मैंतो कभी करताही नहीं।

सहजमेंही यही मेरा ऐश्वर्य दूसरोंको मिलनेका रास्ता बताता रहता हूं। अपने अनुभव कहना, और दूसरोंको वही अनुभवका रास्ता बताना, मेरे तरफसे सहजमें ही होता रहा है। अतः इस लेख देवताके बदनपर भी मेरे अनभवोंके अलंकार चढानेका मैं कार्य करूंगा तो कुछ ठीकही होगा ऐसा मैं समझता हूं।

सुख कैसे मिलेगा ? या मिला हुआ सुख किस प्रकार बढेगा। और दुःख कैसे मिटेगा ? या कम होगा ? इसी बातका विचार हरएक आदमीको हमेशा आता है। और उसी कार्यकेलिये हमेशा हरेक आदमी यत्न करता रहता है। लेकिन परिणाममें अनुभव उससे उलटा आता रहता है। कुछ तो भी कमताई होनेसे वह दुःख सागरमें ही डूबता रहता है। पहले जो सुख था मालूम होता है, वही पीछेसे दुःखदायक होता चलता है। दुःख मिटना तो दूरही रहता है। कम भी होताही नही है। बढता जरूर है। 'सच्चा सुख' किस बातमें हैं, यह बात न समझनेसे आज या कल सुख मिलेगा, इसी विचारमें आदमी पूरे आयुष्यका काल गँवा देता है। इसी अवस्थामें मृत्यु उसे झपटता है। दूसरे लोग ऐसी अवस्था देखकर भी रास्ता नहीं पकडते हैं। शाश्वत चिरंतन सुख कौनसी बातमें है, इस चीजका विचारही कर सकते नहीं हैं। सारांश संसारकी सुख भ्रमोत्पादक बातें, अंतमें मृगजलवत् नाशिवंत होकर, दुःखोत्पादक होकर, दुःखही बढातीं चलती हैं, ऐसी निश्चय होता है। तोभी कोईभी सन्मार्ग पकडताही नहीं है। बल्कि दुःखजालमेंही अधिकाधिक गढता जाता है। बाहर आनेका रास्ताही उसे मिलता नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें आदमीने अपने दुःखोंका निमूर्लन करके, शाश्वत सुखका संपादन करके, अपना कल्याण कैसा कर लेना यह बतानेके लिये 'राजमार्ग' बतानेकी जरूरत है। योग्य मार्ग मिलनेपर, बिना धोखेसे, तकलीफ न होते थोडेही कालमें ध्येय संपादन कर देनेके उद्देशसे **मैं अपने अनुभवोंकी आपलोगोंके सामने रखता हूँ।** स्वानुभवसेही आपके ख्यालमें आएगा कि मेरा मार्ग योग्य और बराबर है। आपलोग सच्चे मार्गपर आयेंगे, मेरे माफिकही संपूर्ण और शाश्वत सुखका आनंद लूट लोगे। और अधिकाधिक लोगोंको अपने मार्गपर लाओंगे। और उन्हें सत्य सुखका लाभ कर देंगे। ऐसा मेरा विश्वास है। गृहस्थाश्रमी

लोगोंको शाश्वत सुखका राजमार्ग बताकर, उन्हें मेरे साथ लेकर सुखी बनानेका कार्य, गुरुकृपाकी सहायतासे मुझसे करवाया जाता है।

संसारव्यवहार की बातें न छोडते हुए भी अपने व्यापार धंद सँभालकर, सत्सुख और चिदानंद कमानेके लिये एक राजमार्ग है और वह सीधा भी है। उसका ही नाम हैः—**क्रममार्ग** या **ध्यानयोग**। वही "**राजयोग**" कहलाया जाता है। इस मार्गसे चलनेपर अपना ध्येय निश्चित रूपमें मिल जाता है। मनुष्यको इसी मार्गपर लानेके लिये संसारकी संकटपरंपरा जहां वहां जीवनमें तकलीफें उत्पन्न करती है। और मनुष्यके मनमें सच्चे सुखकी खोजकी इच्छा तीव्ररूपसे उत्पन्न करती है। यह सब सहजही होता है! फिर मनुष्य ध्येयःसाधन के लिये कडी कोशिश करते चलता है। तो भी अंधेरेमेंही लडखडाता रहता है। **ऐसे आदमीको इस लेखसे अंधेरेमेंसे उजालेमें लानेका कार्य सहजहीसे होनेकी संभावना है।**

"मैं कौन हूँ?" इसका खुलासा कर लेना यही मानवका **ध्येय** है। इस कार्य के लिये "मैं" कौन हूँ, इसका खुलासा कर लेना चाहिये। किसी भी जीव को **यह कार्य कष्टसाध्य** है। फिर वह कोई भी जातजमातका हो। स्त्री हो या पुरुष हो। इस ध्येय-पूर्तिकी सीढियां हैं:—तीव्र इच्छा, दृढ निश्चय, आंतरिक कष्ट। गुरुचरणोंपर अटल श्रद्धा तो सर्वदाके लिये होना ही चाहिये। **इन सीटियो परसे चढने वाला शिखरपर चढ जानाही चाहिये,** और वहांसे चारों ओर दृष्टि फेंकने पर, उसे शाश्वत सच्चिदानंदकी प्राप्ति होनीही चाहिये।

"मैं कौन?" इसके खोजके लिये जिसे प्यास होती है, उसे 'मुमुक्षु' बोलते हैं। उसका पता चलाकर बादमें आनंद सागरमें वस्ती करना यही 'मोक्ष' है। जिस मार्गसे यह मोक्ष साधन हो जाता है वही 'योगमार्ग' है। योग मार्ग अलग अलग हैं। और इस लेखमें जो 'योगमार्ग' बताया है इससे दूसरे अधिक कष्टमय हैं।

"मैं कौन?" इसके तलाशमें यशप्राप्ति होनेके लिये पहले सद्गुरुकृपा संपादन करना चाहिये। संकल्प विकल्प दूर करके, गुरु वचनपर पूर्ण, अटल

श्रद्धा रखकर, अनन्य भक्तीसे सेवा करके, अपने कृतिसे सद्गुरुके अंतःकरणमें अपने लिये प्रेम और कृपा उत्पन्न करनेकी पूरी कोशिश करनी चाहिये। 'जीव' का यह यत्न तीव्र होतेही 'शिव' सद्गुरु जो पिताके माफिकही है, वह पुत्रपर कृपा किये बिना कभी नही रहेगा। यह कृपाही "अनुग्रह" है। बादमें 'मंत्र जप' का कार्य करना पडेगा। 'सोऽहम्' मंत्रमें ही 'मैं कौन?' इस प्रश्न का उत्तर है:—"मैं वही हूँ!" "अहमात्मा" "मैं परमात्मा हूँ। मंत्रका अर्थ ख्यालमें किसी भी समय रखकर जप करना चाहिये। यह जप जीवनमेंके **कौनसेही** कार्यमें **अटकाव** बाधा नहीं **हो लगाकर सोहम् मंत्रका अर्थयुक्त निदिध्यास** यही इसका 'अभ्यास' है। अभ्यास बढता रहेगा। साथ साथ, अनंत जन्मोंका जमा किया हुआ संस्कारोंका कचरा इसी मोहपूर्ण नामक झाड्रसे साफ होता चलेगा। मनोभूमी शुद्धचित्त बन जायेगी। वैराग्यवृत्ति बढेगी। वासनाएं नष्ट होगीं। बादमें 'स्वानंद' प्राप्त होकर 'मैं कौन हूं' इस प्रश्नकी आवश्यकताही नहीं रहेगी। लेकिन गुरुपर एकनिष्ट श्रद्धा होना अवश्य है।

इस मार्गपर आक्रमण करते करते, ऊपर लिखी हुई सब बातें मालूम होनेपरभी एक प्रश्न मनुष्यको सताता रहता है कि 'मेरी प्रगति होती है या नहीं?' क्यों कि सब विद्यार्थी अभ्यास करते हैं। कोई पास होते हैं। कोई फेल होते हैं। और फिरसे अभ्यास करते हैं। मैं कहताहूँ 'चलने दो' यत्न मत छोडो, **तुमको लाभ निश्चयसेही मिलनेवाला है।**

अब 'मेरी प्रगति कहाँतक हुई है?' इस प्रश्नकाभी उत्तर सीधा है। जहांतक अपने दुर्गुण मिट गये मालूम होते हैं, कम होते हैं, वहांतकही अपनी प्रगति हुई है। यह बात निश्चित है। क्रोध, द्वेष इत्यादिकोंके काबूमें हम जाते होंगे, तो प्रगति कम होती है ऐसा समझना चाहिये। 'अभ्यास' से वैराग्य प्राप्त होकर मनकी अवस्था शून्यवत् होतेही, नरदेहका उत्कट कार्य होगा। 'आत्मकृपा' और 'गुरुकृपा' दोनों एकही हैं। अतः एकही समयमें प्राप्त होती है। उसीवख्त ध्याता, ध्यानकृति और ध्येय एकसे होजाते हैं। प्रगतिके साथ सिद्धियोंकी प्राप्तीका संभव होता है। लेकिन **उनके पीछे जाओगे तो ऐसे गढेमें पडोगे, जहांसे ऊपर आना दुर्घट है।**

अब समझ लीजिये कि **श्रद्धा नहीं रख कर कोई "सोऽहम्" जप करेगा। तो क्या होगया? लाभ होनाही चाहिये। नुकसान होनेवालाही नहीं है।** "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" ऐसा संतवचन है। अब दोनों बातोंमें विरोध दीखता है। अंदरसे आत्मारामकी स्फूर्ति होने बिगर जपकी इच्छाही होनेवाली नहीं है। अंगारसे घास जलेगा ही। तुम दोनोंको श्रद्धासे मिलाओ। या अश्रद्धासे मिलाओ।

दूसरे योगोंमें इंद्रियोंको कष्ट देना पडता है। पतंजलिमहामुनि कहते ही हैं "अर्थ भावनम्" यही जप है। सायुज्यता, सोऽहम्, अहंब्रह्मास्मि, तत्वमसि, साक्षात्कार इत्यादि नामोंसे दूसरे योग जीवोंको ध्येय एकही बताते हैं। ध्येय प्राप्तीके लिये, श्रद्धा, यत्न, एकनिष्ठा, एकाग्रता, तितिक्षा इत्यादि मार्ग बताते हैं। यत्नोंकी तीव्रता जैसी होगी उसी प्रमाणमें अनुभव आते हैं। **साक्षात्कारके बादमें गुरु अलग रहता ही नहीं है:** फिर उसकी जरूरत अलग रहती ही नहीं है।

पूर्वजन्मके संस्कारोंसेही मनुष्य अध्यात्म विषयमें आनंद पा सकता है। ऐसा मनुष्य जपसे शुद्ध होता है। ऐसी भूमिमें सद्गुरु बीज बोता है। वृक्ष होनाही चाहिये। सद्गुरु भूल नहीं कर सकता है। फिर वह शरीरसे दूर हो या सन्निध हो। अभ्याससेही मनुष्य षड्रिपुओंपर काबू कर सकता है। जप और आत्मविश्वाससेही साधक अपना उद्धार कर लेता है। **"तेरी चीज तेरे पासही है। लेकिन तू तो विरुद्ध दिशामें मुंह फिरा कर ढूंढता है।"** ऐसा संत वचन है। सद्गुरु मार्ग बता देता है।

अब "शब्दके उच्चारणसे ही शब्द नहीं होता है। मनमें सोऽहम्का विचार करनेसे भी शब्द होता है।" ऐसी शंका कोई लोग निकालते हैं। मै तो अनपढही हूँ। लेकिन मेरा विश्वास है कि उच्चारित शब्द और अनुच्चारित शब्दमें भेद है। वही अनुच्चारित शब्द 'अजपाजप' है। कुत्ते को हम हिंदीमें बोलते "आव" और साहब अंग्रेजी में बोलता है "कम"। अब कुत्ता तो शब्द नहीं समझता है। तोभी परिणाम एकही होता है। कुत्ता जिस शक्तीके आकलनसे कार्य करेगा वही शक्ति अजपाजप है। उसमें उच्चारित शब्दका कार्य नहीं है। जिसकी शक्ति कम है उसके शब्दोच्चारण

करनेसेभी कुत्ता नहीं आता है। लेकिन प्रेम होगा तो सिर्फ इच्छा उत्पन्न होतेही बिना शब्दोंकी सहायतासे कुत्ता दोनोंके प्रेमबलसे आता है। इसे ऐहिक बातोंके ध्यान चिंतनकी ऊपरी बातोंकी आवश्यकता रहतीही नहीं। यही अजपाजप है। इसी कारण मुझे तो उच्चारणकी भी आवश्यकता नही रही है। कभी मालूम होता है मैं बहुत छोटा हूँ। तो कभी मालूम होता है मैं बहुत बडा हूँ। **यह मेरा विचित्र अनुभव है। सब कुछ सहजहासे होता है।** वृत्तियोंसे काम मुझे तो लेनाही नहीं पडता है। मेरा होनाभी सहजही है ऐसा मालूम होता है।

आधुनिक बुद्धिवादी पंडित बोलते हैं कि, "अध्यात्मके भी "प्रयोग" करके बताओ!" बात यह है कि "**परमात्मा बुद्धिके क्षेत्रके परे है**" फिर भौतिकशास्त्रकाही ज्ञान देनेवाले प्रयोग यहां कैसे काम देंगे? इस विषयका, कॉलेज और डिग्रिओंके संकुचित क्षेत्रमें समावेश नहीं हो सकता है। सद्गुरु जहां तहां है ही। अव्वल दर्जेका शिष्य उसे मालूम होता है। उसको वही ऐसी डिग्री देता है जिससे दोनो समान हो जाते हैं। बाकी लोगोंको अभ्यास करना पडताही है। सभी छात्रोका नंबर पहला नहीं आता है। सब राजा नहीं बन सकते हैं। और जो बनते हैं वे समुद्रमें जैसे बूंद मिल जाते हैं वैसे मिलजानके बाद पीछे शाब्दिकवाद रहताही नहीं है। मैं बुद्धिमान् नहीं हूँ। इससे मुझसे बुद्धिपांडित्यका प्रदर्शन नहीं हो सकता है।

मेरा अनुभव मैं बता सकता हूँ। क्यों कि मेरे गुरुका वैसा मुझे हुकुम मिला है। आप लोगोको स्वतंत्र विचार करकेही आगे बढना चाहिये। स्वानुभव लेना चाहिये।

मैं समझता हूं कि मेरी पूर्वजन्मकी तैयारी होगी। इससे इस जन्ममें सहजहीसे कार्य होता रहा हैं। भावना और अभ्याससे मेरी श्रद्धाही ऐसी बन गयी है कि सब करनेवाला गुरु है। मैं नहीं हूं। क्यों कि खुद मैंही गुरु बन गया हूँ। खुद गुरुका वास मुझमें हो गया। "**यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्**" ऐसीही अवस्था हो गयी। श्वासक्रियाही मंत्र बन गया। अब वह छूटताही नहीं है। फिर "मैं करता हूँ" ऐसा

कहना भी भूल है। बच्चेके माफिक संसारमें खेल रहा हूँ। लोग कभी बोलते भी हैं कि, "महाराज अब बूढे होकर बच्चके माफिक बर्ताव कैसा?" मैं बोलता हूँ "महाराज हैंही कहां? मैं तो परमात्मा का बच्चाही हूँ। **लोग मुझे जबरदस्ती से गुरु मानते हैं!** मुझे मानतें हैं। **और अपनेही विश्वाससे प्रगति करते हैं**। या अल्ला। यह क्या आफत हैं। काम **तुम** करते हो। और मैं तो फत्तरही हूँ! **चलो जिसमें तेरी रजा है उसमे मेरी भी!** चलने दो तुम्हारा खेल चलने दो। दीनों का उद्धार होने दो। मुझे तेरे चरण तले पडा रहने दो।" तथास्तु!

शरीरको या मन कोही हम "मैं" समझतें हैं। लेकिन **'मेरा शरीर' 'मेरा मन' ऐसी बातें करनेवाला "मैं" कौन हूं,** इस बात का सूक्ष्म विचार करना चाहिये। **संत उसीको 'मैं' समझते हैं**। और साधारण लोग नहीं समझतें हैं, यही दो प्रकार का 'हम' है जिसे 'अहं'कार नाम है। मनके भी दो विभाग है। अंदरका मन और बाहरी मन। **निरहंकारी 'मैं' यही शाश्वत है**। वही चारों ओर भरा है। वही साक्षात् सत्य सच्चिदानंद परमात्मा है। और वही "मेरा शरीर", "मेरा मन" ऐसी बातें करता है। क्यों कि जहां वहां—खुदमें भी खुदा मौजूदही है।

त्यागसे इसका अनुभव आता है। आनंद होता है। फलकी आशा छूट जाती है। कार्य सहजही होता चलना है। यश अपयश निकल जाते हैं। भेद रहताही नहीं है। हम त्याग कहांतक कर सकतें हैं इस बातकी खोजमें रहकर अपनी प्रगति अजमाते रहना चाहिये। "त्याग" और "गीता"में भेद नहीं हैं।

एक भोलेभाले आदमीने अपने को पहचाननेके लिये औरतके हाथसे एक काले कपडेका तुकडा पावको बँधवा लिया। बाजार गया तो वह कपडा छूट पडा और आदमी हल्ला गुल्ला करने लगा कि "मैं कहाँ हूँ?" **हरेक मनुष्य अपने शरीरकी सहाय्यतासे अपनेको पहचानता है। यह भूल है**। औरतने आकर अपनी साडीका तुकडा फाडकर उसके पांवको फिरसे बांध दिया। जब आदमी को समाधान प्राप्त हुआ। यही "सोऽहम्" मंत्रका कार्य है। उसी चीजसे वह अपनेको पहचान सकता है।

वेदांत और दूसरे योगसाधनोंसे ऐसी जलदीसे पहचानत नहीं होंगी जैसी 'सोऽहम्' से होती है। श्रीमच्छिदरनाथसे आजतक चला आया हुआ यह नाथपंथका योगही सीधा रास्ता बताता है। इसमें 'जप' और 'ध्यान' करना पडता है। इससे इसको 'ध्यान योग' कहते हैं। सद्गुरूपर निष्ठा रखकर वृत्ति अंतर्मुख करके गुरुका दिया हुआ जप संतत अखंड करना पडता है। प्रगती होते चलती है, और पूर्णत्व पातेही सद्गुरु, परमात्मा और हम एकही हैं, इस बातका अनुभव आता है। जीव शिवोंका तादात्म्य इसी को कहतें हैं। इसी अनुभवसे सहजानंद प्राप्त होता है। कुछ इच्छा–अपेक्षा रहतीही नहीं है। इसीको 'ज्ञानयोग' और **'कर्म–मार्ग'** कहते हैं। इस सुलभ–मार्गका अवलंब करके **खुदही अपना उद्धार कर लीजिये।**

संसारके व्यवहार और कामधंधे शुरू रखकर भी अब यह योग कैसा साध्य होगा इस बातका विचार करेंगे। आदमी बोलता है। मुझपे कुटुंब संचालनका बडा भारी बोझा है। मुझे अभी समय नहीं है। आगे देखा जाएगा। मृत्युतक यही बात चलती है। कौटुंबिक व्यक्तिको तो और बातोंको दूर करना उसकी जानपें आता है। हम बोलतें है, " भाई, परिवार और धंदा छोडो ही मत। एकही पत्थर फेंक कर दो पक्षिओंको मारनेका **चमत्कार हम तुम्हारे हाथसे कर लेंगे।** संसार और संन्यास दोनोंभी मिलेंगे। ध्यान का अभ्यास रखो। अनुभव लेलो।" कर्मोंके पीछे जो उद्देश है वही सुखदुःखोंका कारण है। हेतु साधनकेलिये नहीं, बल्कि 'कर्तव्य' समझकर अपने कर्म करते रहो। शांति मिलती रहेगी। हेतुविरहित कर्मकोही **निष्काम कर्म** कहते हैं। साधारणतः सबही बातोंमें थोड़ा अपयश आताही है। मनपसंद तो एक भी बात होती नहीं है। कुछ ना कुछ दुःख खडाही रहता है। कभी कभी तो ऐसें दुःखोसें हम जान भी खो देनेके लिये तैय्यार हो जाते हैं। इच्छित फल की **अपेक्षा** यही इस बातका **कारण** है। अतः **दुःखकी जड 'वासना' है यह समज कर वासनाही उखाड देनी चाहिये।** ऐसेही निष्काम कर्म करनेवालोंको ईश्वर प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार व्यवहार करेगा तो मनुष्य दुःख नहीं पाता है। सुखदुःखों के परे हो सकता है।

मैं कोई अधिकारी ऑफिसर रहूँ तो मेरे हाथसे सत्कृत्य और दुष्कृत्य दोनोंभी हो सकतें हैं। दुष्कृत्य करके मैं धनवान हो सकता हूँ। तोभी मुझे लोगोंके **अंतःकरणका प्रेम** नहीं मिलेगा। और जब सत्कृत्य करूँगा तब शायद दामाजीके माफिक, पांडवोंके माफिक मुझें तकलीफें होगीं। तोभी मेरा मन शांत रहेगा। और दुःख नहीं मालूम होगा।

बेपारमें मुझें नफा हुआ। मैं पैसा '**चैन**'में भी खर्च कर सकता हूँ और '**दीन**'में भी खर्च कर सकताहूं। लेकिन दूसरे उपायसे मुझे शांति मिलती है। वही शाश्वत आनंद है। फिर लोग मुझे अच्छा कहे या बुरा।

मैं डॉक्टर हूँ। मैं दूसरोंकी मददके लिये दवाई देकर समाधान भी प्राप्त कर सकता हूँ। और साथ साथ धनिक लोगोंसे पैसा लेकर चरितार्थ भी कर सकता हूँ। लेकिन चरितार्थकेलिये दुष्टता करके गरीबोंको तकलीफ पंहुचाकर धनी भी हुआ तो शांति नही मिलेगी। कोई राजा आकर बहुतसा धनभी देगा मैं उससे गरिबोंको मदद पहुंचानेको समर्थ हूँगा। यही आनंदका मार्ग है। यही निष्काम कर्म है।

ऐसा निष्काम-कर्म, राजयोग और गुरुकृपा इन तीनोंका जब संगम होता है तब **सिद्धियां** प्राप्त होती हैं। इनसे डर, आनंद, या अहंकार बढेगा तो मनुष्य पतनही पायगा। लौकिक और ऐहिक संपत्तीके लाभ, सिद्धियोंसे करते रहोगे, तो वे मायामय होनेसे, तुम गलतही रास्तेसे जाकर **ठोकर खाओगे**। सिद्धियोंके चमत्कार करनेवाले हम नहीं हैं। सद्गुरु हैं। यही मानना उचित है। फिर धोखा नहीं है। सहजहीसे उन्नति होती है।

गुरुपर विश्वास रखो, स्वतंत्र बुद्धीसे विचारभी करो, अभ्याससे षड्रिपुदमन करो; वैराग्य और निष्काम-कर्म-योगसे कामधंधे करते रहो। आनंदही मिलेगा।

चमत्कार, दृश्य और दर्शन के अनुभव तो सब प्रकारके योगोंमें होंगे। तो भी '**ध्यानयोग**' **अलग कैसा है** यह मैं बताकर लेख पूरा करना चाहता हूँ। ख्याल कोजिये कि एक साधारण आदमी को ध्यानमें एक ऐसा घर दिखता है जो इसने कभी स्वप्नमें भी देखा नहीं है। घरमें एक संदूक भी दिखती है। और संदूकमें पुरानी वस्तुओं का दृश्य दिखता है। पुरानी

वस्तुओं के नीचे योगवासिष्ट कीं किताबें दिखतीं हैं। मित्र को उसने घरका वर्णन किया। मित्र बोला ऐसा घर फलाने ग्राममें है। दोनों बोले, चलो देखेंगे। दोनो वहां गये। घर जैसा का वैसाही दिख पडा। अंदर-बाहर बिलकुल वही घर! जैसा ध्यानमें दिखा था। पूछताछ करने पर संदूक भी मिली। ग्रंथ भी मिले। इससे ध्यानाभ्यास करनेवालेको समझा कि "**हम**" **कौन हैं? "हम सर्वमय हैं।"**

अब शरीरमें जो अपनेको 'मैं' कहलाता है वह कोई **एक तत्त्व है**। वही "**चैतन्य**" है जो भौतिक प्रयोगोंके परे है। और बुद्धिगम्य ज्ञानसे प्राप्त होनेवाला नहीं है। उसीकी इच्छाशक्तिके प्रभावसे योग्य ध्यान योगीके बारेमें प्रयोग चमत्कार, होतें हैं। तो भी ऐसे प्रयोग विज्ञानशास्त्र वेत्ताओंके प्रयोगसे भिन्न हैं। कोई भौतिक चीजोंको इकट्ठे करके वह प्रयोग नहीं हो सकते हैं। इसमें सबके लिये प्रयोग है एकही। ठीक ठीक ध्यान जमाओ अपने अनुभव खुदही लेलो।

बिजली, अग्नि वगैरे शक्तियां चीजोंमें सुप्त अवस्थामें रहती हैं। कोई नियमोंके अनुसार कार्य करनेसे प्रकट हो जाती हैं। योगके नियमोंके अनुसार कार्य करो। तुम उसे ढूँढते अंदर-जगत् के अंदर-चैतन्यगर्भ है, व प्रकट हो सकता है। 'ब्रह्म' 'चैतन्य' इसमें फिर कुछ गूढता रहतीही नहीं है। वहीं साध कके अंदर-बाहर है। वह जब अनुभवमें आता है तब उसीको **साक्षात्कार** कहते हैं।

सोऽहम्

२५७ फ्रीयर रोड, फोर्ट
बम्बई, ता. २३।९।४५

मेरे सर्व सन्मान–भंडारयुक्तप्रिय महाराज,

कोई दिन पहले श्री. दीक्षितसे मेरी मुलाकात हुई। जब वे बोले कि आपकी तबियत ठीक नहीं है। आपकी ओर भी एक चिट्ठी मुझे आयी थी जिसमें आपने भी वैसा ही लिखा था। जिससे मुझे तो भयही उत्पन्न हुआ कि आपकी तबियत इतनी देरतक नादुरुस्तही क्यों है? क्योंकि अखबारोंमें भी मैंने पढा कि नासिकमें हरकिसमकी बीमारियां फैल रहीं है।

इस पत्र-लेखन का कारण तो और भी एक है कि मुझें कलकी रातको या आज प्रभात समयमें पांच बजने बाद एक स्वप्न दीख पडा है। मुझे ऐसा दिखाई दिया कि यहांपर मेरे घर मुझसे मिलनेके लिये आप आये हों। और स्वप्नसे ही यह दृष्टांत ऐसा सुस्पष्ट था कि जैसा जागृतीमें ही देखा। मेरा अंतरात्मा मुझसे बोलताही रहा था कि इसे स्वप्न मत समझना। यह सत्य घटना है। नींद मैं लेता ऐसा मुझें जब मालूम होता ही था। और इधर अंतरात्मा तो बोलता था कि यह नींद नहीं है। आपने मुझें अलिंगन देकर कहा, "बोलों! मैं आयाया नहीं?" अब मैं तो बहुत दिनोंसे चाहताही था कि आपकी भेंट करें; और इस प्रकार भेंट होनेसे मुझे तो खूब खूबही सुखसंतोष मालूम हुआ। आपके प्रेमपूर्ण आलिंगनसे तो मेरा आनंद फूले न समाया। आपको मेरे कमरेमें बिठानेपर, मुझें कुछ कारणसे बाहर जाना पडा। और जब मैंने लौट कर देखा तो क्या चमत्कार! आपके इर्दगिर्द, मेरे कई एक परलोकवासी पूर्वज बैठे हुए देखे! वे सब सुखसमाधानमें बैठे दीख पडे। कमरेके बीचमें एक धूपभी भी दिख पडी। जिसमेंसे चंदन धूपके फवारे निकल पडते थे।

आपके इस प्रकार को देखकर आनंद तो हुआ। लेकिन दृश्यके दूसरे विभागसे मुझें आपकी तबियतके बारेमें चिंता भी उत्पन्न हुई। आप कसे हैं! इस प्रश्नका उत्तर तो आपकी चिट्ठी आये विना मुझें नहीं समझगा। और इस सब चमत्कार का अर्थ क्या होता है यह बात आपही कृपया बता सकते हैं' क्या इतना महरबानी करोगे? मेरी छटपट् हो रही है।

चिट्ठी बंद करनेके पहले, आपकी दया और प्रेमके लिये मेरी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ। लेकिन वह भी कैसे करना, मुझे नहीं समझ पडता है। खाली मैं तो इतनाही बोल सकता हूँ कि मेरी वहकाम करनेकी योग्यताही नहीं है। मेरी इच्छा है कि मेरा प्रेमभी आप जैसाही विशाल हो। तोभी मेरी ताकद पूरी पूरी लगाकर मै आपसे प्यार कर रहा हूँ। और वह ताकद कुछ बहुत नहीं है यहभी मैं जानता हूं। मेरे जैसे क्षुद्र जीवसे आपभी क्या जादह चाहेंगे !

आशा है कि आप मुझे इसी प्रकार हमेशा उपकृत करते रहेंगे। और मुझे आशिर्वाद देते रहेंगे। प्रेममय परमात्मासे मैं धृष्टतापूर्वक प्रार्थना करता हूं कि वह आपकी तकलीफें हटाए। मैं तो बिलकुल अनजान अनभिज्ञहा हूं।

नम्रसेवक

(सही) मुबारक

सोऽहम्

"सोहं" भावसे सब पूजा छूट गयी।
"सोहं" रूपसे आत्मराज पहचाना गया।
"सोहं" शब्दसे गुरुको देखा।
जो "सोहं" तत्वसे दीनोंका उद्धार करता है।

*

रे मन! "सोहं सोहं" जप कर।

*

'सोहं' नामक जप का सार।
हम हमेशा पीते रहेंगे।
जिससे 'परात्पर' तक पहुँचेंगे!

*

जो सदा सत्यसंकल्पके साथ गुरु पर निर्भर रहेगा, और संसारमें ही अलिप्त रहेगा, उसे कम क्या रहेगा? देनेवाला सद्गुरु है। वही हमें ईश्वररूप चिरंजीवन पैदा कर देता है। ऐसे सद्गुरुरूप विश्वंभर का हम हमेशा ध्यान करेंगे।

अन्तमें

इस पुस्तककी छपाई अभी पूर्ण नहीं हो पायी कि, इतनेमें विगत १९४६ सितंबर दिनांक २८ को रातके ११ बजनेके लगभग श्री गजानन महाराज समाधिस्थ हुए ऐसा लिखते समय हमें अत्यन्त खेद होता है. पिछले पाँच छहः वर्षोंसे श्री. गजानन महाराजका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, और वे प्रायः बुखार तथा खाँसीके आक्रमणोंसे बीमार रहा करते थे। कईबार उनके स्वास्थ्यमें इतना बिगाड हुआ करता था कि, उनकी हालत बडी चिन्ताजनक हो जाती. पर कुछ समयके पश्चात् रुग्णावस्थामें सुधार भी दीख पडता था। इस समय भी पूर्ववत् ही उनकी दशा बहुत कुछ सुधर जायगी ऐसी आशा सबके दिलमें टिमटिमाती रही, पर हाय! यह बडे दौर्भाग्यकी बात है कि, यह आशा दुराशा मात्र ठहरी और उनके प्राणपखेरू सदाके लिए उड गये।

हाँ, यह बात तत्त्वदृष्ट्या तो ठीक जान पडती है कि, संत लोक अगर प्रत्यक्ष शरीररूपसे हमारे बीच न भी रहे तो भी अक्षय्य आत्माके रूपमें उनकी अवस्थिति हमारे मध्य अवश्यही अक्षुण्णतया हुआ करती है। इस तत्त्वके अनुसार यह बिलकुल सत्य है कि, श्री गजानन महाराज अभी विद्यमान हैं लेकिन यह बात नहीं भुलायी जा सकती है कि, उनके सगुण साकार स्वरूपके सहवास लाभसे हम सभी वंचित हुए हैं। इस पुस्तकके पढ चुकनेपर यदि कोई मोक्षके लिए लालायित पुरुष उनका दर्शनसौभाग्य प्राप्त कर अनुगृहीत एवं पुनीत बननेकी इच्छा करे तो अब वह पूर्ण होना असंभव है। इसलिए इस ग्रन्थमें जो कुछ उन्होंने कहा है उसके अनुसार आचरण करते हुए जितना भी हो सके, उतना पारमार्थिक लाभ उठाना चाहिए, इतनी ही हमारी पाठकोंके निकट नम्र विनंति है।

समाप्त